आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएचडी(हिन्दी)
उपाधि के लिए प्रस्तुत
शोध-प्रबंध

❖ प्रस्तुतकर्ता ❖
गोस्वामी किशोरगिरि जे.
शाह एच. डी. हाईस्कूल
ऊना

❖ निर्देशिका ❖
डॉ. दक्षा जोशी
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
श्री मीनाबहन जे. कुण्ड़लिया आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज,
राजकोट

वर्ष : २००५

श्रमाणपत्र

श्रमाणित किया जाता है कि ***गोस्वामी किशोश्रगिश्रि जेश्र*** ने सौश्रष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएचश्कीश्र(हिन्दी) उपाधि के लिए मेंश्र निर्देशन एवं निश्रीक्षण में **''आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नाश्री विषयक दृष्टिकोण''** शीर्षक शोध-श्रबंध तैयाश्र किया है । इस शोध-श्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथा-शक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-पश्चक विश्लेषण - विवेचन कश्के वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है ।

साथ ही यह शोध-श्रबंध अथवा इसका कोई अंश अब तक न तो श्रकाशित हुआ है औश्र न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है ।

दिनांकः

स्थलः श्रजकोट **निर्देशिका**

डॉ श्रदक्षा जोशी
अध्यक्षा, हिन्दी विभाग
श्री मीनाबहन जेश्रकुण्ड़लिया
आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज
श्रजकोट

भूमिका

❖ विषय प्रवेश :

साहित्य और समाज का अविच्छिन्न सम्बन्ध है, जो परस्परावलंबित भी है । समाज यदि शरीर है तो साहित्य उसकी आत्मा है । समाज के वातावरण की नींव पर ही साहित्य का प्रासाद खड़ा होता है । जिस समाज की जैसी परिस्थितियाँ होगी, उसका साहित्य भी वैसा ही होगा । साहित्य समाज की प्रतिध्वनि है, प्रतिच्छाया है और प्रतिबिम्ब है । साहित्यकार एक सामाजिक प्राणी होता है । उसका पालन पोषण समाज में होता है । अपने साहित्य के लिए वह विषय सामग्री समाज से ही ग्रहण करता है । साहित्यकार की प्रतिभा और कल्पना समाज से ही अपने साहित्य के लिए उपकरण जुटाती है । वैसे राष्ट्र के उत्थान एवम् पतन में साहित्य एवम् समाज की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है ।

काव्य एक साहित्यिक रचना है । कवि व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की तत्कालीन मानसिकता के समानान्तर चलता है । कवि इन घटकों से सम्बन्धित परिवर्तनकारी एवम् विघटनकारी कारणों की तह में एक रचनात्मक दृष्टिकोण से प्रवेश करता है । अपनी सशक्त अभिव्यक्ति के माध्यम से वह इसे इतने कलात्मक रूप से प्रस्तुत करता है कि उसकी कृतियों में तत्कालीन परिवेश एवम् समाज का यथार्थ व प्रामाणिक स्वरूप अपनी–अपनी अच्छाइयों व बुराइयों के साथ स्वतः ही प्रतिबिम्बित होने लगता है ।

मैंने ***''आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण''*** विषय को लेकर शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत किया है । प्रश्न उठता है कि इस विषय के अध्ययन की आवश्यकता क्या है ? जिसके सम्बन्ध मैं कहना चाहूँगा कि इतिहास अपने स्वर्णपटल पर उन्हीं व्यक्तित्वों को सजाता है, जिन्होंने अपने

जीवन में कुछ करगुज़र ने की तमन्ना रखी हो । प्राचीनकाल से लेकर आजतक का भारतवर्ष का इतिहास बड़ा लम्बा–चौड़ा रहा है । किसी भी इतिहास की नींव की पहली इँट के रूप में नारी गड़ी है । किन्तु कहीं नारी का स्वतन्त्र इतिहास नहीं लिखा गया । नारी ने अपने इतिहास में कई सारे ऐतिहासिक कार्य किये हैं पर सब व्यर्थ ! क्योंकि नारी उन कार्यो से विदित न रह पाई । कारण स्पष्ट है उसे शनैः शनैः शिक्षा से विमुख कर वैचारिक सोच से बौना बना दिया गया । इस सृष्टि का मूलाधार शक्तिरूप, वेदों में जिसकी वंदना की गई हैं, जिसे देवतूल्य माना गया है, वह नारी ही है । ऐसी नारी की विगत शताब्दियों से लेकर आज के कहे जानेवाले अल्ट्रामोर्ड़न ज़माने में भी वही दशा है जो पूर्वकाल में थी । उसे आनन्द प्राप्ति का उपकरण मात्र माना गया है । स्त्री–पुरुष को सम्यक् मानने का दावा है पर हक़ीकत कुछ ओर ही है । आज की नारी को विकासशील कहा जाता है । आम धारणा के परिप्रेक्ष्य में देखा जाये तो क्या नारी विकास की परिचायक है ? जिस का उत्तर मुझे नहीं मिला । आधुनिक युग में नारी नुमाइश की चीज़ बन गई है । भले ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी वर्ष या नारीदिन मनाया जाता हो अन्तोगत्वा प्रगतिशील मानी जानेवाली नारी आज भी दीन ही है । दास्ताँओं की जंजीरों में जकड़ी है । जिसका मुआईना आये दिन अखबारों में आनेवाली सूर्खियाँ देती हैं ।

मैं जिज्ञासावश जिन उत्तरों की तलाश कर रहा हूँ उन तमाम प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की कोशिश इस शोध–प्रबन्ध में की गयी है । यह ज़रूरी नहीं कि अन्य लोग मेरे उत्तर को सही माने किन्तु वे भी उत्तर की स्पष्टता से इन्कार नहीं कर पायेंगे ।

इस प्रकार मेरा शोध–प्रबन्ध वास्तविकता का अंकन करता एक आलबम है । शोध–प्रबन्ध का मूल उद्‌देश्य आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण क्या है ? उनमें परिवर्तन, प्रगति क्या है ? आदि है ।

❖ विषय का महत्त्व :

इस संसार की प्रत्येक वस्तु का अपने आपमें एक महत्त्वपूर्ण स्थान है । इस दृष्टि से किसी विषय का शोध–परक अध्ययन ओर भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है । वस्तुतः अध्ययन की प्रक्रिया ज्ञान से सम्बद्ध है । ज्ञान निश्चय ही मस्तिष्क को तर्क–वितर्क, सही–गलत, अच्छा–बूरा आदि के सन्दर्भ में नये आयाम प्रदान करता है, जो मानव की व्यक्तिगत व मानसिक उन्नति के लिए आवश्यक है जो क्रमशः पारिवारिक व सामाजिक उन्नति के रूप में प्रचारित होकर व्यापक रूप में राष्ट्र को महान बनाती है ।

हिन्दी में 'आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण' शीर्षक नारीजीवन शैली प्रस्तुत करता है । काव्यों के माध्यम से नारी जीवन का यथार्थ, प्रामाणिक, रोचक, कलात्मक चित्र प्रस्तुत करने का मेरा प्रयास रहा है । इतना ही नहीं हिन्दी में नारी जीवन केन्द्रित काव्यों का शोध–परक अध्ययन करने से नारी जीवन का तत्कालीन व यथार्थ चित्र प्राप्त होने के साथ ही वर्तमान समय में नारी के मूल्यों, आदर्शो, सम्बन्धों, मान्यताओं के परिपार्श्व में आशातीत उत्थान, प्रगति, परिवर्तन, परिष्कार आदि का भी चित्रण हुआ है ।

नारी जीवन निरुपित करते हुए नारी में आये परिवर्तनों को देखना, गुजरते समय के साथ नारी सम्बन्धी रीति–रिवाज़, मान्यताओं, रूढ़ियों, परम्पराओं, अन्धविश्वास आदि में परिवर्तन देखना मेरा मूल उद्‌देश्य रहा है । यह शोध–सामग्री वर्तमान युगीन नारी समाज के लिए अमूल्य निधि के रूप में स्वीकार्य होगी । मेरी सोच की निष्पत्ति के रूप में इस विषय की महत्ता सिद्ध होगी यह मेरा विश्वास है ।

❖ प्रेरणा एवम् विषय चयन :

मनुष्य समाज में रहता है, इसलिए कि वह विचारशील प्राणी है । वह आत्मविकास व सामाजिक उत्कर्ष चाहता है । वह अपनेदेश, समाज, जाति के आचार–विचार पर चिंतन–मनन करता है । कहने का तात्पर्य यही है कि वस्तु की प्रेरणा स्वानुभव अथवा परानुभव से होती है । साहित्य की अनेकविध विधाओं की अपेक्षा काव्य के अन्तर्गत हज़ारों वर्षों से पीड़ित दलित यातनाओं की शिकार बनी नारी संबंधित रचनाओं के प्रति मेरी रूचि प्रथम से ही रही है ।

मैं जब नौंवीं कक्षा में पढ़ता था तभी से तय किया था कि हिन्दी के प्रति आबद्ध रहूँगा । अतः मैंने अपने इस स्वप्न को वास्तविक रूप प्रदान करने हेतु हिन्दी विषय के साथ सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट संलग्न एच. एम. वी. आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, ऊना से बी. ए. व शारदापीठ आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज ऑफ एज्युकेशन, द्वारिका से बी.एड्. और सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के शिक्षणशास्त्र भवन से एम.एड्. तथा सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, हिन्दी भवन, राजकोट से एम.ए. की उपाधियाँ प्राप्त कर हाईस्कूल की नौकरी में लग गया । किन्तु मेरा मन हिन्दी के कानन में ही रमता रहा । भारतभारती के लिए कुछ कर गुजरने को दिल मचल उठता था । बी.ए. और एम.ए. के अध्ययन के दौरान नारी विषयक हिन्दी काव्यों का अध्ययन किया था । 'कामायनी' और 'यशोधरा' जैसी रचनाओं में नारी के ईश्वरीय रूप के दर्शन हुए थे । इन सारी बातों ने मेरे भीतर एक हलचल–सी पैदा कर दी थी ।

हिन्दी भवन से पढ़ाई खत्म कर लेने के उपरांत बार–बार हिन्दी भवन के रीड़र श्रद्धेय डॉ. बी. के. कलासवा जी ने बार–बार आगे की पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित किया । अतः मैंने उनके सामने पीएच.डी. की उपाधि हेतु

प्रस्ताव रखा । तो तुरन्त ही मुझे श्रीमती मीनाबहन जे. कुण्डलिया आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, राजकोट की विभागाध्यक्षा स्नेहशीला डॉ. दक्षाबहन जोशी के घर ले गये । जहाँ पर दक्षाबहन ने मुझे शोध सम्बन्धित कई सारी महत्त्वपूर्ण बातों से अवगत करवाया और कहा कि इस शीर्षक पर शोधकार्य किया जाये तो कैसा रहेगा ? और मैंने विचार–विमर्श करके तय किया कि यही विषय ठीक रहेगा ।

मेरे लिए सौभाग्य की बात तो यह है कि मेरा पीएच.डी. का शोध–प्रबंध समादरणिया डॉ. दक्षाबहन जोशी के निर्देशन में होने जा रहा है । विषय चयन की प्रेरणा से लेकर सम्पन्न होने तक उनका उदार सहयोग मुझे मिला है ।

'आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण' इस शीर्षक पर शोधकार्य मेरे लिए एक आराधना थी । जिस आराधना के फलस्वरूप प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध भारत–भारती के चरणकमलों में प्रस्तुत कर पाया हूँ ।

❖ सामग्री संकलन :

किसी भी प्रकार के कार्य को सुचारू ढंग से सम्पन्न करने हेतु कुछ सामग्री की आवश्यकता रहती है । उसी प्रकार मेरे इस शोधकार्य की सामग्री संकलन के प्रश्न के सम्बन्ध में मैं बिलकुल निश्चिन्त था । क्योंकि विषय–चयन के साथ ही मैंने एकाधिक प्रकाशनों को पत्र लिख दिये थे । साथ ही अलग–अलग विश्वविद्यालयों, कॉलेजों व स्कूलों के ग्रन्थालयों और अनेक अध्यापकों के निजी ग्रन्थालयों का मुआईना किया था । जहाँ से मुझे विषय सम्बन्धित काव्यसंग्रहों व सहायक ग्रन्थ उपलब्ध हुए ।

सब से पहले मैंने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय के शोधप्रबंधों व विविध सन्दर्भग्रन्थों का अध्ययन किया । तत्पश्चात् एच.एम.वी. आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, ऊना के ग्रन्थालय से काफी सहायक ग्रंथ और काव्यसंग्रह

उपलब्ध हो पाये । महिला कॉलेज, ऊना से भी काफी सहायक ग्रन्थ उपलब्ध हो पाए । शाह एच. डी. हाइस्कूल, ऊना के समृद्ध ग्रन्थालय से भी कई सारे सहायक ग्रन्थों की उपलब्धि हो पायी ।

एच. एम. वी. कॉलेज, ऊना के अध्यापक श्री जे. एच. धोन्ड़े साहब ने अपने निजी ग्रन्थालय से काव्यसंग्रह व सहायकग्रन्थों की सहायता की । साथ ही सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, हिन्दी भवन के प्राध्यापक डॉ. बी. के. कलासवा साहब ने, तथा मेरी मार्गदर्शिका डॉ. दक्षाबहन जोशी ने अपने निजी ग्रन्थालय से महत्त्वपूर्ण शोध सम्बन्धित साहित्य प्रदान कर मेरे शोध–प्रबंध को परिपूर्ण बनाने में सराहनीय योगदान दिया, जिससे मैं अपना शोधकार्य सुचारू ढंग से परिपूर्ण कर पाया ।

❖ विषय की सीमाव्याप्ति :

प्रत्येक विषय के सीमागत आयाम विस्तृत हैं लेकिन उसके शोधपरक अध्ययन के लिए कपितय सीमान्त निश्चित कर लेना अध्येता, शोधार्थी के लिए अत्यंत ही आवश्यक–सा प्रतीत होता है ताकि वह एक निश्चित परिक्षेत्र में प्राप्त तथ्यों के माध्यम से अपने प्रतिपाद्य तक पहूँच सके ।

विषय स्वतः ही 'आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण' की परिसीमाएँ भी निर्दिष्ट करता है । हिन्दी काव्य की साहित्यगत विशेषताओं के परिपार्श्व में तत्कालीन भारतीय नारी समाज, परिवार एवम् समाज का यथार्थ प्रामाणिक एवम् शोधपरक अध्ययन करना ही मेरे लिए प्रस्तुत विषय की सीमाव्याप्ति है ।

❖ प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध की विशेषताएँ :

कार्य चाहे किसी भी प्रकार का हो, उसकी कुछ–न–कुछ विशेषताएँ विद्यमान रहती हैं । किन्तु यहाँ तो साहित्य के क्षेत्र में शोधकार्य है, तब कुछ

नयी बात ज़रूर ही पैदा होती है । मेरे इस शोध–प्रबंध की कुछ विशेषताओं को निम्नरूप से प्रस्तुत करने का मैंने विनम्र प्रयास किया है ।

- प्रस्तुत अध्ययन एक तरह से नवीन एवम् मौलिक है ।
- आठवें दशक के काव्यों को लेकर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।
- आठवें दशक के तमाम शीर्षस्थ कवियों की ज्यादा से ज्यादा रचनाओं को प्रस्तुत करने का प्रयत्न रहा है ।
- आठवें दशक के साथ–साथ पृष्ठभूमि के रूप में वैदिक काल से लेकर मध्यकाल और आधुनिक काल में भारतेन्दु से लेकर अकवितावादियों तक के नारी विषयक नज़रिये का सिंहावलोकन किया गया है ।
- आठवें दशक की नारी को अपनी समग्रता के साथ प्रस्तुत किया गया है ।
- प्रस्तुत अध्ययन में नारी के अनेकविध रूपों की प्रस्तुति अलग–अलग कवियों के विचारों के मद्देनजर अनुसंधक ने अपनी सोच से की है ।
- प्रस्तुत अध्ययन में हिन्दी के नारी विषयक तमाम काव्यों का अध्ययन अलग से किया गया है ।
- आठवें दशक के हिन्दी काव्यों को भी अलग से प्रस्तुत किये गये हैं ।
- स्त्री–पुरुष विषयक भेदभाव रहित बात को प्रस्तुत किया गया है ।
- नारी जीवन–सम्बन्धित रचनाओं का विविध आयामोंसे अध्ययन प्रस्तुत किया गया है ।
- भारतीय नारी जीवन का मूल्यांकन किया गया है ।

- नारी सम्बन्धित किसी कल्पना की आड़ से मुक्त होकर स्पष्ट मौलिक सोच प्रस्तुत की गयी है ।
- नारी के स्वत्व की पहचान प्रतिपादित की गयी है ।

कृतज्ञता–ज्ञापन

अनुसन्धान सामूहिक मथान की प्रक्रिया से उपलब्ध नवनीत है । मुझे उस नवनीत प्राप्ति की प्रक्रिया से अवगत कराने में अनेक ज्ञानियों व स्नेहियों का योगदान मिला है, जिनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित न करना कृतघ्नी होने के बराबर ही है ।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के विषय–चयन से लेकर प्रत्यक्ष रूप देने में जिनका महत्त्वपूर्ण योगदान है, जिनके ज्ञान की रोशनी से सितारे भी नयी राह के अन्वेषण को उद्यत होते हैं, जिनका धैर्य सारस से भी मज़बूत है, विचारों की सोच चाँदनी की तरह शीतलता प्रदान करती है और जिनका व्यवहार माता तुल्य है, ऐसी सरल व स्नेहशील मेरी मार्गदर्शिका डॉ. दक्षाबहन जोशी की प्रशंसा करना सूरज की पहचान कराने, अँगुली निर्देश करने बराबर है । जिन्हों ने मुझे अनुसन्धान के सागर में गोता लगवाकर तह की वास्तविकता से अवगत करवाया है । जिनका धन्यवाद ज्ञापित करने की मैं विनम्र चेष्टा कर रहा हूँ ।

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, हिन्दी भवन के अध्यक्ष भीष्मपितामह, कर्मनिष्ठ भारत–भारती पुत्र डॉ. एस. पी. शर्मा साहब और हरफनमोला, सहृदय व अनूठे व्यक्तित्व के धनी सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, हिन्दी भवन के रीड़र डॉ. जी. जे. त्रिवेदी साहब का भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ । जिन्होंने हंमेशा मुझे शोधकार्य में उत्साहित किया ।

जिन्होंने येनकेन प्रकारेण गंगा के सलिल की भाँति मुझे लाभान्वित किया है, ऐसे मेरे गुरुजी, मेरे अभिभावक, मेरे जीनव के प्रत्येक पहलुओं के

मार्गदर्शक, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय के हिन्दी भवन के प्राध्यापक डॉ. बी. के. कलासवा साहब, जिन्होंने पीएच.डी. कार्य की प्रेरणा से पूर्णाहूति तक की तमाम प्रकार की सहायता उपलब्ध करवाई है । उनका भी इस अवसर पर धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूँगा ।

एच.एम.वी. आर्ट्स एण्ड का मेर्स कॉलेज, ऊना के कर्मयोगी, मर्मज्ञ, मौलिक विचारधारा सम्पन्न ऐसे हिन्दी अध्यापक श्री जे. एच. धोण्ड़े साहब का भी धन्यवाद ज्ञापित करना चाहूंगा, जिन्होंने अपने निजी ग्रन्थालय से शोध–कार्य की चालिस प्रतिशत किताबें देकर मेरी बहुत बड़ी सहायता की और समय–समय पर मार्गदर्शन करते रहे और प्रोत्साहित करते रहे ।

एच. एम. वी. आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, ऊना के ग्रन्थपाल आदरणीय श्री विनोदभाई वाजा का भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ । जिन्होंने अनेक व्यवधानों के बावजूद बहुत सारे सहायक ग्रन्थ उपलब्ध करवा के मेरी बहुत बड़ी समस्या हल कर दी ।

दर्पण प्रकाशन, नड़ियाद वाले मेरे परम मित्र अभिषेक दहौलिया जी का भी धन्यवाद करता हूँ । जिन्होंने विषय सम्बन्धित आवश्यक किताबें समय–समय पर घर तक पहूँचाई ।

मेरी स्कूल, शाह एच. डी. हाइस्कूल, ऊना की प्रधानाचार्य महोदया पी.एन. पुरोहित का भी धन्यवाद करना न भुलूँगा । जिन्होंने हंमेशा मेरे उत्कर्ष की कामना की । साथ ही स्कूल के समृद्ध ग्रन्थालय से महत्त्वपूर्ण किताबें अर्जित करवाने में जिन्होंने बहुत बड़ा योगदान दिया ऐसे मेरे अभिभावक व प्रभारी ग्रन्थपाल श्री डी. जे. पानेरी साहब का भी धन्यवाद अदा करता हूँ ।

आर्थिक स्थिति तंग होने के बावजूद भी मुझे पीएच.डी. कार्य के लिए हंमेशा प्रोत्साहित करते रहे व धैर्यवंत बने रहने के लिए आश्वासन देते रहे ऐसे मेरे पिताजी जीवनगिरि और माताजी लीलाबहन व हंमेशा मेरे लिए अलग–अलग जगह से किताबें लाकर मेरे शोध–कार्य में सहायता प्रदान करनेवाली मेरी छोटी बहन पारूल गोस्वामी और 'आप क्या कर रहे है ?' यह प्रश्न पूछकर मुझे कुछ करना है ऐसी प्रेरणा देने वाला मेरे छोटे भाई अल्पेश गोस्वामी का भी धन्यवाद करना चाहूँगा ।

नारी विषय पर विचार विमर्श में जिनसे नई–नई बातें जानने को मिली थी, ऐसे मेर सहकर्मी, मेरे अज़ीज राजेश गोसाई, मनिष गोस्वामी और मेरा यह कार्य जल्दी पुरा हो जाये ऐसी ख्वाहिश रखनेवाले तथा शोधकार्य वश ऊना से राजकोट आते वक्त रात्रिनिवास की सुविधा उपलब्ध करानेवाले मेरे मित्र परेश पण्ड़या, धीरज गोस्वामी, कौशिक गोस्वामी और राजेश जोशी का भी धन्यवाद अदा करता हूँ ।

साथ ही उन तमाम लोगों का भी मैं तहेदिल से शुक्रगुजार हूँ, जिन्होंने मेरे इस कार्य में प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से सहयोग दिया है ।

स्थल : ऊना

दिनाक : _____

विनीत,

गोस्वामी किशोरगिरि जे.

अनुक्रमणिका

	पृष्ठ क्रमांक
प्रथम अध्याय नारी के विविध रूप व विविध काल में नारी की स्थिति	००१ - ०५०
द्वितीय अध्याय आदि व मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण	०५१ - ०६५
तृतीय अध्याय आधुनिक काल : छायावाद और नारी विषयक दृष्टिकोण	०६६ - १३०
चतुर्थ अध्याय प्रगति व प्रयोगवादी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण	१३१ - १५१
पंचम अध्याय नयी कविता, नवगीत और साठोत्तरी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण	१५२ - १७७
षष्ठम अध्याय आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण	१७८ - २२८
उपसंहार	२२९ - २४१
परिशिष्ट	२४२ - २४८

प्रथम अध्याय

नारी के विविध रूप व विविध काल में नारी की स्थिति

१.० प्रास्ताविक
१.१ आद्यशक्ति का शाब्दिक अर्थघटन
१.२ वैदिक व स्मृतिकाल में नारी की स्थिति
१.३ मध्ययुग में नारी की स्थिति
१.३.१ राजपूत युग
१.३.२ मुस्लिम युग
१.३.३ मुगल युग
१.४ ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति
१.४.१ भारतीय महिला मण्ड़ल
(Women's Association of India)
१.४.२ भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद
(National Council of Women in India)
१.४.३ अखिल भारतीय महिला सम्मेलन
(All India Womens Conference)
१.४.४ कस्तूरबा ट्रस्ट
१.५ स्वतंत्रता से लेकर आजतक नारी की स्थिति
१.५.१ आधुनिक नारी अवगुण : स्वामिनी
१.५.२ विश्व फलक पर नारी : एक परिदृश्य
१.५.३ आधुनिक नारी का सामाजिक पिछड़ापन
१.५.४ आधुनिक नारी के विरुद्ध काम अपराध
१.५.५ भारतीय नारी का विचित्र संयोग
१.५.६ भारतीय नारी की राजनीति में पैठ
१.५.७ राष्ट्रीय महिला आयोग
१.५.८ नारी को लेकर विविध सम्मेलन : फलश्रुति ?
१.५.८.१ अन्तर संसदीय सम्मेलन व
महिला राजनीतिक भागीदारी
१.५.८.२ विश्व सांसद सम्मेलन, नई दिल्ली
१.६ निष्कर्ष

प्रथम अध्याय
नारी के विविध रूप व विविध काल में नारी की स्थिति

१.० प्रास्ताविक

किसी भी युग में, किसी भी काल में, दिन में, धूप में या तारों की बारात में नारी एक चमक है । जो हर किसी निगाहदार की निगाह का आकर्षण है । क्योंकि उसका अपना निजी व्यक्तित्व है, आभा है । चाहे वह बाल्यावस्था हो, किशोरावस्था हो, युवावस्था हो, प्रौढ़ावस्था हो या वृद्धावस्था हो वह एक इन्द्रजाल है । जो पुत्री रूप में हो सकता है, प्रेमिका रूप में हो सकता है, पत्नी रूप में हो सकता है, आदरणिया रूप में हो सकता है या फिर माता रूप में हो सकता है । एक वात्सल्याभिव्यक्ति का, एक शेखचली स्वप्न देखने का, एक नैहाभिव्यक्ति का, एक समादरणीयता का, एक निःस्वार्थ प्रेमाभिव्यक्ति का ।

ऐसी इस संसार की आद्य व आराध्य शक्ति की मैंने उस कातर दृष्टि को देखा, बिखरे व सूखे मानवता के पुष्प को देखा फिर उन आँखों का सूखापन भी देखा, जहाँ कुछ भी शेष नहीं था । निराशा का रेगिस्तान ही फैला था । किसी कवि की पंक्तियाँ याद आती है कि –

खुश्क आँखों पर शक न कर
इस तरह भी आँसू बहाये जाते है ।

मैंने यहाँ इन पीलेफक चेहरों की वेदना को शब्द, तर्क के नये आयाम देने का प्रयत्न किया है । दुराचारी पुरुष व स्त्री के विवेक व बुद्धि को जगाने

का प्रयत्न किया हैं । यदि यह मेरा अपराध है तो मैं मुज़रिम हूँ जैसा कि किसी उर्दू शायर ने कहा कि –

हाँ हमीं मुज़रिम है,
हम को ही चढ़ा दो दार पर ।
हमने छेड़ी है,
ज़िन्दगी के जर्द (पीले) रुखसारों की बात ।

मेरी रचना की नायिका–दलित, दमित, उत्पीड़ित, शोषित, उद्वेलित महिला है । यह मेरी इस रचना की पहचान हैं । उसके आँसुओं की जितनी कहानियाँ मैंने सुनी, जानी, समझी व पढ़ी उनको लेखनीबद्ध करने का यथेष्ट प्रयत्न कर रहा हूँ ।

पुरुष ने जो सामाजिक व्यवस्था दी, उसमें नारी को गृहस्वामिनी बना दिया और यह नाम देकर उसे चार दीवारी में बन्द कर दिया । उसे यह बता दिया कि उसे बन्धनों की स्वामिनी बनकर रहना है । सीता ने स्र्वस्व त्याग किया, उसे निर्वासित कर दिया । निःसहाय वह वाल्मीकि आश्रम में दिन काटती रही, आँसू पीती रही फिर भी राम के प्रेम को नहीं भूली । राधा ने कन्हैया को रसाधिराज कृष्ण कन्हैया बनाया । राधा के निश्छल प्रेम ने उसको मोहन, श्याम क्या कुछ नहीं बनाया किन्तु गोकुल से मथुरा की पाँच कोस की दूरी पर बिराजे कृष्ण ने राधा नागरी का कभी नाम तक नहीं लिया । द्रौपदी का भरी सभा में अपमान किया गया उसका क्या दोष था ? नारी को पुरुष से न इच्छा का इतिहास चाहिए था और न विषमता का विष । नारी को पुरुष से सामंजस्य का संसार चाहिए था उसे सिर्फ वही चाहिए था जो न्यायसंगत था ।

प्रेम की भी अपनी परिभाषा है, वह किसी को पाने की तीव्र इच्छा है, प्रेम में कोई आत्मसमर्पण नहीं चाहिए । किसी भी रूप में चाहत मिले केवल इतना ही । सिर्फ शरीर चाहिए, हृदय से क्या लेना ? प्रीत की राधा के स्थान पर कामुक ऐश्वर्या की अथाह चाह है जिसे येन–केन–प्रकारेण छलबल से पाना ही जीवन का ध्येय बन गया है ।

इतिहास ने हिटलर दिया, जार के विरुद्ध बोल शेविक दिया । इटली में बिस्मार्क दिया । धर्म के नाम पर बँटवारा करने वाले, मसीहा का बँटवारा करने वाले प्रजाति श्रेष्ठता दम्भ में विश्व में दुन्दुभि बजाने वाले । अगर इनको सुशिक्षित माता मिली होती तो वैसा न होता जैसा हुआ और हो रहा है । आज के इस दो टांगों वाले सुन्दरतम, प्रियतम प्राणी में भी हिटलर मुसौलिनी छिपा है । आज का प्राणी चाहे स्त्री हो या पुरुष वह इतिहास से बदला लेना चाहता है ।

जो युग माइकल जेक्सन के अर्धनारीश्वर रूप को चाहता हो, जो एलिजाबेथ टेलर व चार्ली का दिवाना हो, जो आज के हीरो–हीरोइन का नकलची हो और उनकी अदाओं पर मर मिटने को तैयार हो, जो प्यार की यादगार ताजमहल के साये में 'पोप सोंग' की साधना करता हो, जो डायना के पीछे पागल सा भागता हो, जो समुद्र में उठी तूफानी लहरों में सुख खोजता हो जिसके लिए सौंदर्य गणितीय सूत्र हो, जो मदिरा में मन की आकांक्षा का आकाश नापना चाहता हो, जिस युग में विज्ञापन को स्वर्णिम संसार उपभोग व नग्नता का उपहार देता हो निर्लजता के सहारे खड़ा हो उस युग से मानवता की क्या अपेक्षाएँ की जाये ।

साथ रहे और विश्वास भी न हो यह कैसा साथ ? नदी सागर को सर्वस्व मानती है फिर भी प्यासी । यह सागर प्रेम ही उसे रुलाता हैं क्योंकि

समुद्र की तरह आँसू भी तो खारे ही होते है । ऐसा लफंगापन यदि सर्वप्रिय होता तो कोई गांधी पैदा नहीं होता । गांधी हुआ है और अहिंसक युद्ध लड़ा है । किन्तु दुनिया का सबसे बड़ा अहिंसक महात्मा ही कहता है कि सबसे पास हथियार होना चाहिए । मैं कहता हूँ सबसे पहले आत्मरक्षा, आत्मसम्मान व अधिकार प्राप्ति के लिए नारी के पास हथियार होना चाहिए । इस संसार में जो जिसको चाहता है, वह उसे नहीं मिलता, जो जैसा चाहता है वह नहीं मिलता, जिसको जो चाहिए वह नहीं मिलता, जिसको नहीं चाहिए, वह उसे मिलता है ।

गालिब याद आते है कि–

पूछते है वो कि गालिब कौन है ?

कोई बतलाये कि हम बतलाये क्या ?

आज यही स्थिति विश्वनारी की है ।

गालिब ने जब गालिब से ही स्वयं के बारे में पूछा तो उन्होंने यही कहा–

हम वहाँ पर है जहाँ से हम को भी हमारी खबर नहीं मिलती ।

नारी अस्मिता की पहचान के संदर्भ में आज यही स्थिति है । अस्तु ''नारी अधिकार चेतना एव जयते'' का उद्‌घोष करना ही है । इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो कवि फ्रॉस्ट की पंक्तियाँ, श्री नहेरु सोने से पहले उच्चारित करते थे, वही करना है–

''मीलों चलना हैं, इससे पहले कि मैं सोऊँ ।''

*''**Miles to go before I sleep**''*

१.१ आद्यशक्ति का शाब्दिक अर्थघटन

योगीराज कृष्ण के कई सारे नाम थे और हैं । प्रत्येक नाम–संज्ञा विशेष के साथ उसका अपना इतिहास था । ठीक वैसे ही इस संसार की आद्यशक्ति को भी अनेक संज्ञाओं से अभिहित किया है । 'महिला' शब्द की व्युत्पत्ति ही पुरुष जीवन में महिला के स्थान व स्थिति, पद व प्रतिष्ठा, कारण व कारकसूचक है । पुरुष ''धर्म'' ही तो है, जिसे नारी 'महि' अर्थात् धरा, जो पुरुष रूप 'धर्म' को आधर देती है, आगार देती है, आचार देती है, विलास देती है । 'महिला' दो शब्दों के योग से बना है 'महि' अर्थात् 'उत्सव' और दूसरा शब्द 'इला' अर्थात् जननी अर्थात् महिला वह जो उत्सव की जननी है । इस प्रकार महिला का पर्दापण पुरुष जीवन में उत्सव रूप होता है व शिव, सुन्दर व शोभन की सुकोमल आगार रूप पुरुष की शक्ति है । यह पुरुषजनित, सेवित, पालित, रक्षित–शक्ति होती है, जो रचना विधा रूप, सृजन साधना व साधना श्रृंगारित रूप होती है, जिसमें साम है, कला है, सुगन्ध है, स्मिता है, रास है, रंग है ।

यह महिला 'स्त्री' भी कहलाती है जो स्थिर रहती है और सदा पुरुष के लिए 'अस्ति' अर्थात् अस्तित्वमान रहती है, अर्थात् पुरुष में स्थित रहकर, पुरुषार्थ अपनी स्थिति बनाकर पुरुष को आनन्दित करने में सदा अपनी 'स्थिति' मुदित भावमय बनाये रखती है, जो यह मानती है उसका अस्तित्व ही पुरुष के लिए है और उसका सम्पूर्ण जीवन समग्र आत्मीयता के साथ पुरुष को समर्पित है ।

'स्त्री' को 'नारी' भी कहा जाता है अर्थात् 'न रमते इह जगति इति नर' और इसका स्त्रीवाचक रूप 'नारी' बना । किन्तु आजकल उलटी गंगा

प्रवाहित है । मूर्ख पुरुष ही नारी का शत्रु होगा किन्तु नारी का शत्रु नारी अग्रस्थ हैं ।

पुरुष ने 'नारी' को अबला कहा अर्थात् जिसमें बल नहीं है ऐसी अपाहिज, लाचार, बेबस । पुरुष दुनिया में किसी पे बल प्रयोग में असफल होने पर अपना स्वामित्व अबला पर जड़ता है, अबला पे बल प्रयोग करता है ।

'अबला' को 'पुरुष' ने 'नीरजा' कहा जो बहती रहे । मोती समान आँसू में समन्दर समान पुरुष ने ही खारापन भरने का यथासंभव यत्न किया है ।

'नीरजा' को 'वंचका' कहा जिसे छल की सीख देने का कार्य स्त्री और पुरुष दोनों ने किया ।

पुरुष ने इस शक्ति को 'वोमन' भी संज्ञा दी । संधि विच्छेद कर समास व विग्रह की भाषा में उपहास उड़ाया । नारी अर्थात् वोमन । 'वो वटू मेन' अर्थात् वो (***Woe***) टू मेन (***Man***) जो पुरुष के लिए सदा दुःख, क्लेश व संकट का कारण बनी ।

इस प्रकार इस संसार की आद्यशक्ति को कई सारी संज्ञाओं से अभिहित कर उसका अनर्थघटन कर उसे लताड़ने, प्रताड़ने के अनेकविध यत्न–प्रयत्न नारी ने नारी से घृणाभिव्यक्ति के लिए व पुरुष ने अपने दर्प–दंभ व स्वार्थ पोषण के लिए किये ।

१.२ वैदिक व स्मृतिकाल में नारी की स्थिति

वैदिक काल लगभग २५०० ई. पू. से ५०० ई. पू. तक माना जाता है । वैदिक संहिताएँ, ब्राह्मण ग्रंथ, आरण्यक तथा उपनिषद इसी काल के

अंतर्गत माने जाते हैं । जिस काल में रामायण, महाभारत, पुराण तथा वेदांगों की रचना हुई, वह काल स्मृतिकाल के नाम से अभिहित किया जाता है ।[१]

विश्व का सबसे प्राचीन ज्ञान–संस्कार कोश आर्यावर्त का प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है । जिसमें नारी की स्थिति का दिग्दर्शन ऋग्वेद में मिलता है । ऋग्वेद में कुछ ऐसी बातें पाई जाती हैं जो प्राचीन काल से चली आनेवाली आर्य नारी की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डालती है ।[२] जिस में इस संसार की आराध्य शक्ति नारी स्थिति विषयक जानकारी देती ऋचाएँ बिखरी पड़ी हैं । वेद काल में नारी को एक रत्न कहा जाता था । पुरुष की भाँति नारी की भी अपनी एक चमक थीं । उसे पुरुष से कम नहीं समझा जाता था । प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष के समान ही उसा स्थान था ।

वैदिक कालावधि दौरान पाँचवे अथवा आठवें वर्ष के उपरांत लड़के या लड़की को घर में न रखते हुए पाठशाला में भेज दिया जाता था ।[३] विद्याभ्यास का स्थान दूर देश में था । बालक–बालिकाओं की पाठशाला परस्पर दो कोस की दूरी पर रहती थीं । जिस में ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मंत्रों, संध्योपासना, प्राणायाम, देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ आदि क्रियाकलाप रहते थे ।[४] नारियाँ यज्ञपवीत धारण करती थीं । उनका उपनयन संस्कार होता था और वे सन्ध्या–वंदना आदि भी करती थीं । उनकी शिक्षा–दीक्षा का भी समुचित प्रबन्ध था ।[५] सर्व मनुष्यों को वेदादि पठन और श्रवण करने का अधिकार था जिससे प्रमाण रूप यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय के दूसरे मंत्र में लिखा है कि – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र और अपने भृत्य या स्त्री आदि और अतिशूद्रादि के लिए भी वेदों ने प्रकाश किया है ।[६]

उक्त बात से यह स्पष्टरूपेण प्रमाणित होता है कि स्त्रियों को भी वेदादि का अध्ययन करने का अधिकार था । अथर्ववेद में भी नारी शिक्षा की बात

स्पष्टरूप में लिखी है कि कुमारी ! ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त युवती हो पूर्णयुवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान और पूर्णयुवावस्था वाले पुरुष को प्राप्त हो ।[७] इस प्रकार वैदिक युग में नारियाँ वेदाध्ययन व ज्ञान प्राप्ति की अधिकारिणी थीं । इतना ही नहीं अनिवार्य भी था । कुछ नारियाँ तो सैनिक शिक्षा भी प्राप्त करती थीं और दूत बनकर दौत्य–कर्म भी कुशलतापूर्वक करती थीं ।[८] राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अथार्त् युद्धविद्या भी अच्छी तरह जानती थीं । क्योंकि यदि न जानती होती तो कैकेयी आदि दशरथादि के साथ युद्ध में कैसे जा सकती ? और युद्ध कर सकती ? अतः ब्राह्मणी को सर्वविद्या, क्षत्रिया को सर्वविद्या तथा राजविद्या विशेष, वैश्या वर्ण को व्यवहारविद्या और शूद्रा को पाकादि विद्या आदि अवश्य सीखनी पड़ती थीं ।[९] साथ–साथ व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्पविद्या भी सीखने का आदेश हैं । स्त्रियों को पुरुषों के ही समान उच्च शिक्षा प्रदान की जाती थीं । साहित्य के साक्ष्य के अनुसार विश्ववारा, लोपामुद्रा, सिक्ता, निवावरी और घोषा ऋग्वेद की प्रतिभाशालिनी कवयित्रियाँ थीं ।[१०] इस युग की गार्गी, घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, जुहू, अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, दिति, सरस्वती, सरमा, रोमशा, उर्वशी, शची और शक्ति जैसी अनेक मंत्र–दृष्टा एवं ब्रह्मवादिनी सन्नारियों का उल्लेख हमें वेदों में प्राप्त होता है ।[११]

वेदादि शास्त्रों के अध्ययन उपरांत ही विवाह सम्पन्न होता था । विवाह समय तक ब्रह्मचर्य पालन अनिवार्य था । जब यथावत् ब्रह्मचर्य पालनकर आचार्यानुकूल बरतावकर, धर्म से चार, तीन या दो अथवा एक वेद सांगोपांग पढ़कर तथा जिसका ब्रह्मचर्य खंड़ित न हुआ हो वह पुरुष अथवा स्त्री गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर सकते थे ।[१२] स्त्रियाँ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने तक ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं ।[१३] विवाह सम्बन्ध में गोत्र को विशेष महत्त्व दिया

जाता था । मनु महाराज ने इस सम्बन्ध में कहा है कि जो कन्या माता के कुल की छः पीढ़ी में न हो और पिता के गोत्र की न हो उस कन्या से विवाह करना उचित है ।[१४] स्पष्ट है कि वैदिककाल में विवाह को लेकर काफी बारीकी भरा अन्वेषण रहता था । दूरदेश की कन्याओं से विवाह किया जाता था और दूरदेश में कन्याओं को विवाहित किया जाता था । अतः दुहिता, दुर्हिता, दूरेहिता, भवतीति आदि संज्ञाओं से संबोधित किया जाता था । दूरदेश में विवाह का प्रमाण महाभारत में मिलता है जैसे कि धृतराष्ट्र का विवाह गान्धार जिसे 'कंधार' कहते है वहाँ की राजपुत्री के साथ हुआ था । माद्री पाण्डु की स्त्री 'ईरान' के राजा की कन्या थीं और अर्जुन का विवाह पाताल में जिसे अमेरिका कहते है वहाँ के राजा की पुत्री उलुपी के साथ हुआ था ।[१५] स्मृति में यहाँ तक कहा गया है कि चाहे कितना धन, धान्य, गाय, बकरी, हाथी, अश्व, राज्य, और श्री आदि से समृद्ध कुल क्यों न हो, तो भी विवाह सम्बन्ध में निम्न लिखित दस कुलों का त्याग करना चाहिए ।

जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित, वेदाध्ययन से विमुख, शरीर पर बड़े–बड़े रोंवें या हरस, क्षय, दम, खाँसी, अमाशय, मिरगी, श्वेत कुष्ट और गलित कुष्ट युक्त कुलों की कन्या या वर का परस्पर विवाह न होना चाहिए । क्योंकि वे सारे दुर्गुण और रोग विवाह करनेवाले कुल में प्रविष्ट हो जाते हैं । अतः उत्तम कुल के लड़के–लड़की का विवाह होना चाहिए । कन्या की प्रकृति सम्बन्ध में प्रकाश डालते हुए लिखा है कि – न पीले वर्ण की, न अधिकांगी, न अधिक बलवाली, न रोगयुक्ता, न लोमरहिता, न अतिलोमवाली, न बलवादी और न भूरे नेत्रों वाली । न ऋक्ष अर्थात् नक्षत्रों के नामवाली, वृक्षों के नामवाली, नदी के नामवाली, अन्त्य नामवाली, पक्षी के नामवाली पर्वतों के नामवाली, साँपों के नामवाली, प्रेष्य नामवाली और भीषण

नामवाली कन्या से विवाह करना नहीं चाहिए । विवाहोचित कन्या कैसी होनी चाहिए जिसके बारे में स्मृति में लिखा है कि जिसके अंग सरल, सीधे और विरुद्ध न हो, जिसका नाम सुन्दर हो, जिसकी चाल हँस और हथनी तुल्य हो, सूक्ष्मलोम, केश और दाँतवाली हो और जिसका सर्वांग कोमल हो ऐसी स्त्री के साथ विवाह करना चाहिए ।[१६] वात्स्यायन कामसूत्र अनुसार कन्या के माता–पिता दोनों जीवित होने चाहिए । पुरुष और कन्या के बीच कन्या तीन वर्ष छोटी होनी चाहिए । सुशील व कौटुम्बिक रिश्तेदारी विशाल होनी चाहिए । शरीर पर सुन्दर निशानियाँ होनी चाहिए ।[१७] सोलह वर्ष से लेकर चौबीस वर्ष पर्यन्त कन्या का और पच्चीस वर्ष से लेकर अड़तालीसवें वर्ष पर्यन्त पुरुष के विवाह का समय उत्तम माना जाता था । उसमें भी सोलहवें और पच्चीसवें वर्ष में किया गया विवाह निकृष्ठ, अट्ठारह–बीस की स्त्री और तीस, पैंतीस या चालीस वर्ष के पुरुष का विवाह मध्यम और चौबीस वर्ष की स्त्री और अड़तालीस वर्ष के पुरुष का विवाह उत्तम हैं ।[१८] जब तक वैदिक विधि नहीं की जाती तब तक पूर्ण विवाह नहीं माना जाता था । देहशुद्धि के लिए प्रत्येक पुरुष और स्त्री को उचित वय और समय पर लग्नसंस्कार ग्रहण अवश्य करना पड़ता था । प्राचीन समय में मनु ने कहा था कि ईश्वर ने माता बनने के लिए स्त्री का और पिता बनने के लिए पुरुष का सृजन किया है ।[१९] विवाह पद्धति में स्वयंवर को ही श्रेष्ठ बताया है । क्योंकि स्वयंवर की रीति आर्यावर्त में परम्परा से चली आयी है । वही विवाह उत्तम है । जब स्त्री–पुरुष विवाह करना चाहते है तब विद्या, विनय, शील, आयु, बल, कुल और शरीर के परिमाणादि यथा योग्य होने चाहिए । जब तक इन बातों का मेल नहीं बैठता तब तक विवाह में बिलकुल सुख मिलता नहीं ।[२०] स्मृति में विवाह के आठ प्रकार दर्शाये गये है जिसमें ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच । इन सब

विवाह में ब्राह्म विवाह सर्वोत्कृष्ट, दैव और प्रजापत्य मध्यम, आर्ष, आसुर और गन्धर्व निकृष्ट, राक्षस अधम और पैशाचक महाभ्रष्ट बताया गया है ।[२१]

प्रत्येक व्यक्ति को विद्याभ्यास एवम् ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त कर यज्ञ का अग्नि अपने घर में प्रज्वलित रखने का आवश्यक धार्मिक फर्ज़ था । धार्मिक व कौटुम्बिक दृष्टि से यज्ञ का अत्यन्त महत्त्व था । किन्तु पत्नी के बिना यह धार्मिक कर्तव्य पूर्ण नहीं हो सकता था ।[२२] अतः प्रत्येक पुरुष को विवाह करना आवश्यक था और विवाह तब होता था जब एक वर्ष अथवा छः मास ब्रह्मचर्याश्रम और विद्या पूर्ण होने में शेष रहे; तब उन कुमारों और कन्याओं के प्रतिबिम्ब छायाचित्र अर्थात् जिसे फोटोग्राफ कहते है अथवा प्रतिकृति उतार कर कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की और कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृतियाँ भेजी जाती थीं । जिस–जिस का रूप मिले तिस–तिस का इतिहास अर्थात् जन्म से लेकर उस दिन पर्यन्त जन्मचरित्र पुस्तक होती थीं । जिसे अध्यापक मंगाकर देखते । जब उभय के गुण–कर्म–स्वभाव सदृश हो, तब जिस–जिस के साथ जिस–जिस का विवाह होना उचित समझे वह–वह पुरुष और कन्या के प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और कुमार के हाथ में देकर कहते कि 'इस सम्बन्ध में आपका मत हमें बताएँ जब उभय का निश्चय परस्पर विवाह करने का हो जाये तब उभय का समावर्तन एक ही समय में करवाया जाता था । यदि वह उभय अध्यापकों के समक्ष विवाह करना चाहें तो वहाँ अन्यथा कन्या के माता–पिता के घर में विवाह होना उचित समझा जाता था ।[२३] ऋग्वेद में प्रदत्त ऋचाओं के अनुसार वधू पितृगृह से पतिगृह जाती थीं । अपने नवगृह में वह सास–ननद–देवर सब पर शासन करती हुई समादरणीय स्थान प्राप्त करती थीं ।[२४] स्त्री जीवन का सुन्दर क्षण विवाह बन्धन नहीं किन्तु गर्भधारण है । ऋग्वेद में भी विवाह

सम्बन्धित विधान करते लिखा है कि हे कुमारी ! सन्तानोत्पत्ति आदि प्रयोजन हेतु तुम्हारा पाणिग्रहण करा रहा हूँ ।[२५] पुत्र जन्म अधिक आनंददायक अवश्य था, किन्तु उत्पन्न होने के उपरांत पुत्री का भी उसी प्रकार आदर होता था । उनके समस्त धार्मिक संस्कार एवम् शिक्षा की व्यवस्था पुत्रों के समान ही की जाती थीं ।[२६] क्योंकि स्मृति में मनु महाराज ने ही कहा है कि 'पुत्रेण दुहिता समा ।' अर्थात् पुत्री–पुत्र के बराबर है वह आत्मरूप है, अतः वह पैतृक सम्पत्ति की भी अधिकारिणी है ।[२७] स्त्री–पुरुष दोनों को वैवाहिक जीवन में मान–सन्मान और सत्कार मिलता था जिसका कारण यह भी था कि वैदिक युग में वर्ण व्यवस्था थीं । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस प्रकार चार विभागों में समाज विभाजित था । जिस में उच्च वर्ण का पुरुष अपने से निम्न वर्ण की स्त्री के साथ विवाह कर सकता था । इस प्रथा को अनुलोम विवाह के रूप में अभिहित किया गया है । निम्न वर्ण का पुरुष उच्च वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकता था जिसे प्रतिलोम कहा जाता था । अनुलोम और प्रतिलोम विवाह समाज मान्य थे अतः अन्तर्लग्न का नियम समग्र वर्णव्यवस्था तक व्याप्त था और समाज में जीवन साथी चयन का क्षेत्र विशाल था ।[२८] स्मृति में कहा गया है कि सत्कार व उत्सव के समय भूषण, वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार किया जाता था । कहीं–कहीं नारी की पूजा करनी चाहिए ऐसा भी कहा गया है पूजा का मतलब यह नहीं होता कि धूप–दीप किया जाय किन्तु पूजा का मतलब यहाँ सत्कार या यथायोग्य व्यवहार ही लेना है ।[२९]

वैदिक युग में स्त्री–पुरुष के एकाधिक विवाह का निषेध था ।[३०] स्मृति में भी लिखा है कि – जिस स्त्री या पुरुष का मात्र पाणिग्रहण संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो, अर्थात् अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष हो तो उसका अन्य स्त्री या पुरुष के साथ पुनर्विवाह होना चाहिए ।[३१] किन्तु ब्राह्मण,

क्षत्रिय और वैश्य वर्णों में क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष का पुनःर्विवाह नहीं होना चाहिए । शूद्रों में पुनर्विवाह प्रथा प्रचलित थीं । किन्तु वंश्च्छेदन हो जाने पर या कुल नष्ट हो जाने पर या पुत्र प्राप्ति के लिए; कुल की परम्परा को बरकरार रखने के लिए अपनी स्वजाति के बालक को दत्तक ले सकते थे । अथवा ब्रह्मचर्य का पालन करें अन्यथा नियोग द्वारा संतानोत्पत्ति का विधान ऋग्वेद में मिलता है । क्योंकि वेदों में लिखा है कि विवाह एक ही बार होता है जो कुमार और कुमारी का ही होने में न्याय और विधवा स्त्री के साथ कुमार पुरुष और कुमारी के साथ मृतस्त्रीक पुरुष का विवाह होने में अन्याय है ।[३२] अतः नियोग होना चाहिए पुनर्विवाह नहीं इस बात का प्रमाण ऋग्वेद में है कि हे वीर्यसिंचन में समर्थ ऐश्वर्ययुक्त पुरुष ! तु इस विवाहित स्त्री को उत्तम पुत्रों से युक्त और उत्तम सुख से युक्त कर । उसमें दस पुत्रों को उत्पन्न कर ज्यादा नहीं । ईश्वर ने पुरुष को दस ही संतान उत्पन्न करने की आज्ञा दी है । हे स्त्री ! तु विवाहित पति से लेकर ग्यारहवें पति तक नियोग कर । अर्थात् कदापि आप्तकाल प्राप्त हो तो एक–एक की कमी में मात्र संतानोत्पत्ति के लिए ही दस पुरुष तक ही नियोग करना चाहिए । ऋग्वेद में एक विधान है कि – 'विधवा देवरम् इव' अर्थात् जिस प्रकार विधवा स्त्री संतानोत्पत्ति के लिए दूसरे वर (पति) के पास जाती है उस दूसरे पति को देवर कहते है ।[३३] इस प्रकार ऋग्वेद में पुत्र प्राप्ति की आकांक्षा अनेक स्थान पर व्यक्त की गयी है । प्राचीन समय में जब शिष्य विद्याग्रहण कर ऋषि के आश्रम से बिदा होता था तब उसे आदेश देते हुए गुरु कहते थे कि – जिस प्रकार आपके पूर्वजों ने संतति उत्पन्न की है उसी प्रकार आप भी करें । मनु ने भी जिस पुरुष को पत्नी और संतान हो उसे ही संपूर्ण पुरुष (***Perfect Man***) कहा है ।[३४]

इस प्रकार विवाह की भाँति नियोग भी प्रसिद्धि से ही करवाया जाता था । जिस प्रकार विवाह में भद्र पुरुषों की व कन्या–वर की प्रसन्नता होती है उसी प्रकार जब स्त्री–पुरुष का नियोग होनेवाला हो तब स्वपरिवार के पुरुष–स्त्रियों के सम्मुख प्रकट करते है कि – ''हम लोग नियोग संतानोत्पत्ति के लिए कर रहे हैं । नियोग का नियम पूरा होगा तब हम संयोग करेंगे नहीं । इस प्रकार नियोग स्ववर्ण अथवा अपने से उत्तम वर्ण में किया जाता था ।

उक्त अवलोकन से स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में नारी की स्थिति समुन्नत थीं और उन्हें पुरुष के समान ही अधिकार प्राप्त थे । किन्तु ईसवी शताब्दी के प्रारंभ तक नारी अपने पूर्व गौरव और मर्यादा को खो चुकी थीं । ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ में विवाह की अवस्था कम हो जाने के कारण स्त्रियों की शिक्षा व संस्कृति को बहुत धक्का पहुँचा । अब उन्हें १२ या १३ वर्ष की उम्र तक अपनी शिक्षा को समाप्त कर देना पड़ता था । जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनसे आज्ञाकारिता की अपेक्षा की जाने लगी । सामाजिक जीवन में भी उनका उतना आदरणीय स्थान नहीं रह गया था । सुखी और समृद्धशाली परिवारों में कन्याओं को साहित्यिक और सांस्कृतिक शिक्षा दी जाती थीं । इस युग में शीलभट्टारिका आदि महिलाएँ कवयित्रियों और लेखिकाओं के रूप में प्रसिद्ध थीं । धर्मशास्त्र के प्रारंभिक लेखक बाल–विधवा के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण रखते थे । ६०० ई. से विधवा–विवाह की प्रथा समाप्त हो गयी । नारी की सामान्य स्थिति में परिवर्तन प्रारंभ हो गया था और इसके बाद से निरंतर उनकी स्थिति गिरती गई । मध्य युग में आकर उसकी दशा बहुत अवनत हो गई ।

१.३ मध्ययुग में नारी की स्थिति

इतिहास उन्हीं व्यक्तित्वों को अपने स्वर्णपटल पर सजाता है, जिन्होंने अपने देश–समाज या धर्म के लिए कुछ करगुज़रने की तमन्ना की हो, जिसमें वह सफल व असफल रहा है । हिन्दुस्तानी इतिहास का मध्ययुग भी एक ऐसी ही दास्तां की ज़जीर से जकड़ा हुआ इतिहास है । जो नितांत विक्षुब्ध, अशान्त तथा संघर्षमय काल था ।

मुसलमानों के हमले उत्तर–पश्चिम की ओर से लगातार होते रहते थे । इनके धक्के अधिकतर भारत के पश्चिमी प्रांत के निवासियों को सहने पड़ते थें जहाँ हिन्दुओं के बड़े–बड़े राज्य प्रतिष्ठित थे । गुप्त साम्राज्य ध्वस्त होने पर हर्षवर्धन (मृत्यु संवत ७०४) के उपरांत भारत का पश्चिमी भाग ही भारतीय सभ्यता और बल–वैभव का केन्द्र हो रहा था । कनौज, अजमेर, अन्हलवाड़ा आदि बड़ी–बड़ी राजधानियाँ उधर ही प्रतिष्ठित थीं । हर्षवर्धन के उपरांत ही साम्राज्यभावना देश से अंतर्हित हो गयी थीं और खण्ड–खण्ड होकर जो गहवार, चौहान, चंदेल और परिहार आदि राजपूत राज्य पश्चिम की ओर प्रतिष्ठित थे, वे अपने प्रभाव की वृद्धि के लिए परस्पर लड़ा करते थे । लड़ाई किसी आवश्यकतावश नहीं होती थीं कभी–कभी तो शौर्य प्रदर्शन मात्र के लिए यों ही मोल ली जाती थीं । बीच–बीच में मुसलमानों के भी हमले होते रहते थे । जहाँ राजनैतिक कारणों से भी युद्ध होता था, वहाँ भी उन कारणों का उल्लेख न कर कोई रूपवती स्त्री का कारण कल्पित करके रचना की जाती थीं । जैसे शाहबुद्दीन के यहाँ से एक रूपवती स्त्री का पृथ्वीराज के यहाँ आना ही लड़ाई की जड़ लिखी गई है । हम्मीर पर अलाउद्दीन की चढ़ाई का भी ऐसा ही कारण कल्पित किया गया है ।[३५] इस से स्पष्ट होता है कि समाज में

नैतिकता का कोई आदर्श अस्तित्व में नहीं था । नारी भोग–विलास का उपकरण मात्र बनकर रह गई थीं ।

११९२ ई. में दिल्ली में तुर्क सल्तनत स्थापित करने में शाहबुद्दीन गोरी सफल हुआ । १२१९ ई. में चंगेज खाँ ने मध्य एशिया और अफगानिस्तान में तुर्क राज्यों की सफाई कर दी । अफगानिस्तान में मंगोल शासन हो गया ।

१२९५ ई. में अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली का शासक हुआ । उसने राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और दक्षिण में अपना शासन पहुँचाया । खिलजी के मरते ही खिलजी शासन शिथिल हो गया जिसमें सन् १३२० में ग्यासुद्दीन तुगलक ने जान डाली । इसने पूर्व में बंगाल भी जीता तथा दक्षिण में आंध्र और महाराष्ट्र में अपना साम्राज्य विस्तार किया ।

१३२६ ई. में मेवाड़ का हम्मीर सिसौदिया स्वतंत्र हो गया । दक्षिण में विजय नगर का हिन्दू राज्य उदय हुआ । मदुरा और बंगाल में दिल्ली सल्तनत के सूबेदार स्वतंत्र सुलतान बन बैठे और दिल्ली में बहमनी सल्तनत स्थापित हो गयी । कश्मीर में शाहमीर (जिसके पूर्वज स्थानीय हिन्दू थे) स्वतंत्र सल्तनत स्थापित कर बैठा ।

१४वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में फीरोज तुगलक दिल्ली की गादी पर बैठा किन्तु प्रान्तीय शासक स्वतंत्र होते रहे और दिल्ली का सुलतान तथा प्रान्तीय शासकों के मध्य झडपें चलती रहीं । विजयनगर और ब्रह्मनी रियासतों के मध्य भी संघर्ष चलता रहा । फीरोज के उत्तराधिकारी निकम्मे सिद्ध हुए और केन्द्रीय शक्ति बिखर गयी तथा प्रान्तीय शासक पूर्ण स्वतंत्र हो गये ।

१३७० ई. में तैमूर ने चंगेज वंशजों के राज्यों को मध्य एशिया और अफगानिस्तान से उसी प्रकार हटा दिया जिस प्रकार डेढ़ शताब्दी पूर्व चंगेज ने तुर्कों का उखाड़ा था ।

१३९० ई. में तैमूर दिल्ली पर आ टूटा । दिल्ली का तूर्क शासन पहले ही खोखला हो चुका था, वह तैमूर की ठोकर को संभाल न सका ।

१५वीं शताब्दी का प्रारम्भ प्रान्तीय शासकों का काल खण्ड है । इस शताब्दी में मेवाड़ की उन्नति हुई । मेवाड़ महाराणा लाखा चूडा और कुंभा के शासन में पश्चिम भारत की शक्ति बन गया था ।

मालवा, गुजरात, बंगाल, कश्मीर में स्वतंत्र मुस्लिम रियासतें थीं । जौनपुर में भी मुस्लिम सल्तनत खड़ी हो गयी । ये सुल्तान शर्की कहलाए ।

तिरहुत में कामेश्वर ब्राह्मण ने स्वतंत्र हिन्दू राज्य की स्थापना की जिसे उसके पुत्र और पौत्रों ने स्वतंत्र बनाये रखा ।

बुन्देल खण्ड में बुन्देले सरदार राज करने लगे, उड़ीसा में सूर्यवंशी कपिलेन्द्र ने स्वतंत्र राज्य की स्थापना की । इस शताब्दी के अन्त में ब्रह्मनी सल्तनत बिखर गयी और चार सल्तनत में दक्षिण बँट गया ।

१५वीं शताब्दी के मध्य में पठान भारत में नई शक्ति के रूप में उभरे । १४१५ ई. में उन्होंने दिल्ली ले ली और बढ़ते बढ़ते बिहार तक फैले पर वे दिल्ली के राज्य को साम्राज्य न बना सके ।

१६वीं शताब्दी के आरम्भ में जब बाबर तुर्कों की नई बाढ़ लेकर भारत आया तब यहाँ साम्राज्य न था । सभी प्रादेशिक स्वतंत्र राज्य थे ।

इन प्रादेशिक राज्यों में पश्चिमी मंड़ल में मेवाड़ का राणासांगा तथा विजय नगर (दक्षिण) में राजा कृष्णदेव राय प्रमुख बलवान शासक थे ।

ठीक इसी समय मंगोल की उजबक नामक नई शाखा शैबानी उजबक के नेतृत्व में अपने मूल अभिजन से मध्य एशिया में आई । उसने चंगेज और तैमूर की कहानी दोहराई । उससे मार खाकर तैमूर का वंशज बाबर फरगना से भागकर काबूल आया । १५१० ई. में मर्वे की लड़ाई में शैबानी मारा गया

पर बाबर पर ऐसा आतंक छाया कि उसने उधर कभी मुड़कर न देखा । अस्तु ! बाबर देहली की दुर्दशा की खबर पाकर भारत जीतने के मंसूबें बनाने लगा । उसने सद्यः प्रचलित आग्नेयास्त्रों बंदूक व तोपों का प्रयोग करके पानीपत की पहली लड़ाई में यहाँ के भाग्य का निपटारा किया । दिल्ली से आगे बढ़ते ही उसका राणासांगा ने मुकाबला किया किन्तु बाबर के साधनों व युद्धकौशल तथा भावी संकटों से बेखबर भारतीय प्रादेशिक राजाओं ने राणासांगा को अकेले जूझने के लिए छोड़ दिया । सांगा के बाद कोई भी राजपूत रजबाड़ा बाबर का सामना न कर सका परन्तु पठानों ने हिम्मत न हारी और शेरखाँ ने उसी के समान साधनों से लैस होकर पुर्तगालियों व बाबर के वंशजों को शिकस्त दी । परन्तु शेरखाँ के उत्तराधिकरी अयोग्य निकले और हुमायूँ पुत्र अकबर योग्य निकला । फलतः पानीपत की दूसरी लड़ाई सन् १५५६ में भारत के भाग्य का निर्णय अकबर के पक्ष में हो गया । अकबर ने केन्द्रीय सत्ता सुदृढ़ की और अपने राज्यकाल में (१५५६–१६०५ ई. तक) चरमोत्कर्ष प्राप्त किया । जहाँगीर (१६०५ से १६२७) तथा शाहजहाँ (१६२८–१६५८) के राज्यकाल में भी केन्द्रीय सत्ता यथावत् रही । शाहजहाँ के अंतिम कालखंड़ में बुन्देलखण्ड़ में चंपतराय तथा महाराष्ट्र में शिवाजी की स्वाधीनता की चेष्टाएँ प्रकट होने लगी थीं ।[३६]

१.३.१ राजपूत युग :

ये था मध्यकालीन राजनीतिक परिस्थितियों की सरगर्मियों का लेखा–जोखा । जिसका प्रभाव नारी जीवन पर पड़े बिना रह ही नहीं सकता । इस काल में नारी की स्थिति वैसी उन्नत न रह गयी थीं जैसी वैदिक काल में थीं । राजपूत युग में नारी का आदर सत्कार होता था किन्तु समाज उतना समुन्नत नहीं था । जिसका प्रमाण तत्कालीन साहित्य से मिलता है क्योंकि

साहित्य समाज का दर्पण है । पर्दा प्रथा भी धीरे–धीरे प्रचलित होती जा रही थीं । क्योंकि विदेशी आक्रान्ताओं का प्रभाव अत्यंत बढ़ता जा रहा था । राजघराने की नारियाँ संगीत, ज्ञान–विज्ञान, धुड़सवारी आदि में अग्रस्थ थीं किन्तु सामान्य वर्ग की नारियाँ शिक्षा से वंचित थीं ।

इस युग में बाल–विवाह की प्रथा आरंभ हो गयी थीं । बहुविवाह की प्रथा भी विधवाओं को पुनर्विवाह की आज्ञा नहीं थीं । अनेक राजपूत कन्याओं को उत्पन्न होते ही मार डालते थे । सती–प्रथा का प्रचार भी आरंभ हो चुका था । स्त्रियों को शूद्रों के समान माना जाता था । इस प्रकार धीरे–धीरे हिन्दू समाज पतन की कब्र की ओर दौड़ता जा रहा था ।

१.३.२ मुस्लिम युग :

भारतवर्ष में मुस्लिम शासन की स्थापना के साथ ही स्त्रियों की स्वतंत्रता समाप्त हो गई । मुस्लिम स्त्रियों को नगर के बहार सन्तों की समाधियों के दर्शनार्थ भी जाने की अनुमती नहीं थीं । इस नियम के विरुद्ध या उल्लंघन करने वाली नारियों के खिलाफ फीरोज ने कठोर दण्ड़ निर्धारित किये थे । हिन्दू समाज में भी पर्दा की प्रथा पूर्ण रूप से प्रचलित हो गई थीं । हिन्दू स्त्रियाँ पर्दों से ढकी पालकियों में बाहर जाती थीं । शिक्षा की भी उन्हें उतनी सुविधा न थीं । समाज में उनका स्तर नीचे गिरता ही जा रहा था । वह पुरुषों के ऊपर आश्रित रहने के लिए विवश कर दी गयी थीं ।

मुसलमानों द्वारा कन्याओं का अपहरण होने के कारण हिन्दुओं में बालविवाह की प्रथा बहुत तेजी के साथ बढ़ रही थीं । सतीप्रथा जोर पकड़ रही थीं । परन्तु सती होने के लिए देहली के सुलतान की अनुमती लेनी आवश्यक थीं । कन्या जन्म दुःखदायी माना जाता था । अमीर खुसरो ने अपने यहाँ कन्या के उत्पन्न होने पर दुःख प्रकट किया था । इस्लाम धर्म में

स्त्री को वह उच्च स्थान प्राप्त नहीं था, जो हिन्दू धर्म में । इसलिए मुस्लिम धर्म के सम्पर्क में आने के कारण हिन्दू समाज में स्त्री का सम्मान गिरता गया । सुलतानों के शासन में उनकी बेगमों को कोई स्थान न था । उनकी राजनीति के निर्देश एवम् परामर्श की अपेक्षा नहीं करती थीं ।

१.३.३ मुगल युग :

मुगल युग में स्त्रियाँ राजनीतिक कार्यों में बराबर सहयोग देती थीं । मुगल सम्राट अपने परिवार की वयस्क महिलाओं और बहनों के प्रति आदरभाव रखते थे । हूमायूँ ने अपने परिवार की स्त्रियों से मिलने के तीन दिन निश्चित किये थे । अकबर के समय सलीमा बेगम और हमीदाबानु का राजनीति में महत्त्वपूर्ण स्थान था । जहाँगीर के साम्राज्य का शासन नूरजहाँ करती थीं । शाहजहाँ काल में उनकी पुत्री जहाँनारा का उसकी नीति निर्धारण में स्थान रहा । औरंगजेब अपनी बहन रोशनआरा के मत को महत्त्व देता था । उसके बाद से मुगल सम्राटों के शासन में सामन्तों का ही हाथ रहा था । उनकी बेगमों ने राजनीति में कोई सहयोग नहीं दिया ।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की मुस्लिम नारियों में चांदबीबी का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था । हिन्दू महिलाओं में भी मराठा जाति के उन्नायक, शिवाजी की जननी जीजाबाई, शिवाजी के पुत्र राजाराम की पत्नी ताराबाई, गोंडवाने के माण्ड़लिक साम्राज्य की रानी दुर्गावती, मेवाड़ की रानी कर्णावती एवम् अहल्याबाई का नाम सदैव स्मरण रहेगा । मुगल युग के आर्थिक जीवन में नारी का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान न था । निम्न वर्ग की नारी अवश्य पति के साथ बाह्य कार्यों में सहयोग देती थीं । किन्तु उच्च वर्ग की नारी के लिए जीवनोपार्जन का कोई साधन न था । सामन्तवादी आदर्श के अनुसार विलास की अनिवार्य सामग्रियों में से एक नारी भी थीं । सामाजिक और सांस्कृतिक

क्षेत्र में सम्मान न होने के कारण परिवार में भी नारी का उतना आदरणीय स्थान न रह गया । फीरोजशाह (१३८८ ई.) ने सर्वप्रथम पर्दे को सार्वजनिक रूप से लागू किया था । हिन्दू जनता ने भी मुसलमान विजेताओं से अपनी रक्षा के लिए पर्दे का आश्रय लिया । सतीप्रथा तो प्रचलित थीं ही जिसे अकबर ने रोकने का प्रयास किया किन्तु सफल न हुआ ।

उक्त विवेचन से निष्कर्षतः स्पष्ट होता है कि मध्ययुगीन नारी ने अपने जीवन व परिस्थितियों से समझौता कर लिया था । तत्कालीन विषम परिस्थितियों के बावजूद भी वह अपने परिवार के मध्य सुख–सा अनुभव कर रही थीं ।

संत कवियों ने नारी को माया शूद्रा तक कहा हैं । उनके विश्वासानुसार कनक और कामिनी ये दोनों दुर्गम घाटियाँ हैं । वहीं दूसरी ओर आश्चर्य की बात यह है कि – सती और पतिव्रता के आदर्श की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा भी की है । असीम प्रेम, साहस और त्यागादि की भावनाओं से प्रभावित थे । तुलसीदास की रामभक्ति शूद्र तक को अपने साथ लेकर चलती है । नारी का उन्होंने परहेज नहीं किया । दूसरी ओर वल्लभ संप्रदाय के वल्लभाचार्य ने गृहस्थाश्रम एवम् नारी के परित्याग करने को नहीं कहा ।

सूफी संप्रदाय में नारी आराध्य ईश्वर मानी गयी है । उनके प्रेम का प्रमुख स्थान नारी पात्र को ठहराया गया है जो परमात्मा का प्रतीक है । नारी एक ऐसा नूर है जिसके बिना विश्व सूना है । परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में ''सूफी कवियों ने नारी को यहाँ अपनी प्रेम साधना के साध्य रूप में स्वीकार किया है, जिसके कारण वह इनके किसी प्रेमी के लौकिक जीवन की निरी भोग्या वस्तु मात्र नहीं रह जाती । वह उस प्रकार की साधन सामग्री कभी भी नहीं कहला सकती जिसमें उसे बौद्ध सहजनियों ने मुद्रा नाम देकर साधना के लिए अपनाया था ।''[३७]

१.४ ब्रिटिश काल में नारी की स्थिति

हर युग अपने समय का आधुनिक युग होता है । किसी भी युग की देश–समाज सभ्यता वैसी ही होती है जैसा जिस–तिस समय का वातावरण । वातावरण निर्मित किया जाता है । जैसा राजा वैसी प्रजा । प्रजा–नागरिक ही देश है जिसके किसी भी पहलू की असक्षमता देश का प्रतिबिम्ब है । ठीक वैसे ही किसी भी युग की नारी की सामाजिक दशा देश की राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक गतिविधियों पर ही निर्मित होती है । सन् १८५७ ई. तक अंग्रेजों ने भारत की सभी बिखरी राजनैतिक शक्तियों को पैरों तले रोंद दिया था । बचे–कुचे देशी स्वतंत्र राज्यों की स्वतंत्र सत्ता बहुत कम थीं । अभी तक भारत में जितने भी आक्रमणकारी आये वे भारत को लूट–फूटकर चले गये या तो भारत में बसकर उसी के होकर रह गये । किन्तु ब्रिटेन एक ऐसा प्रजातन्त्रवादी राट्र था जिसने प्रजातन्त्रवादी शासन व्यवस्था की स्थापना कर सामन्तशाही को मिट्टि में मिला दिया । सन् १८५७ ई. में फौजी–गद्दर नामक राष्ट्रव्यापी क्रान्ति हुई जो भारतीय इतिहास के मिल का पत्थर है । सन् १८५८ ई. में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने भारत का शासन अपने हाथों में ले लिया और ईस्ट इण्ड़िया कम्पनी नदारद हो गयी । सन् १८५८ से १९२२ तक भारतीय खून चूसकर अपने देश की नींव मजबूत बनाने का काम किया है । वरिष्ठ पत्रकार व चिंतक वेदप्रताप वैदिक कहते है कि – ''दुनिया के जितने भी समृद्ध देश है उनकी एक–एक नींव की ईंट में हिन्दुस्तानी खून टपकता है । अगर वर्षों तक हिन्दुस्तान गुलाम न हुआ होता तो आज दस अमेरिका हिन्दुस्तान खड़े कर सकता था ।'' बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से अपनी राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन प्रारंभ हुआ और चिरकालीन संग्राम के उपरांत

अंग्रेजी सभ्यता के प्यादों को लाठी के सहारे देश छोड़कर भाग जाना पड़ा । और फिर शुरु हुआ भारतीय तवारीख का नया मोड़ ।

आधुनिक युग में प्रवेश करते ही धार्मिक परिस्थितियों में परिवर्तन की बाढ़ आयी । उत्साही उदित नवयुवकगण भारतीय धर्म–विज्ञान–सिद्धान्त छोड़ इसाई धर्म की ओर आकर्षित हुए । जिसके फल स्वरूप भारतीय फौजी–गद्दर के पूर्व, धार्मिक आन्दोलनों ने भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन में नया संचार किया जिसमें बंगाल का ब्रह्म समाज, मुम्बई का प्रार्थना समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती का आर्य समाज, विवेकानन्द का रामकृष्ण मिशन, मद्रास की थियोसोफीकल सोसायटी, सिक्खों व फारसियों की सुधारवादी धार्मिक प्रवृत्तियाँ इस आन्दोलन में प्रमुख थीं । इन धार्मिक आन्दोलनों और गांधीजी के प्रयासों से सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आया ।

भारतीय नारी ने १९१९ के भारत शासन अधिनियम के अन्तर्गत राजनैतिक अधिकार प्राप्त किये । उसके ये अधिकर धीरे–धीरे विकसित होते गये । १९३५ में लगभग ६० लाख महिलाओं को मत देने का अधिकार मिला । उनके लिए भारत शासन अधिनियम १९३५ के द्वारा केन्द्रीय विधायिका के निचले सदन में ९ और उपरी सदन में ६ स्थान सुरक्षित किये गये साथ–साथ १९वीं शताब्दी के प्रारंभ में राजा राममोहन राय ने सतीप्रथा का नाश करने के लिए सरकार का हाथ बंटाया और सतीप्रथा के विरुद्ध सक्रिय प्रचार किया । इन व्यावहारिक विरोध के फलस्वरूप विलियम बेंटिल ने १९२९ ई. में सतीप्रथा गैरकानूनी घोषित कर दी ।

आधुनिक युग में आकर बहुविवाह एवम् बालविवाह की प्रथाएँ भी बन्द कर दी गई । सर्वप्रथम राजा राममोहन राय ने इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई । सन् १८७२ के नैटिय मैरेज एक्ट ने, जो केशवचन्द्र के प्रयत्नों से स्वीकृत हुआ

था, बालविवाह का उन्मूलन कर दिया, बहुविवाह का उन्मूलन कर दिया, बहुविवाह को दण्ड़नीय अपराध घोषित कर दिया, विधवाविवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह उन लोगों के लिए स्वीकृत कर दिये जो इस कानून के अधीन होना चाहते थे । सन् १८६१ ई. में एज आफ कंसेण्ट कानून स्वीकृत हुआ । जिसका घोर विरोध होने पर भी विवाह की आयु दस से बारह वर्ष कर दी । सन् १६३० में व्यवस्थापिका सभा और राज्य सभा ने अजमेर हर विलास शारदा द्वारा प्रस्तावित बाल–विवाह निषेधक बिल स्वीकृत कर दिया । इसके अनुसार १८ वर्ष से कम आयु वाले लड़के और १४ वर्ष से कम आयु वाली लड़की का विवाह दण्ड़नीय अपराध घोषित कर दिया गया ।

विधवा–विवाह के लिए पं. ईश्वरचन्द विद्यासागर ने तीव्र आन्दोलन किया और इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु भारत सरकार के पास एक निवेदन पत्र भी भेजा । उनके भगीरथ प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप सन् १८५६ ई. में एक कानून बना जिसके अनुसार विधवा–विवाह कानूनी मानकर विवाहित विधवाओं की सन्तान की वैधता घोषित कर दी गई । ब्रह्म समाज और आर्य समाज ने भी विधवा–विवाह लोकप्रिय बनाने हेतु प्रयत्न किये ।

ब्रिटिश काल में स्त्री शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया गया । मुगल साम्राज्य के पतन के बाद से स्त्री शिक्षा को किसी प्रकार का प्रोत्साहन प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु अब स्त्री शिक्षा को नवीन प्रेरणा मिली । सन् १८५७ के फौजी–गद्दर के पूर्व हिन्दू कन्याओं के लिए स्कूल स्थापित किये गये और ईसाई धर्म प्रचारकों ने ईसाई धर्म को ग्रहण करने वाले व्यक्तियों की पुत्रियों के लिए शालाएँ खोली । मई सन् १८४६ ई. में सर्वप्रथम कलकत्ता में हिन्दू बालिका विद्यालय नाम से एक बालिका विद्यालय की स्थापना हुई । सन् १८५७ ई. तक लगभग सौ राजकीय महिला विद्यालयों की स्थापना हो गई । सिपाही विद्रोह के

पश्चात् सरकार तथा अनेक सामाजिक संस्थाएँ जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज आदि ने स्त्री शिक्षा को खूब प्रोत्साहन दिया । दक्षिण शिक्षा समिति ने भी इस कार्य में बहुत सहायता की । सन् १९०९ में पुना में श्रीमती रानड़े द्वारा स्थापित पूना सेवासदन, सन् १९०८ में मलबारी द्वारा स्थापित सेवासदन सोसायटी और १९१४ ई. में विमेन्स मेडिकल सर्विस ने नर्स और मिडवाइफ के प्रशिक्षण के लिए तथा विधवाओं को नौकरी दिलाने के लिए प्रशंसनीय कार्य किये । सन् १६१६ में दिल्ली में स्थापित लेड़ी हार्डिज मेडिकल कॉलेज स्त्रियों को बी. बी. एस. की शिक्षा दे रहा था, अब इस दिशा में दिन प्रतिदिन प्रगति होती जा रही हैं । निम्न वर्गों की स्त्रियों की शिक्षा के लिए भी प्रयत्न किया जा रहा था । प्राइमरी शिक्षा उनके लिए निःशुल्क एवम् अनिवार्य कर दी गयी थीं । स्वास्थ्य विज्ञान, शारीरिक शिक्षा तथा चरित्र निर्माण शिक्षा के प्रथम ध्येय निश्चित किये गये थे । धार्मिक एवम् नैतिक शिक्षा का भी महत्त्व स्वीकार किया गया था । अस्तु, २०वीं शताब्दी में अधिकांश भारतीय अपनी रूढ़िबद्धता के कारण शिक्षा विरोधी विचारों को छोड़कर नवीन शिक्षा की ओर झुकने लगे । विद्यार्थियों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि इसका प्रमाण है ।

भारतीय नारी ने विशेषतः शिक्षित महिलाओं ने, जो पश्चिमी प्रभाव के संपर्क में आयी, नारी संगठन का निर्माण किया । इनमें चार प्रमुख संगठन निम्न रूप से हैं ।

१.४.१ भारतीय महिला मण्ड़ल : (Women's Association of India)

इस संस्था की स्थापना १९१७ ई. में हुई इस में महिलाओं की शिक्षा और सामाजिक क्षेत्रों में आगे बढ़ने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं । इसके तत्त्वावधान में १९१७ ई. में एक महिला शिष्ट मण्ड़ल महिलाओं के लिए नागरिक अधिकारों की माँग लेकर तत्कालीन भारत मंत्री मि. मान्टेग्यू से १८

दिसम्बर को मिला था, जिसके परिणाम स्वरूप १९१९ के भारत–शासन अधिनियम के अन्तर्गत ३ लाख १५ हज़ार स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हो गया । सन् १९२३ ई. में भारतीय महिलाओं में प्रथम बार प्रान्तीय विधायिकाओं के निर्वाचन में भाग लिया । महिला मंडल की विविध शाखाएँ देश के अनेक भागों में आज भी काम कर रही हैं । परन्तु यह संस्था बहुत सक्रिय नहीं रही है ।

१.४.२ भारतीय महिला राष्ट्रीय परिषद (National Council of Women in India) :

इस परिषद की स्थापना सन् १९२५ में हुई थीं । इसका उद्देश्य भारतीय नारी की सामाजिक समानता प्राप्त करना तथा विदेशी महिलाओं के साथ उनका संसर्ग–संपर्क पैदा करना था । परिषद ने भारतीय नारी के जागरण की दिशा में बड़े महत्त्व का कार्य किया । फिलहाल यह परिषद निष्क्रिय बन गई है ।

१.४.३ अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (All India Womens Conference) :

इस सम्मेलन की स्थापना १९२५ ई. में हुई थीं । प्रारम्भ में इसका नाम शिक्षा और समाज सुधार सम्बन्धी अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (***All India Womens' Conference on Educational and Social Reform***) था । जिसका प्रधान कार्यक्षेत्र शिक्षा था । किन्तु धीरे–धीरे इसने अपने कार्यों का विस्तार प्रारम्भ कर दिया और सामाजिक क्षेत्र से आगे जाकर राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रवेश किया । इस सम्मेलन की गतिविधियों का फैलाव नगर की शिक्षित महिलाओं तक ही सीमित है ।

१.४.४ कस्तूरबा ट्रस्ट :

इसकी स्थापना १९४४ ई. में की गई थीं । इसका जन्म राष्ट्र माता कस्तूरबा की स्मृति में एक कोष संग्रह करने की दृष्टि से हुआ था । इस कोष में एकत्रित राशि महात्मा गांधी को भेंट की गई । जिसे उन्होंने ट्रस्ट को भारतीय ग्रामीण नारी के विकास और स्वास्थ्य के कार्यों पर व्यय करने के लिए दे दिया था । ट्रस्ट की ओर से देश भर के ग्रामीण क्षेत्रों में नारी एवम् स्वास्थ्य केन्द्र तथा बालविद्यालय चलाये जा रहे हैं । इन्दौर के निकट कस्तूरबा ग्राम की स्थापना की गई है, जहाँ ट्रस्ट की ओर से ग्रामसेविका विद्यालय आदि चलाये जा रहे हैं । यह ट्रस्ट ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं की सराहनीय सेवा कर रहा है ।''

उपर्युक्त ट्रस्टों ने भारतीय महिलाओं की स्थिति में बहुत कुछ सुधार किया है ।

१.५ स्वतंत्रता से लेकर आजतक नारी की स्थिति

किसी ने ठीक ही लिखा है कि – परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है । हमारे देश को आज़ाद हुए ५७ वर्ष हुए लेकिन परिवर्तन आया है ? जिसे परिवर्तन माना जाता है वह सापेक्ष क्यों हैं ? यह सापेक्षता भारतीय जनमानस को त्रिशंकु की स्थिति में ड़ाल देती है । जैसे एक पाँव केले के छिलके पर और दूसरा कबर की ओर ! स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भी हमारे देश की प्रत्येक क्षेत्र में ऐसी ही स्थिति है । फिर वह धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्र ही क्यों न हो । जिस पर मुद्दत से बंदिनी बनी नारी का तो पूछना ही क्या ! तर्क जो भी है, वितर्क व कुतर्क से उत्पन्न कुण्ठा जीवन का मूल मंत्र जानना चाहती है । यह आधुनिक युग है ।

यहाँ आज संतप्तता है, विद्रोह हैं, आक्रोश है, वितृष्णा है । वर्तमान शासकीय प्रजातंत्रीय दलगत धृतराष्ट्रीय षड्यन्त्रात्मक अर्थ भोग, व्यसन अधिशासित व्यवस्था के प्रति भी जिसने विश्वास का संकट का हिमालय खड़ा कर दिया है, सत्ता का स्वार्थीकरण हो गया है, उत्तराधिकारीकरण हो गया है, व्यापारीकरण हो गया है, औद्योगीकरण हो गया है । संरक्षण के स्थान पर भेदभावपूर्ण आरक्षण का भ्रम दिया है, आर्थिक विषमता दी है, बिना उत्तरदायित्व के लूट का अधिकार दिया है, राजनीति का अपराधीकरण हुआ व अपराधीकरण का महिमा मंड़न किया है, हिंसा को प्रश्रय दिया है, वासना की मादकता को नये आयाम दिये हैं । यह क्या प्रतिक्रियात्मकता है । इस प्रकार पुरातन व नवीन का शीतयुद्ध जारी हैं । दोष पुरुष को नारी दे रही है, पुरुष, पुरुष को दे रहा है और सभी एक दूसरे को अपराधी मानते हैं । किन्तु अन्तरात्मा के कठघडें में खड़े कोई भी अपना अपराध स्वीकार नहीं कर रहे हैं । स्थिति जो भी है मानवता कुण्ठाग्रस्त है । मानवीय स्थिति द्वन्द्वात्मक है, विवादास्पद है ।

विधाता ने नारी को नर के साथ ही बनाया नर के चाहने पर, नर के लिए बनाया । फिर इस चाह के साथ दुराव कैसा ? कहते हैं आज की नारी विद्रोह की राह पर है, वह प्रबुद्ध बन गई है, दुःखप्रद जीवन नहीं जीना चाहती है, वह चेतन है क्योंकि उसमें चेतना है, उसने अपने अन्तर में झाँका है और उसने अनुभूत किया है : वह तो शक्तिनिकुंजा है, वह तो पुरुष के संदर्भ में साक्षात् दुर्गा है – दुर्गा अर्थात् दुर्ग के समान रक्षिका फिर वह कातर क्यों बने ? उसमें आत्मसम्मान व आत्मविश्वास जागा है, उसने अपनी अन्तःशक्तियों से परिचय पाया है, प्रेरणा पाई है और आज वह हर 'चुनौती' को सहन करके उसका उत्तर देने के लिए धीरे–धीरे अपने को तैयार कर रही

है, उसकी तैयारी ठोस धरातल पर है । वह आज पुरुष की आँखों में देखने का साहस जुटा रही है और पूछना चाहती है – ''अब भी मन्तव्य क्या है ? क्या चाहता है – प्रेम, सेवा, दया, करुणा, स्नेह, परिणय, श्रद्धा ?'' या फिर शोषण, अन्याय व अत्याचार प्रतिकार, प्रतिशोध, दुराव व अलगाव आदि । आँसू केवल नारी की बपौती ही नहीं, पुरुष के भाग्य में भी लिखी हैं – यह तो नारी है जो पुरुष की ओर से बहाती आयी है और अब हो सकता है पुरुष को भी नारी के लिए बहाना पड़े । इसको हिंसा, अत्याचार, अनाचार व दुराचार के लिए मूल्य चुकाना ही होगा । इस संदर्भ में श्रीमती नारायण ने चेतावनी दी कि – ''उसे पुरुष प्रदत्त बैसाखियाँ नहीं चाहिए । यदि महिलाओं को जानबूझकर बेड़ियाँ नहीं पहनाई जाएँ और उनको दबाकर नहीं रखा जाये, जैसे कि पिछले पचास वर्षों में रखा गया है, तो वे स्वंय ही राष्ट्र के निर्माण में आगे आने वाले पचास वर्षों में महती योगदान देने में स्वयं सक्षम हैं ।''

संयुक्त राष्ट्र संघ ने १९४८ में जो मशाल जलाई थी, उस समान जीवन भागीदारी का प्रकाश आज विश्व क्षितिज में दिखाई दे रहा है । यह पुरुष व नारी समानता का युग है । कब तक पुरुष नारी को अपना अधिकार नहीं देगा । भारत आज भी विश्व के १७४ देशों में १२८ वें स्थान पर है, जहाँ तक मानव अधिकार के सम्बन्ध में नारियों के अधिकार की बात है यह स्थिति ३० जून, २००० तक विश्व मानव विकास रिपोर्ट के आधार पर है । भारत के नारी विकास के लिए कार्यक्रमों की घोषणा के आधार पर आयोग बनाये जा रहे हैं, किन्तु व्यावहारिक पक्ष क्या है ? यह तो भविष्य ही बतायेगा । अभी तक की जो स्थिति है, वह बहुत उत्साहवर्धक नहीं । मानव विकास रिपोर्ट २००० के सम्बन्ध में शंकाएँ उत्पन्न हैं, किन्तु महिलाओं के बारे में विशेष सुधार नहीं हुआ है, यह बात तो स्वयं रिपोर्ट में भी कही गयी है । दी

टाईम्स आफ इण्डिया (सम्पादकीय । १ जुलाई, २००० पृष्ठ १४ शीर्षक मुविंग अप दी चार्ट्स) में यह अंकन है – रिपोर्ट में कहा गया है कि महिलाओं के साथ बहुत भेदभाव है, जिसका महिलाओं को सामना करना पड़ता है, यद्यपि उनकी प्रजातन्त्रीय भागीदारी बढ़ी है । रिपोर्ट के अनुसार पंचायतीराज आरक्षण के कारण देश भर में १० लाख महिलाओं का राजनीति में प्रवेश हुआ है, किन्तु अधिकांश महिलाओं के पति उनके स्वामी हैं ।

१.५.१ आधुनिक नारी अवगुण स्वामिनी :

भारत एक परम्परावादी समाज है, जिसकी पुरुष प्रधान मानसिकता है । समाज में जनचेतना का भाग नारी शक्तीकरण बनना आवश्यक है । ये बात चुनौतियों के सामने बराबर है । जिसकी कई विड़म्बनाएँ है फिर भी महिला आयोग एक आशा की किरण है । जिससे महिला का सबलीकरण हो सकता है । किन्तु उसके लिए नारी को ईर्ष्याभाव, आत्मश्लाघा, आत्मप्रदर्शन, परनिन्दा जैसी बातों का त्याग करना होगा ।

क्योंकि नारी का ईर्ष्याभाव नारी के प्रति ही अधिक होता है । अपने से अधिक गुणी, सुन्दर या रूपवती या समृद्ध नारी को देखकर उसमें ईर्ष्याभाव स्वतः ही जागृत होता है, जो व्यवहार में कड़वाहट पैदा करता है । इसलिए बिलियम सेक्सपीयर ने बिलकुल ठीक लिखा है स्त्री का दूसरा नाम ईर्ष्या है । स्वयं की प्रशंसा वैसे आत्म–प्रवंचना का ही भाव है । जो व्यक्ति स्वयं से धोखा खाता है, जिसके पास करने को कुछ नहीं रहता, वही आत्म–प्रशंसा की व्याधि से पीड़ित रहता है । वृद्धा नारी अपने यौवन की गाथा सुनाती गद्–गद् हो जाती है । अपने पीहर की प्रशंसा करते चुप नहीं होती । अपने धन, वैभव, संतान की कथाएँ बढ़ा–चढ़ाकर कहती है । नारी का आत्मदेह दर्पित दर्पण भाव सुविख्यात है । वह आत्मकेन्द्रित होकर अपने रूप को निहारती है,

वह दर्पगर्विता अपना मूल्य कुछ अधिक ही लगा लेती है । वही उसकी हार का कारण बनता है । किसी ने सुन्दर लिखा है कि स्त्री जन्म से ही मलिका ए मुस्कान होती है किन्तु दर्प पाँव की जुती कभी सर का ताज़ नहीं बन सकती, निन्दा के क्षेत्र में नारी 'समाचारपत्र', आलोचना या समालोचना व्यंग्य कॉलम से कुछ कम नहीं । यह तो हीनता का भाव है वह निन्दा में प्रकट होता है । जो स्वयं में अपूर्ण होता है, वह हर वस्तु व प्राणी तथा व्यक्ति में अपूर्णभाव ही देखता है और वैसा ही बखान करता है ।

अंगभंग महिला कभी रूपवती महिला की कभी भी हृदय से प्रशंसा नहीं करती, वह तो उसमें कोई कमी निकालकर उसको ही चर्चित करती है । नारी का निन्दाभाव ही नारी का सबसे बड़ा शत्रु है । नारी की प्रतिस्पर्धा पुरुष से न होकर नारी से ही है । हर अच्छे पुरुष की नारी कल्पना करती हैं और सर्वश्रेष्ठ को पाना चाहती है और न मिलने पर उस नारी की निन्दा करती है, उससे ईर्ष्या रखती है, जिसे अच्छा पुरुष मिल गया, उसके भाग्य को मन ही मन कोसती है । यह आवश्यक है कि हर स्त्री ही हीनता की भावना सी ग्रसित हो, आत्मश्लाघा की व्याधि से पीड़ित हो, किन्तु सामान्यतः कार्यक्षेत्र पुरुषाधीन होने के कारण जो क्षति नारी को इच्छानुकूल श्रेष्ठ सम्पन्न पुरुष न मिलने के कारण होती है, नारी उसकी पूर्ति नहीं कर सकती है, जिससे वह अपने को सान्त्वना देने के लिए आत्मश्लाघा व निन्दा जैसी मनोवैज्ञानिक संरक्षण विधियों का सहारा लेती है, जो उसकी विवशता है ।

ऐसी नारियाँ भी है जो विश्वफलक पर कीर्तिमान हुई है । साहित्य के क्षेत्र में बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी के 'शबर' मेले की धूम बंगाल में ही नहीं, उसके बाहर भी है । ऑस्कर पुरस्कार जीतकर अरुँधती राय ने ''गोड ऑफ स्माल थिंग्स'' का झण्ड़ा ऊँचा रखा ।

१.५.२ विश्व फलक पर नारी : एक परिदृश्य :

मनुष्य प्रकृति का अनुचर और नियति का दास है । किन्तु आज व्यक्ति मनुष्य की नियति तक को निर्धारित करता है । व्यक्तिवादी व्यवस्था की विषमता के कारण मनुष्य ही मुनष्य पर राज करता है और उसकी नियति के आयाम निर्धारित करता है । कभी देशभक्ति के नाम पर, कभी राष्ट्रीयता के नाम पर, कभी धर्म, कभी प्रजाति, कभी लिंग के आधार पर, समाजवाद या अधिनायकवाद के नाम पर शासन व्यवस्थाएँ बनती हैं । वही व्यवस्था सम्यक् है जो सत्य व न्याय की नींव पर बनी हो । पुरुष ने अपनी शासनव्यवस्था में पुरुषप्रधानता रखी और केन्द्र बन गया ।

विश्व के सभ्य व समुन्नत व सांस्कृतिक प्रजातन्त्रीय शासन प्रणाली के देशों में इंग्लैण्ड व अमेरिका के नाम पहले आते हैं । लेकिन इन देशों का शासन इतिहास बताता है कि वहाँ नारी ने कितनी त्रासदी भोगी है । ब्रिटेन में आज से लगभग ४० वर्ष पूर्व नारीसहज कल्पना नहीं की जा सकती थीं । नारी को विकटोरियन युग में प्रदर्शनप्रिय माना जाता था और नारी को लेकर अनेकों दुर्बलताओं का विषय मानकर चर्चाएँ की जाती थीं । एक वाक्य उपहास रूप में प्रचलित था अंग्रेजी कानून में पति व पत्नी एक ही व्यक्ति माने जाते थे और वह व्यक्ति या पति । दूसरा उपहास वाक्य यह था कि – महिलाओं को कभी कानून से बाहर किया ही नहीं जा सकता, क्योंकि वह कभी कानून में थीं ही नहीं । अमेरिका में भी स्थिति अच्छी नहीं थीं । विचित्र कानून थे । बिना राज्य सरकार की आज्ञा प्राप्त किये कोई माँ अपनी बेटी के बालों को नहीं कटवा सकती थीं । चोली नहीं बना सकती थीं । यह भी कानून था कि – महिला के सारे कपड़े पुरुष की संपत्ति थीं । यदि कोई महिला पुरुष

को छोड़कर जाती, तो पुरुष का यह अधिकार था, कि वह उसका पीछा कर सकता था और उस महिला के शरीर से सारे कपड़े उतरवा सकता था ।

१.५.३ आधुनिक नारी का सामाजिक पिछड़ापन :

सामाजिक पिछड़ापन चिन्तन व चिन्ता का प्रश्न है । पिछड़ेपन का मूल स्रोत नारी है, ऐसा होने का मूल कारण शिक्षा का अभाव है । दीप से दीप जलता है । शिक्षित महिलाएँ होती तो समाज, परिवार के लिए कुछ कर पाती । शिक्षा से ही सामाजिक शक्तीकरण होता है, जैसा कि केरल राज्य में हुआ है ।

आज भारत में यह स्थिति है, कि ४४ प्रतिशत गर्भवती महिलाएँ दुर्बलता का शिकार है और ४० प्रतिशत बच्चे मातृत्व दुर्बलता के कारण मरते हैं । आज भारत सारी धरती का २.६ प्रतिशत स्थान घेरता है और विश्व की २० प्रतिशत के लगभग जनसंख्या भारत में निवास करती हैं । भारत में कुल आई.ए.एस. अधिकारियों की संख्या ५,००३ है जिसमें कुल महिलाएँ ५२८ हैं । लोकसभा में १६६८ में ५४० में से ४४ महिलाएँ थीं व राज्यसभा में १६ महिलाएँ हैं । आज काफी प्रयत्नों के बाद महिलाओं को सेना में भर्ती किया गया है, किन्तु संख्या नगण्य है । संयुक्त राज्य अमेरिका में यू.एस.ए. बनाम स्टेट ऑफ विरजीनिया (१६६६) आई. बटरबर्यस ह्युमन राइट्स के सेज २६५ 'दी ऑल मेल पॉलिसी' ऑफ दी सिंगल सेक्स विरजीनिया मिलिट्री इन्स्टिच्यूट में केवल पुरुषों को ही भरती किया जाता था । जिसके विरुद्ध बाद लाने पर अमेरिकन सुप्रिम कोर्ट ने 'सिंगल सेक्स' प्राथमिकता को समाप्त कर महिलाओं को भी अधिकार दिया और 'सर्वपुरुष' नीति के विरुद्ध निर्णय दिया । और महिलाओं की भर्ती की जाने लगी ।

१.५.४ आधुनिक नारी के विरुद्ध काम अपराध :

आंकड़ों की भाषा स्त्रियों के विरुद्ध अपराधों में निरंतर बढ़ौती बताती हैं । बलात्कार की घटनाओं में २२.६ प्रतिशत, दहेज हत्या की घटनाओं में ३८ प्रतिशत, महिला उत्पीड़न की घटनाओं में १६ प्रतिशत और छेड़–छाड़ की घटनाओं में २०.६ प्रतिशत वृद्धि हुई है । १९९५ में देश में कुल १,२०,२०४ बलात्कार की घटनाएँ रिपोर्ट की गई जबकि १९९४ का आंकड़ा १२.३५१ और १९९३ को २०.९८५ घटनाएँ हुई जो १९९४ में बढ़कर २४.११७ और १९९५ में २५.४४५ हो गई ।

केन्द्रीय महिला और बाल विकास मन्त्रालय के प्रकाशित आँकडे महिला उत्पीड़न के सम्बन्ध में ओर भी भयावह स्थिति बताते हैं जैसे कि प्रत्येक ५४ मिनट पर एक बलात्कार, प्रत्येक २६ मिनट पर एक छेड़खानी, प्रत्येक ४३ मिनट पर एक अपहरण, प्रत्येक ५१ मिनट पर एक उत्पीड़न, प्रत्येक ६० मिनट पर एक दहेज हत्या, प्रत्येक ३३ मिनट पर निर्मम व्यवहार आँकड़े यह भी बताते है कि – भारत में विशेषतः प्रतिवर्ष लगभग ५ हजार महिलाएँ दहेज के कारण मौत की शिकार होती हैं । प्रतिवर्ष पाँच हजार से ज्यादा बलात्कार के मामले आते हैं । क्योंकि बलात्कार करने वाले अधिकतर महिलाओं के सम्बन्धी या निकट के पारिवारिक मित्र होते हैं । ये विश्वासी व्यक्ति होते है ।

१.५.५ भारतीय नारी का विचित्र संयोग :

इश्वर ने नारी का सृजन किया यद्यपि ईश्वर को पहचाने जाने की संभावनाएँ सफल हो सकती है किन्तु नारी को पहचान पाना असंभव है ऐसा मेरा मानना है क्योंकि नारी पलायन का, शक्तिसंवर्धन का, धूप का, छाँव का, आंसुओं का, मुस्कानों का एक विचित्र संयोग है । यह रणचण्ड़ी कब अबला बनकर कातर हो उठे, कहा नहीं जा सकता है । यदि नारी पुरुष का अहित

व उत्पीड़न में सहयोग न करे, तो पुरुष क्या कर सकता है ? भ्रूण नारी के गर्भ में पलता है, यदि वह भ्रूर्ण गर्भपात न कराये, तो कोई उसका क्या कर सकता है, किन्तु उसकी भी तो आन्तरिक इच्छा बालक की माँ बनने की रहती है, ताकि मुखाग्नि देनेवाला, वृद्धावस्था का सहारा हो, उसकी भी कोई बहू हो, जिस पर वह शासन कर सके ।

आज एक नई स्थिति उत्पन्न हुई है । जब कन्या का विवाह तय होता है, तो वह स्वयं कन्यादान व दहेज में दिये जाने वाले सामान की माँग कर बैठती हैं । वह अपनी इच्छा से आभूषण व वस्त्र चाहती है और अपने विवाह का सामान उसकी इच्छा से खरीदने पर बल देती है, उसकी इच्छा सर्वोपरि रहनी चाहिए, वह अपने माता–पिता पर दबाव ड़लवाती है । वह स्वयं जानती है कि जो अभी मिल गया, वह अन्तिम अवसर है, इसके पश्चात् पीहर में उसका कोई भाग्य नहीं है ।

आज कानून ने पैतृक सम्पत्ति में भी कन्याओं का हिस्सा निर्धारित किया है । विवाह के बाद ससुराल को ही सबकुछ मानने वाली स्त्री अपने पीहर की लेशमात्र भी चिन्ता नहीं करती । उसका घर संसार, सुख संसार तो उसका ससुराल है, जहाँ उसका पति है, संतान है, भविष्य है, सौभाग्य है, जहाँ की वह दासी, स्वामिनी सब कुछ ही है । आज की स्त्री इतनी सीधी नहीं रही है । वह अपना हित जहाँ भी हो साधती है । राजनीति क्षेत्र में जहाँ महिला का अर्थ निकलता है, वह अपना सिक्का भुनाने से नहीं चूकती है । नारी अपना मूल्य बहुत समझने लगी है । भावात्मक शोषण करने में वह विश्वास नहीं करती । सम्बन्धों के फलों का सारा रस वह निचोड़ लेना चाहती है । जिन सम्बन्धों की उपयोगिता न हो, नारी उनके पीछे समय व्यतीत नहीं करती ।

फिर भी नारी पूरी बुद्धिमती भी नहीं है । वह मूर्खा भी है । वह उन परिस्थितियों का सृजन करती है, जहाँ उनका स्वार्थ निहित नहीं होता है । नारी जानती है कि उसकी कामुक शृंगारप्रियता पुरुष के कामभाव को जागृत करती है । पुरुष का छिपा 'काम' पशु कामुक महिला छवि देखकर उत्तेजित हो जाता है । फिर भी नारी अपने को विविध कामुक वस्त्रों में आवृत्त कर बाहर अकेली निकल पड़ती है । उसे पता है कि – बलात्कार का प्रमुख कारण कामुकता है । वह स्वयं को कामुक प्रदर्शित करने के लिए कोई अवसर नहीं छोड़ती । सौन्दर्य प्रसाधनों व विचित्र वेश–भूषा से लदी वह बलात्कारियों को परोक्ष मूक निमन्त्रण देती हैं, वह उनको लुभाती है । नारी के इस सौन्दर्य–प्रदर्शनदौर्बल्य का पुरुष लाभ उठाता है ।

१.५.६ भारतीय नारी की राजनीति में पैठ :

महिला भारतीय समाज की पुरुष के साथ ही आधी जनसंख्या की स्वामिनी है किन्तु फिर भी राजनीति में उसके प्रतिनिधित्व की संख्या में गिरावट आती रहती है । एक ओर ३३ प्रतिशत महिला आरक्षण की बात की जाती है वहीं दूसरी ओर चुनाव संग्राम में महिला योद्धाओं के रथ १० प्रतिशत से अधिक नहीं दिखाई देते ।

महिलाओं की संसद सदस्य में निरन्तर कमी आ रही हैं । १९५२ से लेकर १९९८ के निरन्तर गिरते आँकडे इस बात का प्रमाण है कि लोकसभा में महिलाओं की संख्या में उतार–चढ़ाव आया है ।

आँकडों की भाषा वह बोलती है कि – १९९६ की लोकसभा में प्रतिनिधित्व पाने के लिए सारे देश में ५९९ महिलाओं ने चुनाव लड़ा जबकि इनकी तुलना में १९९८ में २६७ महिलाओं ने अपने भाग्य की परीक्षा ली । जहाँ तक सफलता का प्रश्न हैं १९९८ में १९९६ की तुलना में महिला सदस्यों

की संख्या तुलनात्मक रूप से ठीक रही । जहाँ १९९६ में ३९ महिलाएँ प्रतिनिधि लोकसभा में चुनकर आई, वहाँ १९९८ में बारवीं लोकसभा में ४१ महिलाएँ लोकसभा सदस्य बनी थीं । पुरुषों की तुलना में जो अनुपात रहा, वह लगभग १:११ का ही रहा है । यह संख्या १९९९ के चुनाव में ४७ हो गई है । यह तेरहवीं लोकसभा की स्थिति है ।

प्रायः यहाँ कहा जाता है कि – भारतीय राजनीति में महिलाएँ अपने स्वयं के प्रयासों से सामान्यतया नहीं आई हैं । इनमें से अधिकांश महिलाएँ राजनीतिक विरासत, परिवारवाद व सम्बन्धवाद की ही देन रही हैं । विश्व परिदृश्य में भी ज्यादातर वही बात देखने को मिलती है । विशेषतः ऐशियाई महाद्वीप में तो यही बात चरितार्थ होती है । चाहे वह भारत में इन्दिरा गांधी हो, मेनका गांधी हो या सोनिया गांधी हो नेहरु परिवार की ही देन रही; वैसे ही पाकिस्तान की बेनज़ीर भुट्टो, नसरुत भुट्टो जुल्फिकार अली भुट्टो की देन है, बांगलादेश की हसीना बेगम उसके पिता बंग–बंधु श्री मुजीबुर्रहमान की देन रही, तो बेगम खालिदा जिया उसके सैनिक पति जिया उर्रहमान की देन रही । वर्तमान श्रीलंका की प्रधानमंत्री कुमार रणातुंगा अपने पति व अपनी माता भण्ड़ारनायके की देन है । पूर्व में इज़राइल की प्रधानमंत्री गोल्ड़ा मेयर का भी पूर्व राजनीति सम्बन्ध रहा है । चीन व रुस जैसे साम्यवादी देशों में महिलाओं को वर्चस्व ही नहीं मिला । लेड़ी माउन्तसुंग का भी पतन चीन में हुआ । अमेरिका की आज भी कोई महिला राष्ट्रपति नहीं हुई और संभवतः फ्रांस में भी कोई महिला अध्यक्षा नहीं बनी और ना ही जर्मन में कोई चान्सलर ।

भारत में जयललिता ए.डी.एम. के अध्यक्ष जी. रामचन्द्र की उत्तराधिकारिणी होने के कारण हुई, जबकि लक्ष्मी पार्वती आंधंप्रदेश में एन. टी. रामाराव की पत्नी होने के कारण राजनीति में आई । नेहरु परिवार के

सम्बन्धों ने कई महिला राजनीतिज्ञ देश के राजनीतिक क्षितिज पर उपग्रह रूप में चमकी । श्रीमती मीराँ कुमार की ख्याति केवल श्री जगजीवन राम की पुत्री होने के कारण, बहुजन समाज पार्टी के अध्यक्ष श्री काशीराम ने मायावती का राजनीति तिलक किया । राज्यसभा में अधिकतर महिलाएँ पूर्व स्वतंत्रता सेनानियों की निकटतम सम्बन्धी होने के कारण राजनीति में आई ।

महिलाओं का पर्दापण राजघराने से सम्बन्ध होने के कारण भी हुआ । राजमाता गायत्री देवी, जयपुर, राजस्थान व राजमाता विजयराजे सिंधिया इसी की देन रही । उनकी पुत्री वसुंधरा राजे राजघराने से है और इसी घराने से है ।

महिला राजनीति में दूसरा कारण दल विशेष में आस्था व स्थिति तथा स्थान का भी रहा । इसमें राजघराने से जुड़ी किन्तु कॉंग्रेस से आपातकाल में पीड़ित अलवर महारानी महेन्द्र कुमारी भी रही, जिन्होंने भारतीय जनता पार्टी की सदस्यता प्राप्त कर उसके टिकट पर महिला सांसद अलवर, राजस्थान चुनाव क्षेत्र से बनी ।

व्यक्तिगत आकांक्षा से जुड़े दलगत महत्ता के कारणों ने जिन महिलाओं को जोड़ा उनमें सुश्री उमाभारती, सुष्मा स्वराज, राजस्थान की सुश्री गिरिजा व्यास उसी राजनीतिक संस्कृति की देन है । श्री कमलनाथ व कमलनाथ राय की पत्नियाँ अपने पतियों की ख्याति शिखर पर चढ़कर राजनीति में आई । जबकि किदवई परिवार से जुड़ी मोहसिना किदवई श्री रफी अहमद किदवई की ख्याति के कारण राजनीति में प्रवेश पा गई । महिलाओं में बेगम नूर बानो रामपुर नवाब परिवार से जुड़ी होने से प्रसिद्धि के बल पर लोकसभा में जीतकर आई थी, किन्तु कॉंग्रेस की नज़मा हेपतुल्ला सदा अपने नाना की ख्याति से राज्यसभा में आई और डॉ. अब्बुल कलाम आज़ाद की नवासी के तौर पर जानी जाती रही है । सुश्री ममता बेनर्जी व मेनका गांधी, सुष्मा

स्वराज, उमा भारती जैसी महिलाओं ने अपना वर्चस्व अपने दल में अपनी व्यक्तिगत विशिष्टता से बनाया तो वहीं 'रामायण' धारावाहिक से प्रसिद्धि पाई सीता रूपा बाद में दीपिका चिखलिया अपने छोटे पर्दे की धार्मिक प्रसिद्धि से लोकसभा सदस्या बनी, श्रीमती वैजयन्ती माला बाली व जयललिता के पीछे अपना फिल्मी तारिका व पर्दे की चमक अधिक मुखरित रही ।

पुराना दौर या जबकि श्रमती तारकेश्वरी सिन्हा, नन्दिनी सत्यथी, राजेन्द्र कुमारी बाजपेयी, अम्बिका सोनी, शीला कौल, राजमाता विजया राजे सिंधिया जैसी महिलाएँ राजनीति में आई ओर अपनी छाप छोड़ी । बाद में राज्यपाल के रूप में प्रतिष्ठित श्री नेहरु की बहन श्रीमती विजयालक्ष्मी पण्ड़ित का अपना व्यक्तित्व था, जिससे वे संयुक्त राष्ट्रसंघ की अध्यक्षा तक बनी । शालिनी ताई, अरुणा आसफ अली भी राजनीति में मुखरित अपनी विचारधारा से हुई । तो शबाना आज़मी, जयललिता, हेमामालिनी को फिल्मी क्षेत्र के कारण ख्याति मिली । काँग्रेस की प्रमुख प्रचारक व अध्यक्षा श्रीमती सोनिया के राजनीतिक भानु की चमक देखनी अभी बाकी है ।

१.५.७ राष्ट्रीय महिला आयोग :

संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने १० दिसम्बर १९४८ को सार्वभौमिक मानव अधिकार की घोषणा का जो प्रस्ताव स्वीकार किया, उसके अनुच्छेद में वह प्रावधान है कि – प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्र जन्मा है, उसे जन्मजात प्रतिष्ठा सम्मान पाने का अधिकार प्राप्त है ।

भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना १९९२ में की गई, जबकि भारत के संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता १९४८ में प्राप्त कर सार्वभौमिक मानव अधिकार घोषणापत्र को सिद्धान्तः स्वीकार किया । भारत में मानव अधिकार आयोग का स्वतंत्र प्रभार है, जबकि राष्ट्रीय महिला आयोग का अपना

विधिक कार्य क्षेत्र है, जिसमें सामान्यतः व विशेषतः महिला उत्थान, विकास समृद्धि व महिला शक्तीकरण का ही विषय सार्वभौमिक रूप से मान्य है । सन् १९९० में संसद द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया । जिसकी अध्यक्षा मोहिनी गिरी थी । इस आयोग में एक अध्यक्ष, पाँच सदस्य तथा एक सदस्य सचिव होता है । जिसकी नियुक्ति केन्द्र सरकार द्वारा की जाती है । जिसमें शिकायत सेल (परिवाद प्रकोष्ठ), परामर्श सेल और महिला अदालत जैसी शाखाएँ कार्य करती है ।

१.५.८ नारी को लेकर विविध सम्मेलन : फलश्रुति ?

नारी उन्नति के लिए विश्वस्तर पर अनेकविध सम्मेलनों का आयोजन बड़े जलसे के साथ किया गया जिसकी फलश्रुति का निचोड सिर्फ प्रश्नार्थ ही निकला है ।

१.५.८.१ अन्तर संसदीय सम्मेलन व महिला राजनीतिक भागीदारी :

फरवरी, १९९७ में विश्व भर के अग्रणी संसदवेत्ताओं का पाँच दिवसीय सम्मेलन १० फरवरी, १९९७ से १४ फरवरी, १९९७ को भारत की राजधानी दिल्ली में रखा गया था । जिसका नाम इन्टर पार्लियामेन्ट्री स्पेशलाइज्ड़ कान्फ्रेंस ऑफ टुवर्ड्स पार्टनरशीप बिट्वीन मेन एण्ड़ वीमेन इन पॉलिटिक्स देहली, इण्ड़िया रखा गया था । इस सम्मेलन में ८० देशों के २५० प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया था । इस सम्मेलन में विश्व भर के प्रबुद्ध सम्मानीय संसदवेत्ताओं ने स्त्री–पुरुष भेदभाव समाप्त करने एवम् नारी को सत्ता में भागीदारी देने की ज़ोरदार वकालत की ।

इस सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए नामीबिया के राष्ट्रीय सैमनुमोया ने कहा कि – ‘‘संसद से ऐसा कोई भी कानून पारित न हो जो महिलाओं के साथ भेदभाव करता हो । लोकतन्त्र सही अर्थों में तभी सफल हो सकता है,

जब राजनीतिक दलों, सांसदों और सरकारों के स्तर पर राष्ट्रीय निर्णय पुरुष व स्त्रियों द्वारा समान रूप से लिया जाय ।''

अपने विचार व्यक्त करते हुए बांगलादेश की प्रधानमंत्री शेख हसीना ने कहा कि – ''महिलाओं को राजनीतिक दृष्टि से और जागरुक बनाने के लिए उपाय ढूँढ़ने की आवश्यकता है । इस लक्ष्य की प्राप्ति सरकार और गैर सरकारी संस्थाओं के बीच समन्वय व सहयोग से सम्भव है ।'' (दैनिक भास्कर राज. फरवरी, १५, १९९७ प्रथम पृष्ठ)

१.५.८.२ विश्व सांसद सम्मेलन, नई दिल्ली :

''वीमेन्स पॉलिटिकल वाच'' नामक और सरकारी संगठन ने संयुक्त राष्ट्र संघ और राष्ट्रीय महिला आयोग के सहयोग से २९ सितम्बर, १९९७ से १ अक्तूबर तक आयोजित किया गया था । जिसमें महिलाओं की सत्ता में भागीदारी विषय पर आयोजित तीन दिवसीय सम्मेलन में चालीस देशों के ३० से अधिक सांसद, मन्त्री आदि सम्मिलित हुए थे । इस सम्मेलन का उद्घाटन तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्द्रकुमार गुजराल ने किया था ।

इस सम्मेलन में विचारणीय विषय था – महिलाओं को सत्ता में भागीदारी देकर ही उत्तरदायी शासन व्यवस्था स्थापित की जा सकती है इस भागीदारी को कैसे सुनिश्चित किया जाये और कैसे इसे उत्तरोतर बढ़ाया जाये ? सम्मेलन के अन्त में 'नई दिल्ली घोषणापत्र' पारित किया गया जिस अनुसार भारत जैसे कुछ राष्ट्र इसके लिए संवैधानिक उपाय करने को तत्पर हैं । विश्व के सांसदों में आधी आबादी अर्थात् महिलाओं का प्रतिनिधित्व सिर्फ ११.७ प्रतिशत ही है । विकसित और विकासशील दोनों ही प्रकार के राष्ट्र इस बात पर एकमत थे कि महिलाओं के बारे में विश्व का कोई भी राष्ट्र वास्तविक अर्थ में लोकतांत्रिक नहीं है । यह विचार न्यूजीलैण्ड़ जैसे विकसित

राज्य का भी था और प्रगतिशील छवि बनाने के लिए उत्सुक ईरान का भी । विश्व में संसद में सबसे ज्यादा महिला प्रतिनिधित्व स्वीड़न में है, जहाँ एक भागीदारी ४०.४ प्रतिशत है । सबसे कम महिला प्रतिनिधि केवल ३.३ प्रतिशत अरब सांसदों में है । सबसे आश्चर्य जनक तथ्य यह है कि कोमोरोस, जिबोती, किरिबाती, कुवैत, माइकोनेशिया, न्यूगिनी, टोंगा और संयुक्त अरब अमीरात सहित कई राष्ट्रों की सांसदों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व है ही नहीं और उनके बारे में सारे फैसले पुरुष ही करते हैं । बांगलादेश, बकीना, फासी, नेपाल, तन्जानिया और युगान्ड़ा महिलाओं के लिए सांसद में सीटें आरक्षण सी हैं, आरक्षित कर चूके है, जबकि पाकिस्तान फिर से इस प्रक्रिया पर विचार कर रहा है ।

इस सम्मेलन के भावी महत्त्व पर प्रकार ड़ालते हुए सुश्री वीना नय्यर का कथन था कि इस सम्मेलन का महत्त्व इस बात से और बढ़ जाता है कि राजनीति क्षेत्र में महिलाओं को ३३ प्रतिशत आरक्षण देने की दहलीज पर भारत खड़ा है और सारा विश्व इस प्रयास को एक 'परीक्षण प्रकरण' (टेस्ट केस) के रूप में बहुत गंभीरता से देख रहा है ।

''हमारे लिए, आरक्षण व प्रतिनिधित्व प्राप्त करना हमारी यात्रा का अंतिम पड़ाव नहीं हैं । हम और आगे बढ़ाना चाहते है, यह परिभाषित करने के लिए कि अच्छी शासनव्यवस्था क्या है और इन नवीन उत्तरदायित्वों के लिए महिलाओं को तैयार करना है ।''

सुश्री नय्यर के शब्दों में

''*For us reservation and securing representation is not the end of the road. We would like to move further to defining what is good*

governance and preparing women for the new responsibilities'' (दी हिन्दुस्तान टाइम्स दिनांक २६–६–१९९७)[३८]

इस प्रकार विश्व सांसदीय सम्मेलन में सत्ता में महिलाओं की भागीदारी का मुद्दा छाया रहा । पालना कहाँ कैसे होती है, यह भविष्य के गर्भ में ठहरे राजनीति के खोखले चोलों ने इस बात को साबित कर दिया जिस से आप और मैं अच्छी तरह वाक़िफ़ है ।

१.६ निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि इन्सान को परिवतर्तित होते रहना चाहिए । जो परिवर्तित नहीं रहता वह जड़ बन जाता है । जड़ का नारा जल्द होता है । इसी प्रकार नारी और परिवर्तन को विशेष अवकाश नहीं है । विविध काल में नारी की स्थिति व रूप में ज्यादातर नकारात्मक ही परिवर्तन आया है । जो प्रकृति के नियम से परिवर्तन – बदलाव तो है किन्तु गतिशीलता नहीं है । यद्यपि नारी एक शक्तिपुंज है उस शक्ति को यथोचित दिशा में मोड़ा जाये तो परिणाम सकारात्मक निकल सकता है । कितु नारी को प्राचीन–वैदिक कालावधि को छोड़ बोलने का, अभिव्यक्ति का, व्यक्तित्व प्रदर्शन का मौका ही नहीं दिया गया । और आधुनिक युग में वैदिक युग के समान नारी को अपने तमाम आयामों की अभिव्यक्ति के मौके है किन्तु अफसोस । अफसोस इस बात का है कि स्वतन्त्रता का अर्थघटन स्वच्छन्दता कर नारी स्वेच्छाचरण करने लगी । परिणाम रूप नारी स्वयं परिस्थितियों की गुलामी को आमंत्रित कर बैठी । ऐसी मानसिकता के लिए मध्ययुगीन सामंती व वर्तमान प्रजातन्त्र का वातावरण एक समान है । ब्रिटिशकाल नारी उन्मुलन का माईलस्टोन रहा किन्तु आगे चलकर परिणाम – प्रगति नकारात्मक हुई । अतः नारी स्वयं अपने ही बिछाये ज़ाल में फँसी और सबला से अबला बन बैठी ।

कारण स्पष्ट था कि उसे सदियों से बंदिनी बनाकर रखा गया था, बोलने का मौका नहीं दिया गया था । निष्कर्षतः वह सामाजिक पिछड़ेपन और काम अपराध के विचित्र संयोग से संगुम्फित हो गतानुगतिकता व क्लिष्टता के कठघरे में आ गई । भले ही वह राजनीति में आयी हो, विश्व फलक पर उभरी हो चाहे उसके लिए राष्ट्रीय महिला आयोग रचा गया हो या फिर महिलाओं के सम्बन्ध में आन्तरराष्ट्रीय सम्मेलनों का आयोजन किया गया हो किन्तु महिला का आयोग से किसी भी क्षेत्र में सही योग नहीं बन पाया । फलस्वरूप प्रश्नार्थ ही पलटकर हथोड़ा पिटने लगा है ।

संदर्भ सूची :

१	प्रो. श्रवणकुमार : 'साहित्यिक निबन्ध', संस्कृत साहित्य के इतिहास की रूपरेखा से संकलित । संपादक – डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी श्री शरण (दिल्ली : प्रेम प्रकाश मंदिर, १९८७) पृ. १८७
२	डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव, हिन्दी महाकाव्यों में नायिका की परिकल्पना (कानपुर : साहित्य निलय, १९९४) पृ. ५३
३	कन्यानां संप्रदानां च कुमाराणां च रक्षणम् ।। मनुस्मृति, ७.१५२
४	महिर्ष दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ. २२
५	डॉ. कृष्णा गोस्वामी, संतकाव्य में नारी (रोहतक हरियाणा) : शान्ति प्रकाशन, १९८९) पृ. ७४
६	यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य : । ब्रह्मराजन्याभ्याँ शूद्रायाचार्याय च स्वाय चारणाय ।। यजुर्वेद २/२६ ।।
७	ब्रह्मचर्य्येण कन्या३ युवानं विन्दते पतिम् ।। अथर्ववेद ११–५–१८
८	डॉ. कृष्णा गोस्वामी, संतकाव्य में नारी (रोहतक हरियाणा) : शान्ति प्रकाशन, १९८९) पृ. ७४
९	महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ. ४९
१०	डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव, हिन्दी महाकाव्यों में नायिका की परिकल्पना (कानपुर : साहित्य निलय, १९९४) पृ. ५३
११	डॉ. कृष्णा गोस्वामी, संतकाव्य में नारी (रोहतक हरियाणा) : शान्ति प्रकाशन, १९८९) पृ. ७४

१२	वेदानधीत्य वेदो वा वेदं वापि यथाक्रमम् । आविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ।। मनुस्मृति ३.२
१३	डॉ. कृष्णा गोस्वामी, संतकाव्य में नारी (रोहतक हरियाणा) : शान्ति प्रकाशन, १९८९) पृ. ७४
१४	असपिंण्डा च या मातुरसगोतत्र च या पितुः । सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने ।। मनुस्मृति ३.५
१५	महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ. ५१, ११७
१६	महान्त्यपि स्मृद्धानि गोऽजाविधनधान्यतः । स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत् ।। हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्टिकुलानि च ।। नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकाङ्गीं न रोगिणीम् नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटान्न पिङ्गलाम् ।। नक्षवृक्षनदीनाम्नी नान्त्यपर्वतनामिकाम् । न पक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नीं न च भीषणनामिकाम् ।। अव्यङ्गाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् । तनुलोमकेशदशनां मृद्वङ्गीमुद्वहेत्स्त्रियम् ।। मनुस्मृति, ३.६, ७, ८, ९, १०
१७	प्रो. ए. जी. शाह और प्रो. जगदीश दवे, भारत की सामाजिक संस्थाएँ (अहमदाबाद : अनड़ा बूक डीपो, २०००–२००१) पृ. २५

१८	महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ.५२
१९	प्रो. ए. जी. शाह और प्रो. जगदीश दवे, भारत की सामाजिक संस्थाएँ (अहमदाबाद : अनड़ा बूक डीपो, २०००–२००१) पृ. ९, १०
२०	महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ.५४
२१	ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथाऽसुरः । गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः ।। मनुस्मृति ३.२१
२२	प्रो. ए. जी. शाह और प्रो. जगदीश दवे, भारत की सामाजिक संस्थाएँ (अहमदाबाद : अनड़ा बूक डीपो, २०००–२००१) पृ. ६/७
२३	महर्षि दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ.६०
२४	डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव, हिन्दी महाकाव्यों में नायिका की परिकल्पना (कानपुर : साहित्य निलय, १९९४) पृ. ५३
२५	स्वामी दयानंद सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (अहमदाबाद : भजिक प्रकाशन, १९९९) पृ. ९०/९१
२६	डॉ. उर्मिला श्रीवास्तव, हिन्दी महाकाव्यों में नायिका की परिकल्पना (कानपुर : साहित्य निलय, १९९४) पृ. ५३
२७	डॉ. सुरेन्द्रकुमार, मनु का विरोध क्यों ? (कर्णावती : हिन्दू सेवा ट्रस्ट) पृ. २८
२८	प्रो. ए. जी. शाह और प्रो. जगदीश दवे, विवाह कुटुम्ब और सगाई सम्बन्ध (अहमदाबाद : अनड़ा बूक डीपो, २०००–२००१) पृ. १५
२९	यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः । यत्रैतेनास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ।। मनुस्मृति ३.५६
३०	स्वामी दयानंद सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (अहमदाबाद : भजिक प्रकाशन, १९९९) पृ. ९१

३१	या स्त्री त्वक्षतयोनिः स्याद्गतप्रयागतापि वा । पौनर्भवेतभर्त्रा सा पुनः संस्कारमोर्हत ।। मनुस्मृति ९,१७६
३२	महिर्ष दयानंद सरस्वती, सत्यार्थ प्रकाश, (अहमदाबाद : आर्यसमाज, २००३) पृ.७५
३३	स्वामी दयानंद सरस्वती, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (अहमदाबाद : भजिक प्रकाशन, १९९९) पृ. ९१
३४	प्रो. ए. जी. शाह और प्रो. जगदीश दवे, भारत की सामाजिक संस्थाएँ (अहमदाबाद : अनड़ा बूक डीपो, २०००–२००१) पृ. ७
३५	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : अशोक प्रकाशन, २००२), पृ. १७/१८
३६	डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा, साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६) पृ. ५१/५२
३७	डॉ. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ (दिल्ली : अशोक प्रकाशन, १९९८) पृ. १६१/१६२
३८	एम.ए. अंसारी, राष्ट्रीय महिला आयोग और भारतीय नारी (जयपुर : ज्योति प्रकाशन, २०००) पृ. ५३/६०/६१/६३/६४/६५/६८/१५६/१५७/१६९

द्वितीय अध्याय

आदि व मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण

२.० प्रास्ताविक
२.१ नारी विषयक सामाजिक दृष्टिकोण
२.२ नारी विषयक धार्मिक दृष्टिकोण
२.३ नारी विषयक राजनैतिक दृष्टिकोण
२.४ अपभ्रंश साहित्य की दृष्टि से नारी
२.५ जैन व बौद्ध साहित्य में नारी
२.६ सिद्ध व नाथ साहित्य में नारी
२.७ रासो साहित्य में नारी
२.८ भक्तिकालीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण
२.८.१ कबीर
२.८.२ जायसी
२.८.३ तुलसीदास
२.८.४ सूरदास
२.९ संत काव्य और नारी
२.१० रीतिकालीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण
२.१०.१ केशवदास
२.१०.२ सेनापति
२.१०.३ गुरु गोविन्दसिंह
२.१०.४ बिहारी
२.११ निष्कर्ष

द्वितीय अध्याय
आदि व मध्यकालीन हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण

२.० प्रास्ताविक

बहुत पहले अरस्तु ने सूचित किया था कि – नारियों की उन्नति अथवा अवनति पर ही राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति निर्भर करती है । तब से आजतक इस अवधारणा में कोई बदलाव नहीं आया ।

मनुष्य के इतिहास में नारी की पहचान लगातार विशिष्ट और जटिल होती गई है । यह तनिक भी अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता कि संसार भर की भाषाओं के साहित्य में नारी के विविध आयामों को अनेक शैलियों और सन्दर्भों में वाणी मिली है । परिवार और समाज, व्यवसाय और उम्र, अर्थ और यौन, विवाह और वियोग के न जाने कितने स्तरों पर भारतीय नारी को गुज़रना पड़ता है । सच तो यह है कि – प्रत्येक भारतीय नारी का जीवन अपने आप में एक महाकाव्य हैं । नारी के चारों ओर बने समस्याओं के वृत्त को चीरकर साहित्यकारों ने निरन्तर नारियों की कई संदर्भों में पहचान स्थिर करने का यत्न किया है ।

प्रारंभिक हिन्दी काव्य की उषा होले–होले मध्यकालीन मार्तण्ड की रश्मियाँ बन देश के साहित्य–प्रांगण से होती दूर–सूदूर तक परिसीमाओं को लाँधने लगी थीं । इस मार्तण्ड़ का आलोक अध्यात्म और साहित्य तक ही सीमित न था किन्तु भारतीय जीवन–मूल्यों में संचरण करने लगा था । प्रकृति की हर रचना की अपनी निजी विशेषताएँ होती हैं । एक साथ लगाये गये, एक ही जाति के

सैंकडों वृक्षों में शायद ही कोई दो वृक्ष आपस में मिलें । किन्हीं दो व्यक्तियों के चेहरे नहीं मिलते उसी प्रकार हर व्यक्ति का शील भी दूसरे से भिन्न होता है । काव्य जगत के प्राणियों के शील–वैचित्र्य की छटा भी अद्वितीय हैं । प्रारंभिक हिन्दी काव्य और नारी जीवन का भी गहरा सम्बन्ध है । सीता का पतिप्रेम, उसका सहचर्य भाव, नागमती का विरह पद्मावती का सहचर्य भाव व सतीत्व, आज भी भारतीय नारी के संस्कारों में रचा–बसा है । कर्तव्य को समर्पित कौशल्या, उर्मिला और जसोदा आज भी भारतीय नारी जीवन का आदर्श हैं । सुमित्रा, राधा और गोपियों का निःस्वार्थ त्याग–प्रेम आज भी अविस्मरणीय है । कैकेयी की स्वार्थ भावना आज भी निन्द्या समझी जाती है । शूर्पणखा, बिहारी की नायिका, कबीर की कामिनी नारी भमरियों की रस–लुब्धता आज भी आलोचना का विषय है तो आधुनिक इन्द्रों द्वारा सताई गयी अहिल्याएँ आज भी पाषाण बनने का विषय है । आज के रावण भी सीताओं का हरण करने से बाज नहीं आते और सीता की अन्तिम त्रासदी आज की नारी को भी सहती पड़ती है । पुरुष तो अनाचार करके भी समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त किये रहता है, पर वही समाज बचकाने संदेह पर ही भारतीय सीमाओं के जीवन को दुर्वह बना देता है । जिसके पीछे कई सारी खोखली मानसिकताएँ कार्यरत रहती हैं ।

२.१ नारी विषयक सामाजिक दृष्टिकोण

प्रारंभिक हिन्दी काव्य के नारी विषयक दृष्टिकोण के लिए तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ जिम्मेदार हैं । जैसा देश वैसा भेस – क्योंकि साहित्य समाज की प्रतिकृति है । उसमें समाज की अच्छाइयाँ, बुराइयों, गलाज़ते सारी बातें रेखांकित होती हैं । मध्यकाल में विशेषकर मुस्लिम आक्रान्ताओं के कारण देश में एक प्रकार की अफड़ा–तफड़ी मची हुई थीं । नारी संरक्षण उस समय

लोहे के चने चबाने बराबर था । आक्रमणकारी व शासक ही नहीं अपितु देशवासी भी नारी को लेकर आतंकी थे । नारियों का अपहरण करना और उस पर बलात्कार करना प्रतिदिन की घटित होनेवाली सामान्य बात बन गयी थीं । इन्हीं सामाजिक परिस्थितियों के कारण नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय बन गयी थी, जिसके कारण नारी संरक्षण की समस्या तत्कालीन समस्याओं में प्रमुख थीं । जिसके हल हेतु तत्कालीन धर्माचार्यों व समाज के नियामकों ने बालविवाह और सतीप्रथा के दो घटिया उपाय ढूँढ़ निकाले । शास्त्रों की दुहाई देकर धर्माचार्यों ने भी प्रतिपादित किया कि –

''अष्टवर्षे भवेद् गौरी नव वर्षे च रोहिणी ।''

अतः उस समय आठ वर्ष की उम्र में ही विवाह करना सामान्य बात थीं । कुछ विवाह गोदी में अथवा बच्ची जब माँ के गर्भ में होती थी, तभी कर दिये जाते थे । जिसके फलस्वरूप बालविधवाएँ समाज में अत्यधिक होती थीं जिसका हल सतीप्रथा का प्रचार करके किया ।

अब शेष बची परिणीता नारी । उसके लिए सन्तों ने पतिव्रता का आदर्श प्रस्थापित किया था । कामी, क्रोधी, कपटी, दुराचारी पति को परमेश्वर मानने का आदेश था । नारी को पर–पुरुष का कभी ध्यान नहीं करना चाहिए पुरुष भले ही ध्यान में मग्न हो जाये । ऐसे उपदेशों से सन्तों ने परिणीता नारी को पतिपरायण बना समाज नियमन का यत्न किया । इतना कुछ करने पर भी समाज में समभाव–शांति स्थापित न हो पायी तो दो कुरीतियाँ ओर चलाई गयी । पहली थीं कन्याओं के प्रति दुर्भावना और दूसरी नारीनिन्दा । कुछ प्रदेशों में कन्या का जन्म होते ही उसका गला घोंटकर मार ड़ाला जाता था । गुजरात में यह प्रथा 'दूधपीती' के नाम से कुख्यात है । अन्य प्रदेशों में भी पुत्री प्राप्ति पर दुःख व पुत्रप्राप्ति पर हर्षोल्लास की बातें तत्कालीन समाज

में देखने मिलती है । आज के तकूनिकी युग में तो भ्रूण में ही अनवतरित शिशु–बच्ची की हत्या कर दी जाती है । संतों ने संभवतः इन्हीं कुरीतियों से तंग आकर समाज को नारी विमुख करने के लिए नारी के कामिनी रूप की निन्दा की होगी । कहे जाने वाले बहुत से विद्वज्जन सन्तों को दोषी ठहराते है किन्तु आज की परिस्थिति में विचार–विमर्श करने पर पता चलता है कि नारी–सुरक्षा के लिए ही कामिनी की निन्दा और पतिव्रता नारी की प्रशंसा की थीं । जिससे कि पतिव्रता का आदर्श स्थान हो और कंचन व कामिनी से समाज विरक्त हो ।

२.२ नारी विषयक धार्मिक दृष्टिकोण

प्रत्येक देश देशवासियों के कुछ न कुछ संवेदन बिन्दु होते है जिनके संस्पर्श से ज़लज़ले–सा परिवर्तन आता है । भारत का संवेदन बिन्दु धर्म है । इस देश में जिन समस्याओं का समाधान राजनैतिक व वैधानिक यत्नों से नहीं होता, उसका समाधान धर्म के द्वारा होता है । राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियाँ नारी के प्रतिकूल थीं । नारी की स्थिति समाज में जड़ पदार्थ सी हो गयी थीं । जर और जमीन की तरह जोरू भी संपत्ति बन गयी थीं । अन्य संपत्तियों की भाँति पुरुष अधिकाधिक विवाह करके अपनी काम पिपासा को शान्त करने में अपने जीवन का श्रेय मानता था । नारी उस युग का सबसे बड़ा आकर्षण व अभिशाप दोनों थीं । घर का भेदी लंका ढोवे वैसे ही विदेशी ही नहीं देश के लोग भी नारी पर तरह–तरह के अत्याचार कर रहे थे ।

ऐसे समय में धर्म की रक्षा हेतु धर्माचार्यों, सूफी सन्तों तथा ज्ञानमार्गी सन्तों ने सोचा कि नारी भर्त्सना करके ही पुरुष को उससे विरक्त किया जा सकता है । इस सम्बन्ध में डॉ. सावित्री सिन्हा कहती है कि – ''पुरुष की

उच्छृंखल पिपासा के कारण नारी के नाम पर युद्ध हो रहे थे । नारी सबसे बड़ा आकर्षण थीं । अतः उसकी भर्त्सना और उपेक्षा के बिना पुरुष की उच्छृंखल प्रवृत्ति को बाँध सकना असंभव था ।'' अतः सभी धर्माचार्यों और सन्त ढोल पीट–पीटकर कुमारी, विवाहिता और विधवा नारी के लिए 'आचार–संहिता' का प्रचार करने लगे । समाज में नारी के स्वरूप का निरूपण और आचरण का नियमन करने की ओर सभी धर्माचार्यों का ध्यान गया और जागरूक हो उठे । गोस्वामी तुलसीदास का 'रामचरित मानस' भी इन्हीं परिस्थितियों का परिपाक है । उच्छृंखल पुरुषों को सामाजिक बनाने का यह धमाचार्यों का प्रयत्न था किन्तु दयनीय घटना भी है क्योंकि पुरुष–सुधार के लिए नारी का सहारा लिया गया । प्रारंभिक हिन्दी कवियों ने नारी की प्रशंसा की भी तो उसके लिए तत्कालीन धार्मिक दृष्टिकोण उत्तरदायी रहा । पुत्र–प्रसून सन्नारी को समाज में थोड़ा श्रेय मिला । कन्या को जन्म देनेवाली नारियाँ उपेक्षा की दृष्टि से देखी जाने लगीं । कवियों ने जहाँ कामिनी की निन्दा की वहीं शील गुण सम्पन्न, पुत्र को जन्म देनेवाली पतिव्रता भार्याओं की प्रशंसा भी की ।

२.३ नारी विषयक राजनैतिक दृष्टिकोण

प्रारंभिक हिन्दी कवियों की नारीनिन्दा की भावना के लिए तत्कालीन राजनीतिक स्थिति जिम्मेवार है । राजनीति में नारी को लेकर उसे प्राप्त करने के लिए उसका वरण या हरण करने के लिए भयंकर युद्ध होते थे । राजपूतों ने आत्म–सम्मानपूर्वक युद्धों में वीरगति को प्राप्त करना श्रेयकर समझा था और उनकी रानियों ने मुसलमान बादशाहों के हरम (रानीवास) में जाने की अपेक्षा जौहर की ज्वाला में जलना गौरव समझा था । इस प्रकार विदेशी आक्रमण और हिन्दू–राज्यों के पतन के कारण उत्पन्न राजनीतिक परिस्थितियाँ तत्कालीन

समाज में नारी की दयनीय स्थिति के लिए और प्रारंभिक हिन्दी कवियों की नारी भावना के लिए उत्तरदायी हैं । नारी की ऐसी स्थिति का निर्देश करते हुए डॉ. सावित्री सिन्हा कहती है कि – ''तत्कालीन विच्छेदपूर्ण राजनीति के कारण नारी की अवस्था तथा जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा – विदेशी आक्रमणों ने उसे रक्षणीय बना दिया ।'' राजपूत राजाओं का पारस्परिक विद्वेष भी अधिकतर नारी के कारण ही होता था । उन दिनों नारी गौरव और सम्मान का प्रतीक बन गयी थीं । पड़ोस की राजकुमारियों को हर लाने में राजपूत राजा अपनी शान मानते थे । कन्या के अभिभावक उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे । परिणाम स्वरूप नारी को लेकर भयंकर युद्ध होते थे । देशी राज्यों की स्थिति भी डाँवाँडोल थीं । परिणाम यह आया कि तत्कालीन युद्धप्रधान राजनीतिक वातावरण में पुरुष की नारी के प्रति काम–वासना उत्तेजना भी तीव्र हो गयी थीं ।

सेना के लोग व ऊँची स्थिति के लोग अनेक विवाह करने में तथा प्रतिदिन नयी कामिनी के साथ विलासक्रीड़ा करने में अपना गौरव अनुभव करते थे । तत्कालीन राजनीतिक स्थिति भी इस सम्बन्ध में अनुशासन हीन बन गयी थीं । आए दिन विनाश और बलात्कार होते थे । जिनको सहन करने का नारी का स्वभाव हो गया था । कितनी ही नारियों को इन परिस्थितियों में विवश होकर मुसलमानों के घर में नौकरानी बनकर काम करने के लिए जाना पड़ता था । इनके अतिरिक्त तातार और मुगल आदि आक्रमण करके जो चीजें लूटकर ले जाते थे, उनमें यहाँ की नारियाँ भी विशेष उपलब्धि के रूप में ले जाई जाती थीं । उनके सैनिक भी भारतीय नारी के साथ बड़ा ही अमानुषीय व्यवहार करते थे ।

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि, प्रारंभिक हिन्दी कवियों ने नारी की जो निन्दा की है, उसके पीछे राजनीतिक परिस्थितियाँ ही जिम्मेवार हैं ।

२.४ अपभ्रंश साहित्य की दृष्टि से नारी

अपभ्रंश काल नारी के लिए पतन का काल था । इस युग में समाज सामन्तवादी था । अतः इस सामन्ती जीवन का चित्रण ही अपभ्रंश कालीन कवियों ने किया है । इस काल के काव्य ग्रंथों को देखने से प्रतीत होता है कि जीवन के जैसे दो ही उद्देश्य थे, एक तो युद्ध में विजय प्राप्त करना और दूसरा संसार के भोगों को जमकर के भोगना । अपभ्रंश काल के प्रसिद्ध विद्वान श्री राहुल सांकृत्यायन ने उचित ही कहा है कि – ''सैंकडों लोगों को अपनी सुन्दर लड़कियों को वैध अथवा अवैध रूप से रानीवास में भेजने के लिए तैयार रहना पड़ता था । कितनी ही जगह तो प्रथम (नव–विवाहिता की प्रथम) रात वहाँ के सामन्त के लिए 'आरक्षित' थी, चाहे वह उसे हाथ से छूकर ही छूट्टी दे दे ।

स्वयंभू अपभ्रंश काल के महान कवि थे । उन्होंने एक सफल चित्रकार की भांति तत्कालीन नारी का चित्र प्रस्तुत किया है । उनके पश्चात् अन्य कवियों ने भी सामन्तीय वातावरण की भोग्या नारी के चित्र अंकित किये है । कुछ कवियों ने राम और कृष्ण की कथा का आश्रय लिया है । परन्तु परवर्ती कवियों ने लौकिक नायक–नायिकाओं का आश्रय लेकर अपने काव्य में अश्लीलत्व की सीमा तक पहुँचने वाले शृंगार का निरूपण किया है ।

अपभ्रंश काव्य में चित्रित नारी के हमें दो स्वरूप परिलक्षित होते हैं । एक वियोगावस्था में अपने प्रिय के विरह में दीवार पर दिन–गणना के लिए लकीरें खींचती रहती है, रात में तारें गिनती रहती है, कोयल और पपीहे को कोसती रहती है और दिन–प्रतिदिन क्षीण होती हुई आहें भरती रहती है ।

संयोग के समय में वही नायिका अभिसारिका बनकर शुक्ल एवम् कृष्ण पक्षों में समाज की नज़रों से बचने के लिए उपाय करती हुई और अपना शृंगार कर अपने प्रिय को परितृप्त करती हुई दिखाई देती है । नायिका के स्वरूप चित्रण एवम् हाव–भाव आदि के निरूपण में ही पूर्ण किया गया है ।

अपभ्रंश काल में प्रायः नारी का चित्रण भोग्या के रूप में ही हुआ । स्वयंभू, पुष्पदन्त, रामसिंह, बब्बर, नकामर मुनि, हरि भद्र सूरि, सोमप्रभसूरि इत्यादि कवियों ने इन रंगरेलियों के मध्य संसार की क्षण–भंगुरता भौतिक स्वरूप की नश्वरता, विषयासक्ति की व्यर्थता और परनारी–गमन की अनैतिकता की ओर ध्यान आकर्षित किया है । मुनि देवसेन ने कहा है, कि भौतिक रूप नश्वर हैा रूपासक्त व्यक्ति पतिंगे की तरह अग्नि में पड़ता है और नष्ट हो जाता है । मुनि रामसिंह ने भी जिह्वा–स्वाद और पर स्त्री गमन को बलपूर्वक छोड़ देने की सलाह देते हुए कहा है कि सर्प कैंचुली भले ही छोड़ दे, पर विष नहीं छोड़ सकता । इसी प्रकार साधु हो जाने पर भी विषयासक्ति नहीं छोड़ी जाती ।

२.५ जैन व बौद्ध साहित्य में नारी

जैन एवम् बौद्ध काव्य में नारी के मातृरूप और पत्नी के सतीत्व रूप पर अधिक बल दिया गया हैं । अन्य धर्मों की भाँति जैन धर्म में भी वासना को काम का साधन मानकर उससे मुक्त होने और वासना के केन्द्र नारी को त्यागने का उपदेश दिया गया है । ईसा की प्रथम शताब्दी से ही नारियों की स्थिति गिरने लगी थीं । दिगम्बर जैन आचार्य नारी को अज्ञान, दुःख एवम् मृत्यु का द्वार बतलाने लगे थे । पुरुष के मार्ग (सिद्धि–मार्ग) में बाधक होने के कारण जैन आचार्यों ने नारी को माया–मरीचिका और मृत्युपाश माना है । 'ज्ञानार्णव' के प्रणेता श्री शुभचन्द्र आचार्य के मतानुसार ''नारी की वाणी में

अमृत और हृदय में विष होता है । वे कहते है कि – स्त्री–पुरुषों को साँप की दाढ के समान भय और संताप प्रदान करने वाली हैं ।''

बौद्ध काल में भी सतीत्व का आदर्श समाज में प्रतिष्ठित रहा । जातक कथाओं से यह विदित होता है कि नारियाँ प्राण अर्पण करके भी अपने सतीत्व की रक्षा करती थीं । इतना होने पर भी उस काल में नारी का स्थान बहुत ऊँचा नहीं था । 'कण्डिन जातक' में कहा गया है कि उस जनपद को धिक्कार है, जिसका संचालन स्त्रियाँ करती हैं । शब्द इस प्रकार है कि –

''धिक्त्धुनं जनपदं यन्थि धी परिनायिका ने चापि धिक्किता सता ये इत्थनि वसंगता ।''

'उच्छ्रद जातक' की एक कथा के अनुसार एक राजा ने एक स्त्री के पति, पुत्र और भाई को बन्दी बना लिया और उस स्त्री से कहा कि – तुम इनमें से किसी एक को बचा सकती हो । तो नारी ने कहा कि – पति और पुत्र तो पुनः–प्राप्त किये जा सकते है, परन्तु भाई पुनः प्राप्त नहीं किया जा सकता । अतः इन्हे हीं छोड दीजिए । इस कथा से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में पतिपरायणता का अभाव था । वैसे बौद्ध धर्म नारी के प्रति सहिष्णु था । सती नारियों का समादर करने के साथ–साथ वह विधवा, वेश्या एवम् पतिताओं को भी अंगीकार करता था । उस काल में स्त्री–विक्रय तथा वारांगनाओं की भी धूम थीं । करुणा अवतार भगवान बुद्ध ने करुणा–पात्र नारी को संन्यास की अनुमति देकर उसका पथ प्रशस्त किया था । परन्तु आगे चलकर भगवान बुद्ध ने अपनी इस भूल पर पश्चात्ताप करते हुए यह व्यक्त किया था कि– ''हमारा संघ जो सामान्यतया एक हज़ार वर्ष चलनेवाला था, स्त्रियों को दीक्षित कर लेने के परिणामस्वरूप अब पाँच सौ वर्ष ही चल पाएगा ।''

भगवान बुद्ध का यह कथन कालान्तर में बौद्ध धर्म के पतन के साथ सत्य सिद्ध हुआ । यह तथ्य सर्व विदित है ।

२.६ सिद्ध व नाथ साहित्य में नारी

हिन्दी साहित्य के आदि युग को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'वीर गाथा काल' कहा है । डॉ. रामकुमार वर्मा ने इसी काल को 'चारण–काल' के नाम से अभिहित किया है । महापण्ड़ित राहुल सांकृत्यायन ने इसी काल को सिद्ध और सामन्त काल की संज्ञा प्रदान की है । परन्तु इतना तो सभी ने निर्विवाद स्वीकार किया है कि यह काल अपभ्रंशकाल तथा भक्तिकाल के मध्य का काल–खण्ड़ है । इस काल की भाषा अपभ्रंश और प्राचीन हिन्दी है । इस काल का साहित्य जैनों, सिद्धों, नाथों तथा चारण कवियों का साहित्य है । सबसे पहले हम इस काल के सिद्ध एवम् नाथ–साहित्य की नारी दृष्टि पर विचार करेंगे ।

सिद्ध लोग नारी को 'मुद्रा' के नाम से अभिहित करते थे और अपनी साधना में उन्होंने डोमिनी, धोबिन और चमारिन आदि नारियों को सम्मिलित कर लिया था । पंच मकारों का सेवन सिद्ध–संप्रदाय में मान्य था । स्त्रियों का उपभोग सिद्ध–संप्रदाय में एक अनुष्ठान माना जाता था । सिद्धि प्राप्ति करने के लिए नारी का सेवन सिद्ध–संप्रदाय में अनिवार्य हो गया था । प्रारम्भ में भले ही मुद्रा और मकार आदि प्रतीकात्मक रहे हैं । किन्तु कालान्तर में उनका भौतिक अर्थ ही लिया जाने लगा । सिद्धों ने स्पष्ट ही कहा है कि –

''जिम वीस भक्खद विसहिं ।

तिम भव भुंजिए भवहिणं जुत्ता ।।''

आर्य देव का कथन है, कि जिस प्रकार का जल जल से काँटा काँटे से और वस्त्र का मैल मैली सब्जी से निकलता है, वैसे ही विषयासक्ति भी विषय

की साधना से नष्ट होती है । सिद्ध यह मानते थे कि नारी 'महा–मुद्रा' है और प्रज्ञापारमिता वास्तव में ललना के रूप में सर्वत्र विचरण करती है । इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक सरहपाद ने कमलकुलिश साधना का प्रचार किया था । इस साधना में पंचमकारों (मद्ये मांसेस्तथा मत्स्ये मुद्राभि र्मैथुनैरपि) का विधान था, जो भैरवी चक्रों के माध्यम से संपन्न होता था । सिद्धों की यह मान्यता थीं कि चार प्रकार के आनन्द–प्रथमानन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द की प्राप्ति स्त्री द्वारा ही संभवित है ।

सन्तों के इन आचार विचारों का प्रभाव उनके साहित्य पर भी पड़ा । उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रतीकात्मक ढंग से नारी का चित्रण किया । वज्रयानी सिद्ध मानते थे कि सिद्धत्व भोग करने से ही प्राप्त होता है ।

सिद्ध–सम्प्रदाय के पश्चात् नाथ–सम्प्रदाय का प्रवर्तन हुआ, जिसके प्रवर्तक गुरु गोरखनाथ माने जाते हैं । यह वज्रयान की सहज साधना का ही विकसित एवम् परिमार्जित रूप था । आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार इन योगमार्गी साधकों का एक समुदाय था, जिस पर शैव एवम् बौद्ध सम्प्रदाय का प्रभाव परिलक्षित होता है । जिस प्रकार चौरासी सिद्ध प्रसिद्ध है, उसी प्रकार नाथ भी प्रसिद्ध माने गए हैं । इस सम्प्रदाय में योग मार्ग पर विशेष बल दिया गया है ।

नाथ साहित्य का संग्रह 'गोरखवानी' के नाम से डॉ. पीताम्बरदास बड़ध्वाल ने किया है । नाथों की बानियों में योग, ज्ञान–वैराग्य, आत्मज्ञान, शील और संतोष आदि का चित्रण किया गया है । जिसका आधार इन्द्रिय–निग्रह एवम् प्राणायाम आदि थे । इन लोगों ने नारी को त्याज्य माना और नियमों की रचना नारी के लिए ही की गई, पुरुषों के लिए नहीं । (नियम पुरुषैर्ज्ञेयो न योषित्सु कदाचन) इन लोगों ने स्त्रियों को पूजनीय माना है

और यह आदेश दिया है कि कन्या, कुमारी, नग्ना और उन्मत्त को देखकर भी न निन्दा करें और न ही जुगुप्सा करें, न ही हँसे और न ही अपमानित करें, भले ही यह वस्त्र–विहीना ही क्यों न हो । सदैव भक्ति से वन्दना करें । मूल शब्दों में

''कन्या कुमारिका नग्ना उन्मत्ता अपि योषिताः ।
न निन्देत जुगुप्सेत् न हसेन्नावमानयेत् ।
एकं वृक्षं श्मशानों च समूह योषितामपि ।
नारीं च रिक्तवसनाम् दृष्टा वन्देत भक्तितः ।।''

उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि गोरखनाथ ने सहजयानियों, वज्रयानियों तथा नाथपंथियों की विलास–भावना को नियंत्रित करके उसमें पवित्रता का संचार किया था । उन्होंने ब्रह्मचर्य, शील एवम् सदाचार को सर्वोपरि माना । गोरखनाथ का यह सुधारवाद परवर्ती नाथपंथियों एवम् सन्तों को प्रिय लगा । अपनी साधना में नारी को त्याज्य बतलाया । जनश्रुतियों के आधार पर यह भी प्रचलित है कि – गोरखनाथ ने अपने गुरु मत्स्येन्द्रनाथ को भी कामुकता से मुक्त किया था । 'जग मच्छन्दर गोरख आया' उसी समय की उक्ति कही जाती है । इसलिए मत्स्येन्द्रनाथ ने नारी को त्यागा और दूसरों को उसे त्यागने का आदेश दिया ।

सिद्ध व नाथ साहित्य के अवलोकन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि – सिद्धों ने जहाँ नारी को अपने साधन–पथ में साध्य माना, वहीं नाथों ने नारी को त्याज्य माना । गोरखनाथ ने स्पष्ट ही कहा है कि –

जोगी सो जे मन जोगवे । बिल बिलाइत राज भोगवे ।
कनक कामिनी त्यागै दोई । सो जोगेस्वर निभै होई ।।

२.७ रासो साहित्य में नारी

वीरगाथा काल में राज्याश्रित चारणों ने अपने–अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा में साहित्य का प्रणयन किया । इन डिंगल की कृतियों में नारी के विभिन्न रूपों का चित्रण हुआ है । इन काव्य ग्रंथों को रासो के संज्ञा से अभिहित किया गया है । यह रासो साहित्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा के काव्य थे, जिनमें प्रायः नृपतियों के प्रणय एवम् तज्जनित युद्धों का वर्णन होता था । 'पृथ्वीराज रासो', 'हम्मीर रासो', 'वीसलदेव रासो' तथा 'खुम्माण रासो' आदि ग्रन्थ वीरगाथा काल की प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं । इन कवियों ने नारी के रूप और सौन्दर्य का चित्रण है । इन कृतियों की नायिकाएँ यथाः संयोगिता ('पृथ्वीराज रासो'), राजमती ('वीसलदेव रासो'), रूपविचित्रा (हम्मीर रासो') आदि हैं । इनके चित्रण में कवियों ने उनके रूपाकर्षण और पातिव्रत्य तथा उनके सभी स्वरूप का बड़ा ही प्रभावक वर्णन किया गया है । ये नारियाँ युद्ध में अपने पति को अपने हाथों से सजाकर भेजती थीं और वीरगति प्राप्त होने पर वह स्वयं चिता सजाकर सती हो जाती थीं । कहीं–कहीं नारियों के मुँह से नारी जीवन की करुणा का भी कथन हुआ है । 'बीसलदेव रासो' की नायिका कहती है, कि भगवान किसी भी स्त्री को जो बनाना चाहे बनाएँ, परन्तु स्त्री कभी न बनाएँ ।

''अस्त्री जनम काई दीयउ से महेश,
अवर जनम थारइ घणा से नरेश ।
भषती दाष विजोरडी
तइतउ काइ सिरजा उलगाणा की नारि ।।

वीरगाथाकालीन काव्य की नारियाँ कठिनाई के समय में अपने पति को उचित परामर्श देती थीं । राजमती अपने पति से कहती है कि – ''हे स्वामी,

आप गर्व न करें, क्योंकि आपका सामना बहुत बड़े सम्राट से है ।'' इसी प्रकार 'हम्मीर रासो' में जब महाराजा हम्मीर निराश हो जाते है, उस समय उनकी रानी कहती है ''संसार में व्यक्ति के धन, राज्य, वैभव, पुत्र और नारी आदि का कोई मूल्य नहीं है । अतः उन सबको त्यागकर भी आपको अपने बचन का पालन करना चाहिए ।''

हिन्दी की रासो काव्य–कृतियों में भी ओज और शृंगार का अपूर्व समन्वय है । 'पृथ्वीराज रासो' के अन्त में महाराज पृथ्वीराज के बन्दी होने पर संयोगिता के प्राण त्यागने और अन्य रानियों के सती होने का भी प्रशंसापूर्ण वर्णन मिलता है । 'वीसलदेव रासो' की नायिका की विवशता का प्रभावशाली वर्णन किया गया है । प्रवासी पति की पत्नी कहती है कि 'हे महेश मुझे तू जो चाहे बनाना किन्तु प्रवासी पति की पत्नी बनने का दुःख कृपा करके मुझे प्रदान न करना ।

हिन्दी में मैथिली कोकिल के नाम से विख्यात और सौन्दर्य के अप्रितम कवि विद्यापति ने सौन्दर्य और प्रेम के आकर्षण रूप को ही नारी का पर्याय माना है । वे कहते है कि –

''माधव की कहव सुन्दरि रूपे ।''

''सजनी अपरूप पेखल राम ।''

''नव जोवन अभिराम ।''

विद्यापति की पदावली के सम्पादक श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी का यह कथन उपर्युक्त है कि – ''विद्यापति का विरह–वर्णन प्रेमिका के हृदय की तस्वीर है ।'' जागनिक का 'आल्हाखण्ड़' हिन्दी का सुप्रसिद्ध गेय वीर गीत है । इसके सम्बन्ध में डॉ. शंभुनाथसिंह ने उचित ही कहा है ''आल्हाखण्ड़ की स्त्रियों की शृंगारप्रियता कहीं नहीं दिखाई गई है किन्तु फिर भी वे बुद्धिमती,

कार्यकुशल और साहसी दिखाई गई है । उनमें अधिक्तर तंत्र–मंत्र जानने वाली भी है और युद्धभूमि में या पुरुषों का हरण करने के लिए उस विद्या का प्रयोग करती है । इसी प्रकार डॉ. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने 'ढोला मारु' के सम्बन्ध में लिखा है कि – ''बीसू चारण के कथनानुसार (ढोलमारु परित्यक्ता) मारुणी, गति में गंगा, बुद्धि में सरस्वती और शील स्वभाव में सीता है । भावुकता, धैर्य, कोमलता एवम् गांभीर्य आदि उसके विशेष गुण हैं । उसका पति में अनन्य प्रेम, श्रद्धा, एवम् विश्वास उसे भारत की अग्रगण्य नारियों में स्थान प्रदान करता है ।''

इस प्रकार वीरकालीन नारी को जौहर की ज्वाला और विरह की आग दोनों में जलना पड़ता था जैसा कि – हेमचंद्राचार्य संकलित एक दोहे में इस भाव की अभिव्यक्ति अन्यंत सुन्दर रूप से हुई है ।

''भल्ला हुआ जो मारिया, बहिण महारा कन्तु ।
लज्जतु वयसिंह जब भागा घर एवन्तु ।।'

२.८ भक्तिकालीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

भक्तिकालीन कवियों की प्रमुख दो विशेषताएँ हैं । एक तो सतगुरु का महिमा–मंड़न करना और दूसरी नारी निन्दा करना । सत्गुरु का औचित्य तो सहज समझ में आ जाता है, किन्तु नारी के प्रति सन्तों की कटुता एवम् निन्दा के कारण आसानी से समझ में नहीं आते । इस सम्बन्ध में संत काव्य विषयक ग्रंथों में बहुत ही कम लिखा गया है । बहुत से विद्वानों ने तो इस प्रश्न को देखा–अनदेखा ही कर दिया है तो कुछ ने यह भी कहने का प्रयास किया है कि सन्तों ने नारी निन्दा ही नहीं की । जो निन्दा भक्तिकालीन काव्यों के काव्य में लक्षित होती है वह प्रतीकात्मक है और कुलटा नारी की है । विशेष बातों का समाधान निम्न रूप से करना चाहिए ।

२.८.१ कबीर :

कबीर जी निर्गुण–ज्ञानाश्रय काव्यधारा के शीर्षस्थ भक्त कवि है, जिन्होंने आँखों देखी बातें बेखटक समाज के सामने रखी हैं ।

कबीर ने नारी के प्रति दो प्रकार की धारणा व दृष्टिकोण प्रकट किये हैं । एक यह धारणा है कि – नारी को माया का प्रतीक माना है । यही कारण है कि कबीर ने उसे नरक की खान कहा है । नारी के कामिनी रूप को घातक तथा पतन की ओर ले जानेवाला कहा है । कबीर इस सम्बन्ध में कहते है कि –

नारी की झाँई परत अन्धा होत भुजंग ।
कबीरा तिनकी कौन गति नित नारी के संग ।

कबीर स्वयं भी एक गृहस्थ थे । उन्होंने पतिव्रता नारी की भरपेट प्रशंसा की है । पतिव्रता का सच्चा प्रेम तथा सेवा–त्याग आदि को बुरा नहीं माना है । अतः सदाचारी नारी को अधिकतर महत्त्व दिया है । जैसा कि वे कहते है कि –

पतिव्रता मैलीभली, काली कुचित कुरूप ।
पतिव्रता के रूप पर वारो कोटि सरूप ।।

२.८.२ जायसी :

सूफी काव्यधारा हिन्दूओं के निर्गुण मत और मुसलमानों के एकेश्वरवाद से बिलकुल भिन्न नहीं है । फर्क केवल इतना है कि निर्गुणमत का ज्ञानवाद जहाँ भक्ति को शुष्क बना जाता है, वहीं सूफियों का प्रेमतत्त्व सर्वसाधारण में स्वीकृत बना देता है । भारतीय प्रेमलक्षणा भक्ति और सूफियों की प्रेमाख्यान भक्ति में तत्त्वतः अन्तर नहीं है । सूफी कवियों ने प्रेम के लौकिक एवम् अलौकिक दोनों पक्षों का सुन्दर समन्वय कर दिखाया है । सूफी काव्य में इश्के

मिज़ाजी (लौकिक प्रेम) को इश्के हकीकी (आध्यात्मिक प्रेम) की सीढ़ी माना गया है । किसी सूफी कवि ने ठीक ही कहा है कि –

जर्रे पै मश्कदीद कर मेहर की रोशनी न देख ।
ताने नज़र बढ़ाये जा, अभी मेरी तरफ न देखा ।।

सूफी परम्परा में बंदा आशिक की भूमिका में होता है और खुदा की भूमिका माशूक की होती है ।

❀ पद्मावत और नारी दृष्टि :

जायसी ने कुल मिलाकर तीन पुस्तकें लिखी : एक तो प्रसिद्ध 'पद्मावत' दूसरी 'अखरावट' तीसरी 'आखिरी कलाम' । 'अखरावट' में वर्णमाला के एक–एक अक्षर को लेकर सैद्धांतिक तत्त्वों से भरी–चौपाइयाँ है । 'आखिरी कलाम' में कयामत का वर्णन है । जायसी की अक्षयकीर्ति का आधार है 'पद्मावत' । यहाँ निम्न जायसी का 'पद्मावत' के आधार पर नारी विषयक दृष्टिकोण देखेंगे ।

(१) पद्मावती :

पद्मावती भारतीय आदर्श प्रधान नारी है । जो अपूर्व सुन्दरी है । ज्योतिष एवम् सामुद्रिकशास्त्र में नारी के चार प्रकार में से पद्मिनी प्रकार की गुण–शील सम्पन नारी है । किशोरी पद्मावती का अंग–प्रत्यंग मनमोहक है यथा –

मैं उन्नद पद्मावति वारी । रचिरचि विधि सब कला सँभारी ।।
जग बेधा तेहि अंग सुवास । भँवर आर, लुबधै चहुँ पासा ।।
बेनी नाग मलैगिरि बैठी । ससि माथे कै दूरज बैठी ।।
भौंह धनुष साधे सर फेरे । नयन कुरंग भूलि जनु हेरें ।।
नासिक कीर कँवल मुख सोहा । पद्मिनी रूप देखि जग माहा ।।

उसमें प्रथम दर्शन की मिलनोत्सुकता भी है । उसकी बारात के आगमन की स्थिति आस्वादनीय है ।

हुलसे नैन दरस मदमाते । हुलसे अधर रंग रस राते ।।
हुलसा बदन अपि रविपाई । हुलसि हिया कंचुकि न समाई ।।
हुलसे कुच कसनीबंद टूटे । हुलसी भुजा वलय कर फूटे ।।

नवोढ़ा सहज संकोच भी विद्यमान है । पितृगृह से चितौर आने पर सच्ची प्रेमिका व चतुर गृहिणी के गुणों का उद्‌घाटन भी होता है । रत्नसेन को चिन्तामुक्त करने और गृहिणी धर्म का पालन करने के गुण भी विद्यमान है । पद्‌मावती में व्यवहार कुशलता भी है । वह बुद्धिमत्ता एवम् दूरंदेशिता भी रखती है । पद्‌मावती में जातिगत एवम् स्त्री सुलभ प्रकृति के अनुसार प्रेमवर्ग एवम् सपत्नी असूयाभाव भी विद्यमान है । इसी ईर्ष्यावश अपनी सौत नागमती से वाद–विवाद भी करती है । वह रूपगर्विता हो इसलिए नागमती और राजा दोनों पर अपना ईर्ष्याभाव प्रकट करती है । पद्‌मावती की सतीत्व कामना का गुण बड़ा ही सराहनीय है । दिल्लीश्वर की रानी बनने व देवपाल के रूप–यौवन और क्षात्र तेज सुनकर भी वह विचलित नहीं होती । अंततः वह पति के पीछे सती हो प्राण भी त्यागती है ।

(२) नागमती :

नागमती राजा रत्नसेन की प्रथम पत्नी व पद्‌मावती की सौत है । वह रूप–गर्विता पत्नीरूप में उपेक्षिता है । उसमें सपत्नी के प्रति ईर्ष्याभाव विद्यमान है । नागमती अनुपम सुन्दरी है । पद्‌मावती के कारण नारी सहज स्वाभिमान और अपनी रूपगर्विता मानसिकता पर उसे गहरी चोट भी खानी पड़ती है । पति के प्रति उसका प्रीतिभाव बड़ा ही मार्मिक है । नागमती का यह वियोग अत्यंत दारुण है उसकी व्यथा अवर्णनीय है ।

"हाड भए सब किंगुरी, नसें भई सब ताँति ।
रोवँ-रोवँ तैं धुनि उठे, कहौं बिथा के हि भाँति ।।"

प्रारंभ में पद्मावती के साथ वह सौतिया ड़ाह रखती है किन्तु रात्नसेन के बंदी होने पर वह उतनी ही दुःखी हो जाती है जितनी पद्मावती अंततः नागमती भी पद्मावती के साथ-साथ रत्नसेन के पीछे सतीधर्म का पालन करती हुई आत्मबलिदान देकर अपना पत्नीधर्म निभाती है ।

२.८.३ तुलसीदास :

सगुण धारा की रामभक्ति काव्यधारा के मेरुदण्ड़ के रूप में गोस्वामी तुलसीदास अद्वितीय है । उनकी रचनाओं के नारी पात्रों को दो खण्डों में विभाजित किया जाता है । एक मानस के नारी पात्र और दूसरा मानसेतर ग्रन्थ के नारी पात्र । प्रथम मैं मानस के नारी पात्रों के प्रति गोस्वामी जी के दृष्टिकोण का परिचय करवाना चाहूँगा

❁ मानस और नारी दृष्टि :

मानस भारतीय संस्कार का दस्तावेज है । जिसमें अभिव्यक्त नारी पात्रों के प्रति का बहुआयामी दृष्टिकोण निम्नरूप से दर्शनीय हैं ।

(१) सीता :

मानस का मूलाधार सीता है । सच तो यह है कि सीता मानस की नायिका ही नहीं अपितु प्राणदायिनी शक्ति है । सीता का प्रथम परिचय पुष्प वाटिका के प्रेमपुष्प के रूप में होता है । सीता मातृ-पितृ आज्ञाधारी है । स्वयंवर में घनुषभंगोपरांत राम से विवाह कर श्वसुरालय गमन करती है । जहाँ वह सर्वत्र पति के रिश्ते और पति प्रेम को ही सर्वोपरि मानती है । यही कारण है कि राम द्वारा अनेकविध प्रलोभन उपरांत भी वनगमन को तैयार होती

है । राम कहते है कि वन में अनेक आपत्तियाँ सहनी पड़ेगी जिसका उत्तर देती सीता कहती है कि –

''खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल ।
नाथ साथ सुरसदन सम, परनसाल सुख मूल ।।''

राम के बिना जिवीत रह पाने में असमर्थता का बोध होता है । इन बातों से सीता का पातिव्रत्य धर्म ही मुखर आता है, जिसके कारण वह राजमहल का सुख भी त्यागने को तत्पर है । सीता में नारी सहज लज्जा का गुण भी विद्यमान है । उसका चित्रकूट का जीवन निःस्वार्थ प्रेम–सेवा के दर्शन कराता है । बुद्धिमत्ता, धैर्यशीलता और साहस का गुण भी विद्यमान है । रावण द्वारा अपहृत होने पर अशोक वन में शोकमग्न रहती है । रावण द्वारा अनेकविध प्रलोभनों के बावजूद भी वह विचलित नहीं होती यही उसके सतीत्व का प्रमाण है ।

वनवास उपरांत अयोध्या गमन कर साम्राज्ञी बनती है, तब भी उसके शील–स्वभाव में किसी प्रकार का परिवर्तन लक्षित नहीं होता । तुलसीदासजी ने सीता के चरित्र को उच्चासनारूढ़ किया है जिसमें आदर्श पुत्री, संयमित और एकनिष्ठ प्रेमिका की चित्रकारी, पत्नीत्व के पातिव्रत्य एवम् सतीत्व के गुणों के रंग भरे हैं । आदर्श कुलवधू की झालरें लटक रही है तथा सन्देह एवम् विश्वास, धैर्य और अधैर्य, आशा, तथा निराश के बीच संतुलन स्थापित कर विपत्तियों से लोहा लेने का रेशम उसमें गूँथा हैं ।

(२) कौशल्या :

सीता का चित्रण रामकाव्य में यदि आदर्श पत्नी के रूप में हुआ है, तो कौशल्या का आदर्श माता के रूप में । मातृत्व के समस्त सद्‌गुण तुलसीदास की कौशल्या में मानों पुंजीभूत हो गये है ।

मानस की कौशल्या एक कर्तव्यनिष्ठ पत्नी, सन्तान के चरित्र को उज्जवल बनानेवाली माँ, ममत्वपूर्ण स्नेहिल सास, तथा ईर्ष्या रहित सपत्नी और विमाता है । उसमें विनय, विनम्रता, सरलता, धैर्य, दूरदर्शिता, आतिथ्यभावना और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण परिस्थिति एवम् दूसरों की भावनाओं को समझने का है । जब मनुष्य केवल अपने ही सिद्धांतों और विचारों के घेरे में आबद्ध रहता है, दूसरों को नहीं समझता, तो संघर्ष उत्पन्न होता है । कौशल्या न केवल पति और पुत्र, अपितु पुत्रवधू और सौतेले पुत्रों के मनोभावों को भी पूर्णतः समझती है । परिस्थिति की प्रतिकूलता को वह ईश्वरेच्छा मानकर चुपचाप झेलती है । परिस्थिति को यथासाध्य अनुकूल बनाने का यत्न भी करती है । समग्रतया वह स्नेह से परिपूर्ण एक समझदार नारी है ।

(३) कैकेयी :

मानस की कैकेयी का चरित्र अयोध्या काण्ड़ में राम को वनवास देने के प्रसंग में ही सामने आया है । पहले तो दशरथ द्वारा खीर दिए जाने के समय और भरत जन्म के समय उसका नाम भर आया है । कैकेयी सीधी और सरल हैं जिसे प्रारंभ से सपत्नियों से भोगतिवत् और उनके पुत्रों से पुत्रवत् प्रेम है, पर बाद में अपने सरल स्वभाव के कारण ही वह मंथरा के बहलावे में आ जाती है । ईर्ष्या की आग उसके तन–बदन में इस तरह सुलगने लगती है कि वह उचित–अनुचित की भेदक विवेक–बुद्धि खो बैठती है । जिस पुत्र के लिए उसने रामवनगमन का आयोजन किया था, उसी की दृष्टि में वह गिर जाती है । यहाँ तक की पुत्र उसका मुँह तक देखना नहीं चाहता । अन्त में वह अपने कुकृत्यों पर पश्चात्ताप तो करती है पर उसे अपना खोया हुआ सुयश वापस नहीं मिल पाता ।

(४) सुमित्रा :

मानस में सुमित्रा का परिचय सर्वप्रथम राजा दशरथ द्वारा हवि बाँटते समय मिला है । पुनः पुत्रों के जन्म के समय उसकी चर्चा हुई है । पुत्र लक्ष्मण को वह आदर्श नाते–रिश्ते सिखाती है कि बड़ा भाई, तुम्हारे लिए पिता के समान है, भाभी माता के समान है । वे जहाँ रहें, वहीं तुम्हारे लिए अयोध्या है । वह यहाँ तक कहती है कि राम तुम्हारे भाग्य से वन जा रहा है ताकि तुम्हें उनकी सेवा का मौका मिल सके । विधि की गति को वह बड़ी विचित्र मानती है । मानस में अन्यत्र सुमित्रा के चरित्र पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ा है । जहाँ भी चर्चा आयी है सभी माताओं के साथ आयी है । संक्षेप में मानस की सुमित्रा सचेत, सजग और पुत्र में सेवा–भावना, भातृ–प्रेम, भाभी के प्रति आदर भाव, आदि भरने में सनद्ध है ।

(५) मन्दोदरी :

मन्दोदरी का परिचय कवि लंकाकाण्ड़ में देते है । वह मय की पुत्री है और अत्यन्त सुन्दर स्त्री है । राम सेना सहित सागर के किनारे आ जाते है और लंकावासी चिंतित हो जाते है, तो सुझाव देती है कि राम युद्ध प्रारंभ करे उससे पहले सन्धि का आयोजन करना उत्तम होगा । उसे न केवल अपने पति और कुल की ही चिन्ता है, अपितु नागरवासियों के लिए भी वह चिंतित है । रावण उसकी सीख को सुनकर अनसुनी कर देता है, तो बार–बार राम के बल और पराक्रम का वर्णन करके रावण को समझाने का प्रयास करती है । पुत्र की मृत्यु पर उसका भारी रुदन उसके ममतापूर्ण हृदय का परिचायक है । शकुन–अपशकुन पर भी विश्वास करती हैं । रावण की मृत्यु पश्चात् विभीषण के साथ मन्दोदरी के पुनर्विवाह का संकेत से पता चलता है कि – परिस्थितियों से समझौता करना भी जानती है । मन्दोदरी मार्गदर्शन करनेवाली एक

हितचिन्तिका, पतिशिक्षिका पत्नी है । उसमें विनय, ममत्व और समझौता करने की प्रवृत्ति हैं ।

(६) शबरी :

शबरी मानस में एक रामभक्त नारी के रूप में आयी है । वह नारी को अत्यन्त अधम मानती है और अपने आपको मतिमन्द भी । राम–दर्शन के उपरांत वह प्राण त्याग देती है । शुरु से अन्त तक वह एक विनययुक्त, अभिज्ञान–रहित भक्त नारी के रूप में चित्रित है ।

(७) तारा :

बालि–पत्नी तारा भी मन्दोदरी की तरह पति को हित की सीख देने वाली है । वह चरण पकड़कर पति को समझाने का प्रयास भी करती है । बालि के मृत्यूपरांत वह व्याकुल दिखलाई देती है । वह विनयशील भी है । इस प्रकार वह परिस्थिति को समझने वाली और परिस्थिति के अनुकूल परामर्श देनेवाली नारी है । जो परिस्थिति के अनुकूल अपने आपको बनाकर रहना भी जानती है ।

(८) शूर्पणखा :

रावण की बहन शूर्पणखा का परिचय अरण्यकाण्ड़ में मिलता है । वह राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों पर एक साथ आसक्त हो जाती हैं । अन्त में नाक–कान कटवा बैठती हैं । कवि ने उसे दृष्ट–हृदया और नागिन की तरह दारुण कहा है । वह सुंदर पुरुषों पर डोरे डालने वाली मायाविनी है । वह एक बदसूरत कीट की तरह है जो समय पर रंगीन पंख लगाकर सुन्दर पुरुष पुष्पों पर मंड़राती रहती है ।

(६) अहल्या :

यहाँ अहल्या के रूप में भारतीय नारी का वह चरित्र उभरा है जहाँ वह पतिभक्त होती हुई भी पतिता कहलाती है । समाज और परिवार की उपेक्षा सहती है, किन्तु अन्त में भी पति–लोक जाना ही अपने जीवन की सार्थकता समझती है ।

(१०) मन्थरा :

मन्थरा कैकेयी की दासी है और मन्दबुद्धि है । सरस्वती उसे अपयश की पिटारी बनाते हुए उसका मतिभ्रम कर देती है । अर्थात् मंथरा का पूर्व चरित्र सामान्यत्या अच्छा रहा होगा, किन्तु सरस्वती की कृपा के बाद वह ऐसा आचरण करती है जिससे कैकेयी को सरल–हृदया, राजा को कपटी और कौशल्या को चालाक बताकर उसके हृदय में सौतिया–ड़ाह उत्पन्न करती है । जिसके कारण अपयश की भागिनी बनती है । सारांशतः वह व्यवहार कुशल, ढोंग रचने में निपुर्ण और योजना–कार्यान्वय में पक्की है ।

(११) सुनयना :

राजा जनक की रानी, सीता की माँ सुनयना पुत्री को अनुशासन प्रिय बनाती है । पुत्री के चरित्र–निर्माण में उसका बहुत बड़ा हाथ है । उसमें सन्तान के भविष्य की चिन्ता है । राम जैसा जामाता पाकर वह हर्षविभोर भी होती है । पुत्री को विदा करते समय बार–बार बुलाकर मिलना मातृ–हृदया के प्रेम की अभिव्यक्ति है । पृथ्वी–सुता अपनी पालिता पुत्री के मन को पूर्णतः समझती है । इस प्रकार उसका चरित्र एक आदर्श एवम् योग्य माता के रूप में सामने उभरकर आता है ।

❀ मानसेतर ग्रंथ व नारी दृष्टि :

मानस के अलावा गोस्वामी जी के अन्य ग्रंथ भी है जिसमें नारी दृष्टिकोण भी दृष्टव्य है ।

(१) सीता :

'बरवै रामायण' के लघु ग्रंथ में कवि ने सीता के सौन्दर्य पर ही अधिक प्रकाश ड़ाला है जबकि आन्तरिक गुणों पर कम प्रकाश डाला है । 'जानकी मंगल' की सीता को बोलते हुए नहीं दिखाया है इससे स्पष्ट होता है कि वह मितभाषी है । शील–स्वभाव के वर्णन से ज्ञान होता है कि वह मृदुभाषिणी और प्रियवादिनी है । समग्रतः श्रीजानकी मंगल की सीता चारित्रिक गरिमा की एक उजली चादर है, जिस पर कहीं भी कोई अवगुण का दाग नहीं है । 'रामाज्ञा प्रश्न' ग्रंथ मुख्यतः शकुन विचारने के लिए बनाया है । रामकथा की घटनावली के वर्णन में कहीं–कहीं सीता–चरित्र के अंक भी अंकित हुए है । सीता के चरित्र पर राम ने किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं प्रकट किया बल्कि यहाँ सीता खुद ही अपनी चारित्रिक शुद्धता की शपथ लेती है । पवित्रता की दृष्टि से कवि ने सीता को सती ही नहीं, सती–शिरोमणि कहा है । 'कवितावली' में सीता के कोमल और सुकुमार भावों पर प्रकार ड़ाला है । विनय की भावना से भरी है । कवितावली में सीता से सम्बन्धित प्रसंग बहुत कम है । 'गीतावली' में सीता का विरहिणी रूप ही अधिक उजागर हुआ है ।

(२) कौशल्या :

'रामलला–नहछू' की कौशल्या हर्षोल्लास युक्त उत्साहपूर्ण और अनुशासन प्रिय है । 'श्री जानकी मंगल' में कौशल्या प्रेम, शील, सौन्दर्य, अलंकार प्रिय, पुत्रों को दास–दासियों की बजाय सदैव साथ रखना व पुत्र विवाह–जनित माँ के हृदय का हर्ष अभिव्यंजित हुआ है । 'रामाज्ञा–प्रश्न' में कौशल्या का नाम

भर कुछ जग्ह आया है । चरित्र–चित्रण नहीं किया गया है । केवल एक जगह उसे ''कल्याणमय मूरति'' कहा गया है । 'कवितावली' में राम जन्म के समय कौशल्या की कोख की प्रशंसा की गयी है । 'गीतावली' में वह आस्तिक, भाग्यवादी, झाडत्रु–फूँक – मन्त्र–तन्त्र, आदि में विश्वास करनेवाली दर्शायी गई है ।

(३) कैकेयी :

'रामाज्ञा–प्रश्न' में कैकेयी को कलह और कपटतापूर्ण बतलाया है । 'कवितावली' में इतना ही कहा गया है कि रानी मैं जानी अजानी यहा, पबि पाहन हूते कठोर हियो है । 'गीतावली' में पश्चात्ताप में श्मशान की आग की तरह जलते बनाया है ।

(४) सुमित्रा :

'गीतावली' में सुमित्रा के चरित्र का मातृत्व पक्ष ही सामने आता है । वह अपने पुत्र में भातृभावना भरती है । सौतेले पुत्र राम के प्रति उसका विशेष स्नेह है ।[२]

२.८.४ *सूरदास :*

सगुण काव्य में कृष्ण काव्य धारा के अन्तर्गत साहित्य गगनमण्ड़ल में सूर्य के समान चमकदार स्थान सूरदास का है सूरदास जी की 'सूरसागर', 'सूरसागर सरावली' और 'साहित्य लहरी' नामक तीन प्रमुख रचनाएँ हैं । जिसमें 'साहित्य लहरी' में नायिकाभेद के उदाहरणों को प्रस्तुत करनेवाले फुट पद है । जबकि 'सूरसागर सरावली' में कृष्ण जन्म से लेकर मथुरा गमन के फुटकल पद हैं ।

❀ भ्रमरगीत और नारी दृष्टि :

'सूरसागर' का सब से मर्मस्पर्शी और वाग्वैदग्धपूर्ण अंश 'भ्रमरगीत' है जिसमें जसोदा, गोपियाँ और राधा का लौकिक व अलौकिक दृष्टि से निरूपण है । सूरदास के नारी विषयक दृष्टिकोण को उक्त 'भ्रमरगीत' के आधार पर देखने का यत्न अनुसंधक ने निम्न रूप से किया है ।

(१) जसोदा :

जसोदा का चित्रण एक आदर्श माता के रूप में सूर ने किया है । प्रत्येक माता का मानना होता है कि– अपने पुत्र का वह ध्यान रख सकती है वैसा अन्य नहीं; यशोदा भी उसका अपवाद नहीं । यशोदा यहाँ बालवत्सल माता, अभिलाषी माता और बच्चे की छोटी–छोटी बातों का ख्याल रखनेवाली सेविका रूप में चित्रित है । जैसे कि –

''जसोदा हरि पाल्हनै झुलावै,
हलरावै दुलरावै मल्हावै,
जोई–सोई कछु गावै ।''

अपने राजदूलारे पर न्यौछावर होनेवाली आदर्श माता डाँटती फँटकारती भी है । उसे तोड़फोड़ करने पर बांधती भी है । पुत्र वियोग में आँख से आँसू भी टपकाती है और पुत्र स्नेह की बाढ़ में उनके स्तन से दूध की धारा भी बहने लगती है । मातृवत्सल हृदया यशोदा बाल–कृष्ण की विविध चेष्टाओं को भाव–विभोर होकर निहारती है । कृष्ण की चतुराई पर मन ही मन मुस्काती भी है । विविध चेष्टाओं को देख प्रसन्नता से उछल पड़ती है ।

(२) राधा :

वृषभानुजा राधा बड़ी ही सरल और भोली है । राधा ने कृष्ण का नाम सुना था, पहचानती न थीं । एक दिन राधा–कृष्ण की पहली मुलाकात होती है और मुलाकात प्यार में बदल जाती है । जैसे कि –

औंचक ही देखी तहाँ राधा, नैन विसाल, भाल दिए–रौरी ।
सूर स्याम देखत ही राझे, नैन–नैन मिली परी ठगोरी ।।

भोली–भाली राधा को श्याम अपने संग ले जाते है जैसे कि –

सूरदास प्रभु रसिक–सिरोमनि,
बातन भुरई राधिका भोरी ।

कृष्ण की केलिसखी बन जाती है, गायें चराने भी साथ जाते है । कृष्ण के घर पर बार–बार राधा के आने पर जसोदा माता कहती है कि तू यहाँ क्यों बार–बार उत्पात मचाने आती है तो भोली–भाली राधा कहती है कि – कन्हैया

मोसों कहत मोहिं बिनु देखे रहत न मेरो मन ।
छोह लगत मोकों सुनि बानी, महरि निहारो आनी ।।

राधा कृष्ण के बिना एक पल भी नहीं रह सकती । राधा–कृष्ण की बाल सखी है । राधा स्वकीया–परकीया दोनों भाव क्षेत्रों से गुज़रती है । राधा प्रथम रस के लिए विलासवती परकीया पत्नी रूप में और पश्चात् विरहाश्रुओं के घूँट पी पीकर विरहिणी आर्य ललना के संयत रूप में प्रकट हुई है । विरह में वह बावली–सी उन्मत्त–सी व्रजभूमि में भटकती अश्रुपात करती है । राधा कृष्ण के विरह में कृष्णमय बन जाती है । राधा–माधव का मिलन भी अल्प है जैसे कि –

राधा–माधव, माधव–राधा कीट–भृंग गति होई जुगई ।
माधव राधा कै रंग–राँचे, राधा–माधव रंग गई ।।

(३) **गोपियाँ :**

गोपियाँ कृष्ण के प्रति भावमयी है किन्तु वासना की गंध नहीं है । ये गोपियाँ जिसमें कृष्ण की उम्र सात साल है जब कि गोपियाँ षोड़षी है, कहीं मुग्धा है, कहीं युवती है, कहीं प्रगल्भा है, तो कहीं प्रौढ़ा भी है । मुरली की धून पर विह्वल हो उठती है, सारे काम–धाम छोड़ जल्दबाजी में नाक–कान–हाथ–चरणों के नूपुर जैसे आभूषणों का उलटा–सुलटा उपयोग करती है ।

कोऊ चली चरण हार लपटाई । काहु चौकी भुजति बताई ।।
अंगिया कटि लहंगा उर लाई । यह सौभा बरनी नहिं जाई ।।

गोपियाँ ईर्ष्या भाव युक्त भी हैं, मुरली को गोपियाँ सौत ही नहीं घृष्ट भी कहती है । गोप कुमारियाँ अनन्य भाव से कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करना चाहती है । गोपियाँ लोक–लाज एवम् मर्यादा का परित्याग कर रास–लीला के लिए रात्री के समय भी संकेत स्थल पर जाती है । सूर की गोपियाँ तार्किक है, वे खण्ड़न–मंड़न भी करती है । वे सगुण की अत्यधिक उपासिका है, परिहास करना भी जानती है, व्यंग्य–उपालंभ भी देने में सक्षम है । उद्धव को संबोधित करती है कि –

आयो घोष बड़ो व्यापारी ।
लादी खेप गुन ज्ञान–जोग की ब्रज में आन उतारी ।
फाटक देकर हाटक माँगत भौरे निपट सुधारी ।।

गोपियाँ श्याम की याद में अश्रुपात भी करती है जैसे कि –

निसदिन बरसत नैन हमारे,

जब ते स्याम सिधाव ।

कृष्ण विरह में पेड–पौधों को भी गोपियाँ उपालंभ देती है कि –

मधुबन ! तुम कत रहत हरे ?

बिरह–वियोग स्याम–सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ।

तुम हौ निलज लाज नहिं तमको, फिरि सिर पुहप धरे ।

ससा स्यार औ बन के पखेरु धिक–धिक सबन करे ।

कौन काज के ठाढ़े रहे बन में, काहे न उकठि परे ?

२.६ संत काव्य और नारी

सन्त काव्य में नारी का भी कुछ योगदान है अथवा नहीं ? और यदि है भी तो कितना महत्त्व है ? जिसका लेखा–जोखा मेरे मतानुसार निम्न रूप से किया जा रहा है ।

डॉ. सावित्री सिन्हा ने अपने ग्रंथ 'मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियों' में निर्गुणधारा की केवल छः कवयित्रियों का उल्लेख किया है । इन कवयित्रियों के नाम है – उमा, पार्वती, मुक्ताबाई, इन्द्रमती, सहोजाबाई एवम् दयाबाई । यहाँ उससे आगे बढ़कर कुछ अन्य कवयित्रियों की भी बात की गई है ।[३]

(१) उमा :

कवयित्री का उपस्थिति काल ज्ञात नहीं है । नागरी प्रचारिणी सभा की खोज–रिपोर्टो के आधार पर यह निर्गुण काव्यधारा की सन्त कवयित्री है । कवयित्री की भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है । इनकी कविता के विषय निराकार की उपासना, सत्गुरु की प्रशंसा, प्रेम की महत्ता, भक्ति और विरह का निवेदन आदि हैं । वे कहती है कि –

''सतगुरु में लय लाइया हो ।
मिलिया पूरन ब्रह्म माह ।''

(२) **पार्वतीबाई :**

इनके जीवन के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात होता है कि वे किसी निस्पृही और काम को दग्ध करनेवाले गुरु की शिष्या थीं । इन्होंने अपने पदों में नारी होते हुए भी नारी में रुचि न रखनेवाले को और धन–यौवन में लीन न होनेवाले को श्रेष्ठ पुरुष माना है । उन्होंने कहा कि –

''धन जोबन की करे न आस, चित ना राखे कामिनि पास ।
नाद बिन्दु जाके घट करे, ताकी सेवा पार्वती करे ।

(३) **मुक्ताबाई :**

इनका उपस्थितिकाल विक्रम सम्वत् १३४५ माना जाता है । ये महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर की बहन थी विचारधारा की दृष्टि से ज्ञानेश्वर जी का ही अनुकरण किया है । इनकी कृतियों में सत्संग पर विशेष बल दिया गया है । उन पर मराठी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । जैसे कि–

''जहाँ तहाँ साधु दसवा आपहि आप बिकाना ।''

(४) **इन्द्रमती :**

इन्द्रमती का उपस्थितिकाल विक्रम सम्वत् १७०६–१७८३ माना जाता है । इनको सन्त प्राणनाथ जी की परिणीता माना जाता हैं । इनकी रचनाओं का विषय प्राणनाथ की 'बानी' से मिलता–जुलता है । इन्द्रमती को रचनाओं में 'किताब–जम्बूर', 'बारहमासी', 'कलश' तथा 'सनद' को मुख्य माना जाता है । इनकी रचना शैली का उदाहरण दृष्टव्य हैं । जैसे कि –

सब तन विरहे खाइया, गल गया लोहू मांस ।
न आवे अन्दर बाहर, या विधि सूकत साँस ।

(५) सहजोबाई :

सहोजाबाई का उपस्थिति काल १७४०–१८२० विक्रम सम्वत् माना जाता है । इनके जीवन के सम्बन्ध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं होती । जनश्रुति के आधार पर वे राजस्थानी थीं, और जाति से वैश्य थीं । महात्मा चरनदासजी की शिष्या थीं । 'सहज–प्रकाश' नामक एक ग्रन्थ है । गुरु महात्म्य को विस्तार से व्यक्त किया है ।

''गुरु हैं चार प्रकार के, अपने अपने अंग ।
गुरु पारस, दीपक गुरु, मलय गुरु गुरु भृंग ।।''

(६) दयाबाई :

दयाबाई का उपस्थिति काल विक्रम सम्वत् १७५०–१८३० माना जाता है । दयाबाई सहोजाबाई की गुरु बहन थीं । इनका ग्रंथ 'दयाबोध' है, जिसमें नारी विषयक उद्‌गार है । संसार की निस्सारता सिद्ध करते कहती है कि –

''जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार ।
बिनसि जाय छिन एक में, दया प्रभु गुरु धार ।''

(७) सन्त जनाबाई :

महाराष्ट्र की सुप्रसिद्ध सन्त जनाबाई सन्त ज्ञानेश्वर की समकालीन थीं । इन्होंने प्रभु पण्ढ़रीनाथ की भक्ति के अभंग रचे है । महाराष्ट्र में इनका वही स्थान है जो गुजरात–राजस्थान में मीराँ का है । इनका जन्म गोदावरी तट स्थित गंगाखेड़ गाँवमें शूद्र के घर हुआ था । इनके रचे साड़े तीनसो अभंग हैं, जिनमें सतों का संकीर्तन किया है यथा –

''माझी भेटवा जननी ।
सन्ता विनवी दासी जानी ।।''

(८) सन्त लल्लायोगिनी :

सन्त लालदेह कश्मीर की निवासिनी थीं । वे जाति की मेहतर होने पर भी शैवमतानुया थीं । सन्त नामदेव की समकालीन थीं । 'लल्लावाक्यानि' नामक संग्रह है । डॉ. ग्रियर्सन के मतानुसार सन्त कबीर इनसे प्रभावित थे । इससे अधिक इनके बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं होती है ।

(९) नैनायोगिनी :

कवयित्री का उपस्थितिकाल संदिग्ध है । इनका 'साँवरतरंग' नामक कविताग्रंथ मिलता है, जिसका लिपिकाल सम्वत् १८९३ विक्रमी है । इस ग्रन्थ में तांत्रिक योग–पद्धति, तन्त्र, मन्त्र आदि प्राप्त होते हैं ।

(१०) सन्त मीराँबाई :

मीराँबाई के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है । विशेष जीवन–परिचय जानकारी का पुनरावर्तन कर अनावश्यक पिष्टपेषण करना नहीं चाहता । मीराँ निर्गुण–सगुणोपासक हैं । मीराँबाई का सम्बन्ध जहाँ एक ओर गुजरात से था वहीं दूसरी और उनका सम्बन्ध राजस्थान से भी था । 'गुजरात के सन्तों की हिन्दी वाणी' नामक ग्रंथ में विशेष जानकारी प्राप्त होती है । इनके पदों की विशेषता दृष्टव्य है । जैसे कि –

बड़े घर ताली लागीं री, पुरवला पुन्न जगावाँ री ।
छीलरिये री कामणा म्हारे, डाबरिए कुण जावाँ री ।
गंगा जमना काम णा म्हारे, म्हाँ जावाँ दरिया बोरी ।

(११) सन्तसाई :

इनका उपस्थिति काल १७१७ विक्रमी सम्वत् माना गया है । साई और गिरधर कविराय की संयुक्त रचनाएँ प्राप्त होती हैं । 'महिला मृदुबानी' एवम् 'स्त्री कवि कौमुदी' के लेखकों तथा श्रीमती डॉ. सिन्हा ने इनको गिरधर कविराव की पत्नी माना है । इनकी रचना–शैली का एक उदाहरण देखने योग्य है ।

''साई जग में योग करि युक्ति न जाने कोय ।
जब नारी गोने चली चढ़ी पाल की रोय ।।

(१२) गवरीबाई :

गवरीबाई का उपस्थिति काल १८१५–१८६५ सम्वत् माना गया है । सन्त कवयित्री डुंगरपुर की रहनेवाली थीं । जाति से ये बड़नगरा नागर ब्राह्मण थीं । इनका विवाह पांच वर्ष की अल्पायु में ही हो गया और एक सप्ताह में ही विधवा भी हो गई थीं । सत्संग से इन्होंने गीता और भागवतादि का अध्ययन किया जिसके कारण उनकी भक्ति के चर्चे दूर–दूर तक फैल गये । अतः डुंगरपुर एवम् जयपुर के राजा इनका सम्मान करने लगे । १८६५ में बनारस के अन्तर्गत समाधिस्थ होकर देह–त्याग दिया । गवरीबाई के लिखे हुए ६५० पद उपलब्ध होते हैं । इन्होंने हिन्दी और गुजराती में रचनाएँ की हैं । डॉ. अम्बाशंकर नागर के मतानुसार गवरीबाई हिन्दी निर्गुणधारा की कवयित्रियों में उच्च स्थान प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं । इनकी बानी का उदाहरण इस प्रकार है ।

'' 'गवरी' चित में चेतिए, काम क्रोध कूँ टाल ।
पाँच विषय कूँ, परहरो, तो ही भले किरताल ।''

(१३) सन्त राधाबाई :

गुजरात की सन्त राधाबाई बडौदा निवासिनी दक्षिण ब्राह्मण थीं । कहा जाता है कि ये किसी 'अवधूतनाथ' नामक महात्मा की शिष्या थीं । इनका समय भी ज्ञात नहीं है । अनुमान है कि ये अठारहवीं शताब्दी में विद्यमान रही होगी । उन्होंने अपने पदों में भक्त–चरित्रों एवम् तीर्थों के माहात्म्य का वर्णन व कृष्ण–लीलाओं का वर्णन मिलता है । इनकी भाषा में हिन्दी, मराठी और गुजराती का समन्वय है ।

''रमे दडे से हरिहर गोप, दडा जा अटका रे ।
तब किया कृष्ण ने कोप, दड़ा जा अटका रे ।।

(१४) माता ओंकारेश्वरी :

इनका उपस्थिति काल विक्रम सम्वत् १९०० माना जाता है । ये भड़ौंच जिले के शीशोदरा गाँव की निवासिनी थीं । दाम्पत्य जीवन की असफलता ने इन्हें संसार–विमुख कर दिया । गुजरात के सुप्रसिद्ध सन्त सागर महाराज से भेंट होने पर ये विरक्त होकर, गृह–त्याग करके ऋषिकेश जा पहूँची । सम्वत् १९८९ में इनका देहान्त हो गया । इनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ बड़ी प्रसिद्ध है ।

''नंगा जन नारायण पावे ।
समज समज दिल चेत न प्यारे,
को बिरला जन मन को मारे ।।

(१५) बयाबाई :

इनके सम्बन्ध में अधिक ज्ञात नहीं है । इनका उल्लेख 'हिन्दी के जनपद सन्त' में प्राप्त होता है । इस ग्रन्थ में इन्हें महात्मा रामदास की शिष्या बतलाया गया है । इन्होंने अपने जीवनकाल में उत्तर भारत की कितनी ही

यात्राएँ की, जिसके कारण इनकी भाषा पर उर्दू और फारसी का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा । उदाहरण देखने योग्य है जैसे कि –

''क्या कहूँ रे गुरुनाथ की बात में,
मस्त भया है दिल मेरा रंग में ।।

(१६) बहिणाबाई :

इस कवयित्री का भी उल्लेख 'हिन्दी के जनपद सन्त' में है । ये सन्त तुकाराम की शिष्या थीं । बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाने के कारण बहिणाबाई विरक्त हो गयी । इनका कहना है कि – जीवन की सच्ची सार्थकता, सच्चे साहब में अनुरक्त होने में है । निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा ।

''सच्चा साहेब तू एक मेरा,
काहे मुझे फिकीर ।
महाल पुलुख परवा नहीं,
क्या करुँ पील पाथरी ।।

(१७) सन्त समानबाई :

संत कवयित्री समानबाई का जन्म राजस्थान के अलवार जिले के अन्तर्गत सिहोली गाँव में हुआ था । पिता जागीरदार रामनाथजी ठाकोर स्त्री–शिक्षा का महत्त्व देनेवाले थे । उनका विवाह अलवार जिले के मावद के जागीदार रामदयाल जी पालावत के साथ हुआ । विवाह के उपरांत मीराँबाई की भाँति समानबाई ने भी सत्संग को ही प्रधानता प्रदान की और पतिदेव से प्रार्थना की और स्वीकृति दे दी । गृहस्थी की झंझट से भी इनको मुक्त कर दिया सन्त समानबाई पति को परमेश्वर माननेवाली महिला थीं । वे कहती है कि –

"देखो तो त्रिलोकीनाथ पति में बिराजी रहयो ।
मेरे हित हेतु दिन, रैन में खड़ो जगे ।"

(१८) बावरी साहिबा :

सन्त बावरी साहिबा ने अपने विषय में एक अक्षर भी नहीं लिखा । केवल इतना ही मिलता है कि दिल्ली के सम्भ्रांत कुल की महिला थीं । प्रभु–प्रेम में पागल होकर घर से निकल पड़ी थीं । घर के स्वजनों ने इन्हें कष्ट दिए थे । इनका रचा हुआ एक सवैया दृष्टव्य हैं ।

"बावरी राबरी का कहिए, मन हवै कै पतंग भरै नित भाँवरी ।
भाँवरी जानति सन्त सुजान, जिन्हें हरि रूप हिए दरसाव री ।।
साँवरी सूरति मोहनी मूरति, देकर ज्ञान अनन्त लखाव री ।
खाव री सोहें तिहारी प्रभु, मति रावरी देखि भई मति बावरी ।।"[४]

२.१० रीतिकालीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

राजसी वैभव में उत्पन्न, पालित एवम् पोषित रीति कविता नारी के प्रति सहज आकृष्ट हैा निम्न पंक्तियाँ रीति वातावरण में एक सीमा तक सत्य है –

"क्षुधा काम वश गत युग ने पशु–बल से कर जनशासित ।
जीवन के उपकरण सदृश नारी भी कर ली अधिकृत ।।"

यह सत्य रीतिकाल का ही हो, ऐसा नहीं । आज भी सत्य है । रीति–कालीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण निम्नरूप से देखने का यत्न किया गया है ।

२.१०.१ केशवदास :

केशवदास की **सीता** राम की सच्ची जीवन–संगिनी है । विपत्ति में पत्नी को पति का साथ देना चाहिए, इसी भावना से वह पति के साथ वन जाने को

तैयार हो जाती है । केशवदास की सीता अपने व्यक्तिगत सुख–दुःख का भी, ख्याल रखती है । सीता गरम धरती पर पैर रखने से बचने के लिए जान–बूझकर राम के पैरों के निशान पर पाँव रखती हुई चलती है । जैसे कि –

मारग की रज तति है अति । केशव सीतहिं सीतल लागति ।।
प्यौ पद पंकज ऊपर पायनि । दैजु चले तेहि ते सुख दायनि ।।

सासुओं और देवरों से भी साम्यभाव रखती है, लक्ष्मण को दुर्वचन कहती है और पश्चात्ताप भी करती है । निर्भयता और साहस के साथ रावण की बातों का उत्तर देती है । अन्त में केशव की सीता का जीवन सुखान्त हो जाता है ।

केशव के अन्य नारीचरित्र वाल्मीकि से प्रभावित हैं । उनमें मानवीय ईर्ष्या द्वेष जैसी कमजोरियाँ हैं ।

२.१०.२ *सेनापति :*

सीता सेनापति के ''कवित रत्नाकर'' की **सीता** इतनी सुन्दर है कि देव–सुन्दरियाँ भी उस पर अपना सौन्दर्य न्यौछावर करती हैं । राम एक पत्नीव्रती रहे, इसका कारण भी सीता का सौन्दर्य ही बतलाया गया है ।

राम से उसे इतना ही प्रेम है जितना राम को सीता से, जुआ खेलते समय दोनों के नेत्र एक दूसरे का सौन्दर्य निहारने लगते हैं

भूल गयो खेल दोऊ देखत परस्पर
दुहन के दृग प्रतिबिंबन सौं अटके ।

इस प्रकार सेनापति की सीता सौन्दर्य, प्रेम और अलौकिकत्व की त्रिवेणी है । इनके अन्य नारी पात्रों का चरित्र नहीं उभर पाया है ।

२.१०.३ गुरु गोविन्द सिंह :

गुरु गोविन्द सिंह की सीता मृगीराज नैनी है, उसका सौन्दर्य ऐसा अनूठा है कि कहना मुश्किल है कि वह क्या है कवि के शब्दों में

किंधौ देवकन्या किंधौ वासवी है ।

किंधौ यक्षिणी किन्नरी नागिनी है ।

गुरु जी की ***सीता*** सौन्दर्य मंड़ित, प्रेम–चकोरी, सुख एवम् सौन्दर्य कोमलता तथा कठोरता का संगम है । उसमें क्षमाशीलता व विनाश की प्रवृत्ति है ।

इस प्रकार गुरु जी की सीता एक ओर प्रेम, भय, लोभ, क्रोध आदि सी युक्त मानवी है तो दूसरी ओर अद्‌भुत सौन्दर्य और अलौकिक सतीत्व शक्ति से युक्त अतिमानवीया है ।

गुरु गोविन्द सिंह की ***कौशल्या*** पुत्र–मोह से आबद्ध हैा राम वन गमन के समय मानस की कौशल्या के विपरीत रामावतार की कौशल्या राम को रोक लेना चाहती है । वन जाने के लिए वह कुल की लाज तक त्यागने को तैयार है । वह कानों में मुद्रा धारण करके मुख पर भभूत रमाने तक को तत्पर है । चौदह वर्षों की अवधि उसने शोक–संतप्त होकर बिताई । बन से पुत्र के लौटने पर हर्षाश्रु में शोक धो डालती है ।

इस प्रकार गुरु जी की कौशल्या पुत्र–नैकट्य कामी है । वात्सल्य की प्रतिमा है ।

देवताओं और दानवों के युद्ध के समय जब दशरथ का सारथि मर जाता है तो ***कैकेयी*** दशरथ का रथ हाँक कर अपनी योग्यता और कुशलता का परिचय देती है । जिससे दशरथ प्रसन्न होकर वर देते है, जिसके सहारे वह राम को वन भेजती है, जिससे उसका कठोर–हृदया होना सिद्ध है ।[५]

अन्य नारी पात्रों के चरित्र पर विशेष प्रकाश नहीं पड़ा है ।

२.१०.४ *बिहारी :*

बिहारी रीतिकालीन कवि थे पहले कवि और बाद में भक्त थे वे जयसिंह के राजदरबारी कवि थे । अतः उन्होंने राजा को प्रसन्न करने के लिए रचनाएँ की । उनकी प्रमुख रचना 'बिहारी सतसई' है । जिसमें भिन्न–भिन्न बातों का निरूपण किया गया है । जिसके नायक–नायिका अवश्यमेव **राधा–कृष्ण** है किन्तु वे लौकिक हैं । अतः नारी विषयक दृष्टिकोण आदर्श न होकर एक प्रमोद का उपकर मात्र था । जिसके विभिन्न रूप हम निम्न रूप से देख सकते हैं ।

बिहारी की नायिका बातूनी है, वह प्रिय से बात–चित्त में मग्न रहना चाहती है । जिसके लिए उसे अपने प्रिय की प्यारी चीज भी चुरा लेने में उसे परहेज नहीं है ।

''बतरस लालच लाल की मुरली धरि लुकाई ।''

वह लज्जाशील भी है और नेत्रकटाक्ष में प्रवण भी, जो अत्यंत सौन्दर्य सम्पन्न भी है । जैसे कि –

पत्राहि तिथि पाइयो वा घर के चहुँ पास ।
नित प्रति पून्यो हि रहत, आनन ओप उजास ।।

बिहारी की नारी इतनी सुकुमार है कि वह अपने शरीर पर के भूषण के भार को भी उठा नहीं सकती । उसका अंग–प्रत्यंग काफी नाजुकियों से भरा है । वह विरहदग्धा भी है ।

इत आवत चलि जाति उन चली छ सातक हाथ ।
चढ़ी हिंडारै सी रहै लगी असासनि साय ।।[६]

२.११ निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि आदि व मध्यकालीन नारी परिवर्तन की नहीं नकारात्मक परिवर्तनकारी षड्यंत्र की शिकार बन गई । जैसे ही वैदिक युग से दामन छूटा कि वह सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक परस्थितियों की लौंडी बन गई । साहित्य में भी नारी की स्थिति यही रही । ज़ाहिर है कि साहित्य व समाज आबद्ध है । वह चाहे अप्रभ्रंश साहित्य हो, जैन व बौद्ध साहित्य हो या फिर रासो साहित्य ही क्यों न हो । यदि कहीं नारी को मुक्ति की साँस का एहसास कराया भी गया है तो उसकी कीमत वसूली गई है । वह कीमत शील से या शिला सी कैसे भी वसूली ज़रूर गई है । भक्ति काल ने नारी के बारे में सोचने का एक तरह से कुछ प्रयत्न किया । किन्तु वहाँ सिर्फ मातृरूप, पतिव्रता व पुत्र–प्रसन्न नारी की ही प्रशंसा की गई है, मुक्ति नहीं दी गई । इस प्रशंसा के पीछे एक प्रकार का दमन ही है वह चाहे कबीर, जायसी, तुलसी या सूरदास ही क्यों न हो । हाँ, यद्यपि सूरदास और तुलसी में यह बात नहीं मिलती पर उनकी रचना विशेष की नायिकाएँ सीता, कैकेयी, सुमित्रा आदि व गोपियाँ, राधा, जसोदा थीं । जो अलौकिकता के धरातल पर बिराजित थी व देवत्व प्रदान किया गया था । संत कवयित्रियों ने भी कामिनी को निकृष्ट बताया व नारी पर विशेष प्रकाश नहीं डाला । मीराँ ने खुल्लेआम प्रेम–पीर की अभिव्यक्ति की वह इसलिए ग्राह्य थी कि उसका पिया देवत्व के धरातल पर स्थित कृष्ण था । वरन् संभव था मीराँ भर चौंराहे पर शूली चढ़ा दी जाती । रीतिकालीन नारी पात्रों में सीता, अहल्या, सुमित्रा आदि रामायण सम्बन्धित नारी चरित्रों को छौड बिहारी जैसे कवियों ने राजमहल में नारी अनावरण करने का ही कार्य किया है । नारी का कोई अंग–उपांग ऐसा नहीं जिसे वह राजमहल में प्रस्तुत न कर पाया हो ।

इस काल में नारी की ऐसी हीन स्थिति का जिम्मेवार तत्कालीन धर्मान्ध, अशैक्षिक मानसिकता से भरा समाज है । साथ–साथ नारी भी अपने अधिकारों के प्रति सजग न थी अतः जाहिर है कि स्मशान घाट का बुझा हुआ कोयला नारी के सामने चिनगारी बनकर खड़ा हो जाता था ।

संदर्भ सूची :

१.	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास (दिल्ली : अशोक प्रकाशन, २००२), पृ. १७८
२.	डॉ. पूर्णिमा केडिया, हिन्दी राम काव्य में नारी (इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, २००२), पृ. १२८ से १८७
३.	डॉ. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ, दिल्ली : चिन्तन प्रकाशन, १९५३, पृ. ८१, १०५
४.	डॉ. कृष्णा गोस्वामी, संत काव्य में नारी (रोहतक (हरियाणा) : चिन्ता प्रकाशन, १९८९), पृ. १९३ से २०६
५.	डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा, साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६), पृ. १२६
६.	डॉ. विष्णुप्रसाद ओझा, बिहारी–सतसई और दयाराम सतसई (पिलानी (राजस्थान): चिन्ता प्रकाशन, १९८६), पृ. ७२, ७६, १८१

तृतीय अध्याय

आधुनिक काल : छायावाद और नारी विषयक दृष्टिकोण

३.० प्रास्ताविक
३.१ भारतेन्दुयुगीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण
३.२ द्विवेदीयुगीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण
३.२.१ रामचरित उपाध्याय
३.२.२ हरिऔध
३.२.३ मैथिलीशरण गुप्त
३.३ छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि
३.३.१ राजनीतिक परिस्थितियाँ
३.३.२ सामाजिक परिस्थितियाँ
३.३.३ धार्मिक परिस्थितियाँ
३.३.४ साहित्यिक परिस्थितियाँ
३.४ छायावादी काव्य में नारी
३.५ छायावादी काव्य में चित्रित प्रकृति में नारी
३.६ महादेवी वर्मा और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण
३.६.१ महादेवी की विरहानुभूति
३.६.२ महादेवी की मिलन की अभिलाषा
३.७ जयशंकर प्रसाद और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण
३.८ सुमित्रानन्दन पन्त और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण
३.९ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का नारी विषयक दृष्टिकोण
३.१० उत्तर छायावादी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण
३.१०.१ रामधारीसिंह 'दिनकर'
३.१०.२ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
३.१०.३ डॉ. रामकुमार वर्मा
३.१०.४ केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'
३.११ निष्कर्ष

तृतीय अध्याय
आधुनिक काल : छायावाद और नारी विषयक दृष्टिकोण

३.० प्रास्ताविक

तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं के आधार पर छायावादी काव्य पण्डाल का स्थापन १९२० के आसपास माना जाता है । जिसके चार आधार स्तंभ है, सुमित्रानन्दन पन्त, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ।

प्रकृति की भाँति ही छायावादी कविता में नारी की भी प्रधानता दिखाई पड़ती है । यहाँ तक कि छायावाद के विरोधी बहुत दिनों तक छायावाद को स्त्रैण काव्य कहते रहे । छायावादी पूर्ववर्ती काव्य में नारी सम्बन्धी रचनाएँ न हों, ऐसा तो नहीं है किन्तु वे रचनाएँ पुरुष–प्रधानता की द्योतक हैं । द्विवेदी–युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है, पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है, उस युग में निःसंदेह विधवाओं को लेकर अनेक कविताएँ लिखी गई, लेकिन उन कविताओं में विधवा को खाना–कपड़ा दिलाने का ही आग्रह अधिक है, और इसीलिए विधवा–विवाह को आवश्यक ठहराया गया है । द्विवेदी युग का सारा काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है, जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ ही बंदिनी भी बना दिया गया और इस तरह वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गई । आर्यसमाज की कट्टर शुद्धिवादी (प्यूरिटन) नैतिकता ने द्विवेदी–युग के संपूर्ण काव्य को नीरसता और वर्जना से भर दिया; चारों ओर 'निरस विसद गुनमय फल' वाले कपास

का वातावरण छा गया । किन्तु धीरे–धीरे द्विवेदी युगीन आर्यसमाजी नैतिकता का प्रभाव क्षीण हुआ और प्रकृति के बीच ही छायावादी कवि को नारी के नैसर्गिक रूप का दर्शन हुआ ।

इस प्रकार जो प्रकृति आरंभ में नारीविरोधी प्रतीत होती थी, वही नारी की आवश्यकता का अनुभव करनेवाली तथा कारण बन गई । इस पर यह भी कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन आर्यसमाजी नैतिकता की प्रतिक्रिया का पहला सोपान प्रकृतिप्रेम था, जिसने नारी–प्रेम के लिए पृष्ठभूमि तैयार की ।

कविता में नारी–सम्बन्धी दृष्टिकोण में यह जो परिवर्तन हुआ, यह आकस्मिक नहीं है । उन्नसवीं सदी में जो सुधार–आन्दोलन आरंभ हुआ था, वह बीसवीं सदी का प्रथम पाद समाप्त होते–होते बहुत जोर पकड़ गया । नारी–शिक्षण में बड़ी तेजी से प्रगति हुई । सरकारी आँकड़ों के अनुसार १९०० में शिक्षा–ग्रहण करनेवाली लड़कियों की संख्या जहाँ लगभग चार लाख थीं, वहाँ १९२५ में यह संख्या उसकी तिगुनी अर्थात् बारह लाख तीस हज़ार छः सौ अट्ठानबे हो गई और १९३५ तक जाते–जाते सात गुनी से भी ज्यादा हो गई ।

नई शिक्षा के द्वारा लड़कियों को नई दुनिया का ज्ञान हुआ और उनमें नए विचारों का अभ्युदय हुआ । इससे लड़कियों में स्त्री–स्वतंत्रता का भाव पैदा हुआ । नई पीढ़ी की देखा–देखी पुरानी पीढ़ी की महिलाओं में भी अनजाने ही नवजागरण के प्रति आकर्षण दिखाई पड़ा । लड़कियों ने अपनी माताओं और सासों के प्रति जकड़े हुए मन को थोड़ा सा ढीला किया ।

वैसे ज्ञान तो अपने–आप में ही मुक्ति का कारण है, किन्तु नई शिक्षा ने इस से भी बड़ा काम यह किया कि पढ़–लिखकर लड़कियाँ जीवन के व्यापक कार्यक्षेत्र में आई । विद्यालयों में एक ओर यदि वे लड़कों के संपर्क में

आई तो विद्यालयों से निकलकर अध्यापन, डॉक्टरी, वकालत बगैरह का पेशा अपनाकर उन्होंने व्यापक समाज के साथ सम्पर्क स्थापित किया । पुरुष और स्त्री के सहयोग से समाज का सदियों पुराना जीर्ण–शीर्ण परदा फट गया; दुराव कुछ कम हुआ और आपस में एक ऊँचे स्तर की समझ–बूझ का भाव पैदा हुआ । मुक्त नारी में पुरुष के अभिनव सौन्दर्य का दर्शन हुआ, नारी के मुक्त मन में पुरुष को स्पृहणीय भाव–संपदा का परिचय मिला और इस तरह नारी की मुक्ति में उसे अपनी मुक्ति का द्वार दिखाई पड़ा । पुरुष ओर स्त्री के बीच का पुराना तनाव कुछ कम हुआ और पारस्परिक विचार–विनिमय के आधार पर उच्चतर सहभाव विकसित होने लगा । मिलने–जुलने से ही मेल–जोल होता है, गलतफहमी दूर होती है, परिचय बढ़ता है और फिर उस बीच यथोचित रागात्मक सम्बन्ध और नवीन नारी दृष्टि का उदय होता है ।[१]

अब इस से आगे मैं आपको छायावाद पूर्वकाल–भारतेन्दुयुगीन, द्विवेदीयुगीन और छायावादोत्तरकालीन कवियों के काव्यों में निहित नारी विषयक दृष्टिकोण का विहंगावलोकन करवाऊँगा ।

३.१ भारतेन्दुयुगीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

१८६८ में भारतेन्दु बाबू द्वारा सम्पादित 'कविवचन सुधा' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ यहीं से भारतेन्दु काल का प्रारम्भ माना जाता है । इस काल के साहित्यकारों का लेखन एक विशाल फलक (कैनवास) पर आधारित है । उसमें भक्ति व रीतिकाल की प्रवृत्तिगत अनुबद्धता के साथ–साथ समकामलीन परिप्रेक्ष्य व परिवेश के प्रति जागरूकता भी काफी सीमा तक विद्यमान है । देश के उत्कर्ष–अपकर्ष के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश ड़ालकर इस युग के साहित्यकारों ने भारतीय जनमानस में व्याप्त राजभक्ति, शोषण, टैक्स, अल्पवेतन, सामाजिक दशा, धार्मिक दशा, शिक्षा आदि बातों को साहित्य के माध्यम से

उजागरित करने का यत्न किया । साथ–साथ नारी की स्थिति व उसके प्रति का अपना नज़रिया भी अभिव्यक्त किया ।

स्वतंत्रता पूर्व गुलाम सामाजिक अवस्था में सर्वाधिक कष्ट यदि किसी को उठ़ाना पड़ रहा था तो वे थी नारियाँ जो दोहरी मार से पीड़ित थीं । एक तो समाज की सारी अव्यवस्था की मार से वे पहले से ही व्यथित रहती थी दूसरा उनकी जाति के साथ जो पुरुष वर्ग अत्याचार करता था वह और भी कष्टकर था । सती प्रथा, विधवा विवाह निषेध, बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज, स्त्री शिक्षा का निषेध, वेश्या समस्या आदि ऐसी समस्याएँ थी जिनसे इस काल के सुधारकों व साहित्यकारों ने पहली बार इस दिशा में सशक्त प्रयास किया । ***श्री प्रतापनारायण मिश्र*** तो

''बाल ब्याह की रीति मिटाओ,
रहे लाली मुंह छाय''

कहकर बाल विवाह की कुप्रथा निवारण हेतु सक्रिय कार्य करने लगे । दुःखी बाल विधवाओं की गति का रेखांकन ***श्रीधर पाठक*** ने बड़े ही हृदयद्रावक स्वरों में किया हैं –

''दुःखी बाल विधवाओं की जो है गती ।
कौन सके बतला किसकी इनी मती ।
जिन्हें जगत की सब बातों से आन है,
दुःख सुख मरना जीना एक समान है ।
जिनको जीने जी दी गयी तिलांजली
उनकी कुछ हो दशा किसी को क्या पड़ी ।''

(मनोविनोद पृ. ७६)

इसी प्रकार की अवस्था का चित्रण तत्कालीन सभी साहित्यकारों ने की है । इस नारी–दुर्दशा के मूल में नारीशिक्षानिषेध ही है । जब तक नारी अशिक्षित है तब तक वह समस्त शोषण व उत्पीड़न की शिकार है । अतः ***पं. प्रतापनारायण जी*** ने समाधान प्रस्तुत किया है –

''स्त्रीगण को विद्या देवैं,''

ऐसी ही भावना ***महावीर प्रसाद द्विवेदी जी*** ने भी व्यक्त की थीं –

''पढ़ती थीं वेद तक जहाँ महिला सदैव ही,
नारी समूह है वहीं अज्ञान हमारा ।''

अतः इस काल में पुनर्जागरण की भावधारा में नारी समस्याओं का एकमात्र समाधान नारी–शिक्षा माना गया तथा उस हेतु कदम उठ़ाने की चेष्ठा की गई । जिसमें ***पं. बालकृष्ण भट्ट, श्री रामनरेश त्रिपाठी, श्री राधाकृष्ण दास, प्रेमधन जी*** और ***भारतेन्दु जी*** का योगदान महत्त्वपूर्ण था ।

३.२ द्विवेदीयुगीन कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

सन् १९०३ में सरस्वती के सम्पादक के रूप में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का अवतरण हुआ । अपने नायिका भेद छोड़कर विविध विषयों पर कविता लिखने, सभी प्रकार के छन्दों का व्यवहार करने, सभी काव्यरूपों को अपनाया तथा गद्य–पद्य की भाषा के एकीकरण का परामर्श दिया । आचार्य द्विवेदी की प्रेरणा और वात्सल्यमय प्रोत्साहन के फलस्वरूप अनेक साहित्यकार सामने आए जिनमें प्रमुख हैं – सर्वश्री मैथिलीशण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', लोचन प्रसाद पाण्ड़ेय, गोपाल शरणसिंह आदि कवियों ने राष्ट्रीयता, मानवता, नीति, आदर्श, प्रकृति की स्वतंत्रता आदि बातों पर अपनी लेखनी चलाई । साथ ही नारी विषयक दृष्टिकोण को पौराणिक पात्रों का आधार

बनाकर, तत्कालीन परिस्थितियों का आरोप कर उसे नवीन धरातल देने का यत्न भी किया गया है । जिसे निम्न रूप से देखने का यत्न किया गया है ।[२]

३.२.१ रामचरित उपाध्याय :

द्विवेदीयुगीन प्रारंभिक कवियों में उल्लेखनीय रामचरित उपाध्याय जी है । इनके 'रामचरित चिन्तामणि' की सीता पारंपरिक होते हुए भी तर्कशील है । जैसे कि –

''क्या आपके आधे क्लेवर को मिला वनवास है ।
आधे क्लेवर को कहो कैसे मिला रनिवास है ।''

अन्य पात्रों में कौशल्या के प्रति पारंपरिक ममत्वप्रतिमा के रूप में नज़रिया रहा है । कैकेयी सरलहृदया और राम से प्रेम करनेवाली है, जो मंथरा की बातों में पहले नहीं आती बाद में आ जाती है । मंथरा को कुटिला, शूर्पनखा को कामुक और निर्लज्ज चित्रित किया है । मन्दोदरी पति–परामर्शदात्री के रूप में है जो भारतीय आर्य नारी का प्रतिनिधित्व करती है । मानस से हटकर इनका नारी दृष्टिकोण मौलिक कम रहा है ।[३]

३.२.२ हरिऔध :

'वैदेही वनवास' में नवीन बौद्धिक व्याख्या के द्वारा सीता के प्रति अबला नहीं अपितु सबला नारी का हरिऔध का दृष्टिकोण रहा है । सीता एक उदारहृदया, सहिष्णु कर्तव्यशील ओर पति–परायण होने के साथ–साथ लोकापवाद सुनकर अविचलित रहनेवाली व स्वेच्छा से अपना घर छोड़ने को तैयार होती है । इससे स्पष्ट होता है, कि हरिऔध जी की सीता का मानस संतों की उस ऊँचाई तक पहुँचा हुआ है, जहाँ मान या अपमान का कोई प्रभाव नहीं । सीता के इस रूप को उभारने के पीछे कवि का असामान्य दृष्टिकोण मुखर आता है । कवि ने अपने बुद्धिवाद के प्रभाव से उसे हाड़माँस की साधारण

नारी न बनाकर एक अत्यंत उदारहृदया देवी बना दिया है । इस प्रकार वह एक आदर्श संत, देवी, पत्नी और माता है ।

'प्रियप्रवास' की राधा के प्रति कवि का दृष्टिकोण युगीन संदर्भों एवम् आयामों के रूप में ही रहा है । इस काव्य की राधा न तो विद्यापति की माँसल आसक्तियों में निरत कामसूत्र की नायिका राधा है और न भक्ति काल की सूरदासादि की कृष्ण की ही मायारूपा अनन्य आराधिका राधिका है । वह तो आधुनिक तत्त्वों से संयत, युग–धर्म को, आवश्यकताओं को पहचान कर चलनेवाली एक सजग प्रेममयी नारी है; जो प्रेम का उदात्तीकरण करके अपने–आपको विश्वप्रेमिका और लोकसेविका के स्तर तक विस्तृत कर लेती है । काव्य में राधा के प्रति दृष्टिकोण परम्परा से भिन्न रहा है । कवि ने राधा को लोक सेवा–भावना से आकण्ठ पूरिता, मानव मात्र के दुःख को अपने से भी बढ़कर मानने वाली के रूप में चित्रित किया है । कवि ने राधा को एक स्वतंत्र व समर्थ व्यक्तित्व, सम्पन्न चित्रित किया है । यही कारण है, कि डॉ. सुधीन्द्र वर्मा 'प्रियप्रवास' की राधा के बारे में लिखते है, कि ''प्रियप्रवास की राधा एकान्त प्रेमिका नहीं है, इसलिए तो उसमें पथ के श्रान्त पथिकों की–सी लज्जा–शीलता, पथिक महिला के, मधुप–मधुपी के और क्लान्त कृषक ललना के सुख–दुःख की अनुभूति है ।''[४]

३.२.३ मैथिलीशरण गुप्त :

द्विवेदीयुगीन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त जी का नारी विषयक दृष्टिकोण साकेत, पंचवटी, जयद्रथवध और यशोधरा जैसी कृतियों में देखा जा सकता है ।

उर्मिला 'साकेत' महाकाव्य की नायिका है । पत्नी रूप में एक सहृदय प्रेमिका, प्रेम में त्याग और कर्तव्य की प्रधानता, लक्ष्मण के भातृप्रेम के कारण

वियोग सहने को सन्नद्ध, विरह की चरम क्षणों में काम को धमकी देनेवाली और एक सच्ची क्षत्रियाणी के रूप में कवि द्वारा निखारी गयी है ।

इस प्रकार उर्मिला प्रेम, त्याग, सेवा कर्तव्य और पत्नीत्व की साकार प्रतिमा और आदर्श पुत्रवधू ही नहीं है बल्कि एक तेजस्वी क्षत्राणी के रूप में भी कवि का दृष्टिकोण रहा है । सीता का वर्णन साकेत में पारम्परिक ढंग से ही दृष्टिगत होता है । वनगमन की ज़िद, करते समय वह अवश्य कुछ नयीं बातें करती हैं ।

यदि अपना आत्मिक बल है,
जंगल में भी मंगल है ।
कंटक जहाँ कुसुम भी है,
छाया वाले द्रुम भी हैं ।

इस प्रकार वन में स्वावलंबी गृहिणी का रूप दृष्टिगत होता है ।

कौशल्या के प्रति मानवीय दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करलेनेवाली, सपत्निक ईर्ष्याभाव रहित और सरलहृदया नारी का दृष्टिकोण रहा है । जब कि सुमित्रा वीरत्व और ओज से युक्त एक स्पष्टवादिनी क्षत्रियाणी है । कैकेयी का मनोवैज्ञानिक परिवर्तन मंथरा के कारण दिखलाया है, अपनी करनी पर पश्चात्ताप भी करती है; साथ–साथ उसका क्षत्रियाणी रूप भी उभारा है, इस प्रकार साकेत में कवि का कैकेयी को कलंक–कालिमा से मुक्त करने का पाक–साफ दृष्टिकोण रहा है ।

मांड़वी मैथिली जी की नारी सृष्टि है, जिसमें उन्होंने फूट–फूट कर भाव भर दिये है । इस प्रकार वह औचित्य और मर्यादा की जीवन्त प्रतिमा है । मांड़वी गुप्त जी की मौलिक और अभिनव नारीदृष्टि की कल्पना सृष्टि है ।

श्रुतकीर्ति को भी उन्होंने एक वीर क्षत्रियाणी के रूप में उभारा है । जो आधुनिकयुगीन निर्भीक नारी का प्रतिनिधित्व करती है ।

'पंचवटी' में कवि ने अपना नारी दृष्टिकोण प्रमुख दो पात्रों को लेकर रेखांकित किया है । जिसमें शूर्पणखा आधुनिक उच्छृंखल नारी का प्रतिनिधित्व करती है । आज की नारी जिस प्रकार दिलफेंक है, स्वतंत्रतापूर्ण, वासनायुक्त, निर्लज्ज और क्रोधी है वैसी शुर्पणखा है । रात्रि के समय पहले लक्ष्मण से बाद में राम को हर रूप में पाने को उत्सुक है । तर्क–वितर्क में वह पूर्णतः पटु है । प्रेम–प्रस्ताव स्वीकार न होने पर क्रोधित हो असली राक्षसी रूप प्रदर्शित करती है । अपने नाक–कान कट जाने पर पराजिता अनुभव करती है । इस प्रकार उसे मायाविनी, घृष्ट और काम–वासना की जीती–जागती प्रतिमा के रूप में चित्रित कर कवि ने आधुनिक मायाजनित रूप–यौवन और धन का अत्यंत धमण्ड़ रखनेवाली नारी का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है ।

पंचवटी की सीता स्वावलंबी, स्नेहिल, हास–परिहास व विनोदयुक्त स्वभाववाली तथा राम और लक्ष्मण के स्वभाव को व सच्चरित्रता को जानते हुए भी वह शूर्पणखा को हँसी–हँसी में पहले देवरानी और फिर सौत बनाने को तैयार हो जाती है । कवि ने सीता में संयत धैर्यशील और किसी का जी न दुखानेवाली समभावसम्पन्न नारी का दृष्टिकोण प्रस्थापित किया है ।

'जयद्रथवध' की उत्तरा राजा विराट की पुत्री, अर्जुन की पुत्रवधू और अभिमन्यु की पत्नी के रूप में आती है । जो एक नई नवेली दुल्हन के रूप में आती है । किन्तु वह एक आदर्श भारतीय नारी, सच्ची क्षत्रियाणी, पति–परायण, और स्वमानी नारी है जो अपने क्षात्रधर्म का परिचय इस प्रकार देती है ।

''क्षत्राणियों के अर्थ भी सब से बड़ा गौरव यही –
सज्जित करें पति–पुत्र को रण के लिए जो आप ही ।''

युद्धभूमि में अभिमन्यु के वीरगति पाने पर उत्तरा का विधवा रूप, उसका क्रन्दन दिल दहला देनेवाला है । इस प्रकार उत्तरा एक आदर्श भारतीय गृहिणी विधवा रूप में, वीरपत्नी, वीररमणी, वीरगर्भा और भारतीय आदर्श नारी के गुणों से विद्यमान है । जिसमें स्वमान, सेवा और वात्सल्य के दृष्टिकोण को उत्तरा के झरिये स्थापित किया है ।

'यशोधरा' में यशोधरा अथवा गोपा लिच्छवी गणतंत्र की राजकुमारी है । जो अनिद्य सुन्दरी और गौतम की पतिभक्ता नारी है । पति के परित्याग बाद उसके विरह में सिर्फ आँसू ही नहीं बहती सास–ससुर की सेवा के साथ–साथ पुत्र राहुल का पालन भी करती है । वह कहती है कि –

''स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार,
छोड़ गये मुझ पर अपने उस राहुल का भार ।''

इस प्रकार यशोधरा सिद्धार्थ की परित्यक्ता शुद्धोधन की पुत्रवधू, राजसी कुलवधू, लिच्छवी कन्या, राहुल जननी, क्षत्राणी, परंपरा से बंधी, वधूवंश की प्रतिनिधि, स्वकीया नायिका, शुद्धोधन की कुलवधू, विवाहिता कुलांगना, आर्य धर्म की ग्राहस्थिक आदि अनेकविध रूपों में यशोधरा को चित्रित कर आदर्श भारतीय आर्य वीरांगना का दृष्टिकोण गुप्त जी ने यशोधरा द्वारा स्थापित किया है ।

३.३ छायावादी काव्य की पृष्ठभूमि

छायावाद आधुनिक हिन्दी साहित्य का दूसरा मध्यकाल है जिसकी रचनाओं में कबीर, तुलसी व सुफियों का चिंतन और रीतिकालीन शृंगार राग के लालित्य का परिपाक है । जिसके अस्तित्वमान होने के पीछे राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थितियाँ ही नहीं बल्कि छायावाद ने भारतीय साहित्य,

पाश्चात्य साहित्य तथा बंगला व रवीन्द्र की कविताओं से भी प्रभाव ग्रहण कर प्रेरणा प्राप्त की । छायावाद की इस पृष्ठभूमि से अवगत होते हैं ।

३.३.१ राजनीतिक परिस्थितियाँ :

प्रथम महायुद्ध बीत चुका था । देश में गाँधीजी द्वारा स्वतंत्रता आन्दोलन प्रारम्भ हो गया था । अंग्रेजों को प्रथम महायुद्ध में अपेक्षित सहयोग के बावजूद अंग्रेजी शासन भारतीयों के प्रति वचनभंग का दोषी साबित हो चूका था । कुछ लोग छायावादी काव्य में व्याप्त 'निराशा' की प्रवृत्ति को राजनीतिक परिस्थितियों की देन मानते हैं किन्तु इन बातों से स्वातंत्र्य आंदोलनों का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है किन्तु इस काव्य में व्याप्त वेदना, निराशा, वैयक्तिकता और स्वच्छन्दता की प्रवृत्ति के पीछे औद्योगिक समाज, पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और पाश्चात्य संस्कृति का सम्पर्क जिम्मेवार है ।

३.३.२ सामाजिक परिस्थितियाँ :

पाश्चात्य संस्कृति, सभ्यता और अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप भारतीय समाज के अंदर आचार व विचार के धरातल पर नूतन क्रान्ति उत्पन्न हुई । इससे एक ओर राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम को बल मिला तो दूसरी और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला । नवयुवकों में व्यक्तिवाद की भावना उभरी । नयी पीढ़ी भी चट्टान की तरह अड़िग थीं । फलतः नयी पीढ़ी में कुण्ठा, अतृप्ति, निराशा की भावनाएँ घर करने लगीं ।

३.३.३ धार्मिक परिस्थितियाँ :

छायावादी काव्य की दार्शनिकता प्राचीन अद्वैतवाद तथा सर्वात्मवाद से प्रभावित थी । साथ ही आधुनिक पुनर्जागरण के चिन्तकों विशेषकर रामकृष्ण

परमहंस, विवेकानन्द, महात्मागांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द आदि अनेकविध के प्रभाव से आप्लावित थे ।

३.३.४ साहित्यिक परिस्थितियाँ :

पाश्चात्य प्रभाव के रूप में भारतीय साहित्य पर सर्वाधिक प्रभाव अंग्रेजी साहित्य का आया । फलतः अंग्रेजी साहित्य के 'रोमान्टिसिज्म' का प्रभाव छायावाद पर पड़ना स्वाभाविक था । इस रोमान्टिसिज्म की प्रमुख विशेषताएँ हैं – प्राचीन रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, मानवतावाद, वैयक्तिक प्रेम की अभिव्यंजना, रहस्यात्मकता, सौन्दर्य का सूक्ष्म चित्रण, प्रकृति में चेतना का आरोप, गीति शैली और व्यक्तिवाद ।''[५]

३.४ छायावादी काव्य में नारी

छायावादी कवियों की उद्‌भावनाएँ जितनी प्रकृति के साथ बँधी हुई प्रतीत होती है, संसर्ग के सम्बन्ध में लगती है उतनी ही नारी के साथ अपना अभिन्न सम्बन्ध रखती है । छायावादी कवियों ने नारी को सखी, माँ, सहचरी और प्राण के रूप में देखा, इससे नारी में दिव्यता, चेतना, ममता और विश्वास के गुणों का समावेश हो गया । किसी भी पौराणिक पात्रों के माध्यम से नहीं पर अपने गुणों ही से गौरवान्वित होकर नारी छायावादी काव्य में प्रकट हुई हैं । सदियों से रचित नारी सम्बन्धी रचनाओं में आम तौर पर देखा जाये तो नारी के साथ अन्याय ही किया गया था ।

पंत जी की ''उच्छ्‌वास'', ''आँसू'', ''ग्रन्थि'' और ''भावी पत्नी के प्रति'' जैसी कविताओं में नारी प्रेम सम्बन्धी भावनाओं का हमें दर्शन होता है । ''ग्रन्थि'' में कवि ने प्रश्न किया है –

''ग्रंथि बन्धन ! – इस सुनहली ग्रंथि में
स्वर्ग की और विश्व की मंगलमयी

जो अनोखी चाह, तो उन्मत्त धन

है छिपा, वह एक है, अनमोल है ।''

''आँसू'' कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ देखने लायक हैं । इसमें स्पर्श प्राणवान और जीवन्त प्रतीत होता है । प्रेमवर्धन की पवित्रता गंगा के स्नान–सी बताई है । प्रेमपरक वाणी में भी संगीत के सुमधुर सूर सुनाई देते हैं । कितना उच्चकोटि का प्रेम यहाँ बताया गया है । एक बात और यहाँ दृष्टव्य है और वह यह कि यहाँ रीतिकालीन स्पर्श से उत्तेजित और उद्दीप्त होने वाली वासना लेशमात्र भी नहीं हैं –

तुम्हारे छूने में था प्राण,

संग में पावन गंगा स्नान,

तुम्हारी वाणी में कल्याणि !

त्रिवेणी की लहरों का गान !

सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की ''तुलसीसदास'' में भी ''रत्नावली'' के उत्कृष्ट स्वरूप का प्रकृति की विशाल चित्रपटी की सहायता से निरूपण किया गया है । इसमें तुलसीदास को ज्ञान प्राप्त होता है और उनकी वासना का पर्यवसान हो जाता है । उनकी ''विधवा'' ''इष्टदेव के मंदिर की पूजा–सी'' पवित्र है । रीतिकालीन नारियाँ पुरुषों को वासना के गर्त में ढ़केलती हुई बताई गई थीं जबकि यहाँ उनका वासना से परे रखने वाला स्वरूप दिखाया गया है ।

महादेवी को प्रेम से जो पीर जगी वह तो रहस्यवादी बन गई । किन्तु प्रसाद जी की श्रद्धा भी तो स्वयं के गुणों से यहाँ अभिव्यक्त हुई हैं –

उषा की पहली लेखा कान्त,

माधुरी से भीगी भर मोद,

मदभरी जैसे उठे सलज्ज

भोर की तारक–द्युति की गोद ।

छायावाद में नारी का प्रेयसी रूप भी हमें मुग्ध करता है । अपने इस रूप में कहीं वह अप्सरा–सी भी बन जाती है । अधिकतर छायावादी कवियों ने अपनी कविताओं में नारी सौन्दर्य को अतीन्द्रिय और अशरीरी रूप में ही चित्रित किया है । छायावादी कविता में नारी का जो महत्त्वपूर्ण स्थान है वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गौरवशाली है । नारी को श्रद्धामयी, करुणामयी, कलामयी, कल्याणी तथा प्रेममयी के रूप में चित्रित किया गया है ।

३.५ छायावादी काव्य में चित्रित प्रकृति में नारी

छायावादी कवियों ने प्रकृति की जड़ता में चेतना का जीवन–भौंरों का गुंजन एवम् कोकिल का कुंजन भर दिया । छायावादी कवियों की कविता में प्रकृति का चित्रण आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, अलंकरण, रहस्यभावना दार्शनिक अभिव्यक्ति और प्रतीकों के रूप में हुआ हैं ।

जयशंकर प्रसाद ने अपने ''कामायनी'' काव्य में ''श्रद्धा के मुख पर घिरे बालों को'' प्रकृति के सुन्दर उपादानों में ढालकर प्रकृति में नारी कल्पना का परिचय दिया ।

''घिर रहे थे धुंघराले बाल

अंश अवलम्बित मुख के पास,

नील धन–शावल से सुकुमार

सुधा भरने को विधु के पास ।''

सुमित्रानन्दन पन्त के बारे में सोचा जाये तो उन्होंने माँ के अभाव में शिशु के रूप में प्रकृति से सहारा पाया है । प्रकृति ने उन्हें जो ममता तथा साहचर्य प्रदान किया, वह अमूल्य हैं । पंत जी के लिए कहें तो प्रकृति

प्रफुल्लित रूप से उन पर छायी थीं, इतनी एकप्राण होकर अन्य किसी कवि में नहीं । पंत जी का प्रकृति के साथ पूरा तादात्म्य हो गया था । प्रकृति का मानवीकरण देखने के लिए पंत जी की ''नौका विहार'', ''छाया'', ''प्रथम रश्मि'', ''विहंग बाला के प्रति'', ''निर्झरी'' आदि कविताएँ देखने योग्य हैं ।

निराला जी की ''संध्या सुन्दरी'' जब मेघमय आसमान से परी सी उतरती है तो शान्ति का अनुभव कराती प्रतीत होती है । यहाँ प्रकृति का मानवीकरण देखने को मिलता है –

''अलसता की–सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाह–सी अम्बर पथ से चली !''

महादेवी वर्मा की ''यामा'' की इन पंक्तियों में प्रकृति की कितनी सचेतनता दिखलाई देती है –

रूपसि तेरा धन वेश पाश,
श्यामल–श्यामल कोमल कोमल
लहराता सुरभित केश पाश ।

पंत जी की ''भावि पत्नी के प्रति'' नामक कविता में नायिका के अंगों को छायावाद के नवीन उपमानों की सहायता से चित्रित किया गया है । यहाँ इस बात का उल्लेख करना ज़रूरी नहीं कि रीतिकालीन कवियों की अभिव्यक्ति से वह सर्वथा भिन्न, नूतन और आकर्षक हैं ।

तरुण अधरों की पल्लव प्रात,
मोतियों का हिलाता हिम–हास,
इन्द्रधनुषी पट से ढक गात

बाल विद्युत का पावस लास
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगो का मधुमास ।

भिन्न–भिन्न भावों की अभिव्यक्ति के लिए संध्या, अन्धकार, प्रभात जागरण आदि का प्रयोग किया गया है । उन्होंने प्रकृति की चेतना के संवेदन का अनुभव मानवीय गुणों के रूप में कराया है । प्रकृति के मौन और मूक दृश्यों में भी उन्होंने मानवहृदय के भावों की प्रतिष्ठा की है ।

३.६ महादेवी वर्मा और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण

नारी बनकर या नारी के मन की कल्पना करके नारी भावना व्यक्त करना और बात है और नारी होकर अपने अन्तर की नारी को अभिव्यक्त करना और बात हैं । नारी विद्रोह की चेतना से और नारी प्रगति की आकांक्षा से भरी हुई महादेवी वर्मा ने केवल अतृप्त वासना को अभिव्यक्त न कर नारी मन के मथान रूप नवनीत उनकी विरहानुभूति व मिलन की अभिलाषा में आस्वादनीय है जिसको क्रमशः देखते है ।

३.६.१ महादेवी की विरहानुभूति :

महादेवी को प्रणयानुभूति प्रियतम के साक्षात्कार में ही हुई है । ''नीहार'' की प्रथम कविता में ही इस साक्षात्कार की घटना का हमें संकेत मिलता हैं –

''कली से कहता था मधुमास
बजा दो मधु मदिरा का मोल
झटक जाता था पागल गात
धूलि में तुहिन कणों से हार,
सिखाने जीवन का संगीत
तभी तुम आये थे इस पार ।'' नीहार पृ. १७

प्रियतम केवल एक ही बार उनके जीवन में प्रणय–वेदना जाग्रत करने आये थे । इसके बाद केवल प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा रह गई –

''गए तब से कितने युग बीत
हुए कितने दीपक निर्वाण,
नहीं पर पाया सीख
तुम्हारा सा मनमोहन गात ?'' नीहार पृ. १८

मिलन की प्रथम अनुभूति के बाद न जाने कितने युग बीत गए ? ''नीहार'' की दूसरी कविता के मिलन में भी इसी अनुभूति को और भी अधिक मार्मिक एवम् हृदयस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया गया हैं –

''मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से
स्वप्न लोक से दे आहवान,
वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान ।''

महादेवी जी अपना जीनवदीप जलाये उनकी मौन प्रतीक्षा में लीन दृष्टिगोचर होती हैं –

''अपने इस सूनेपन की,
मैं हूं रानी मनवाली,
प्राणों का दीप जलाकर
करती रहती दीवाली ?''

यहाँ विरहानुभूति में महादेवी की वेदना लौकिक न होकर अलौकिक आध्यात्मिक दिखलाई देती है ।

३.६.२ महादेवी की मिलन की अभिलाषा :

महादेवी को मिलन का वसंत हमेशा क्षणिक ही लगता है । चाहे वह युग–युगान्तर ही क्यों न चलें । प्रियतम और प्रेयसी के मिलन की अभिलाषा कभी भी पूर्ण नहीं होती ।

महादेवी ने इस मिलन–अभिलाषा से उत्पन्न व्यथा को बार–बार अश्रु भरी शब्दावली में व्यक्त करती हैं –

''अलि कैसे उनकों पाऊँ
वे आँसू बनकर मेरे किस कारण ढुल–ढुल जाते,
इन पलकों के बन्धन में मैं बाँध–बाँध पछताऊँ ।'' रश्मि पृ. ६४

जब कभी उनका हृदय अधीर हो उठता है तो वे सीधे ही अपने प्रियतम को पुकार–पुकार कर बुलाने लगती है

''तुम विद्युत बन आओ पाहुन,
मेरी पलकों में पग धर, धर ?''

इतना ही नहीं कवयित्री इतनी अधीर हो उठी है कि केवल एक बार के मिलन को ही अंतिम मिलन स्वीकार करने में भी अपने को धन्य मानती है –

''आज सुला दो चिर निंद्रा में
सुरभित कर इससे चल कुन्तल''

महादेवी का विरह अलौकिक ही है । उनका प्रियतम तो किसी ऐसे स्थान पर हैं, जहाँ धरती का कोई संदेशवाहक पहुँच नहीं पाता । फिर उसका नाम, रूप, पता, परिचय कुछ भी तो स्पष्ट नहीं है । ऐसी स्थिति में प्रिय को संदेश भेजना कितना कठिन हो जाता है । कवयित्री स्वयं पूछती है –

अलि कहाँ संदेश भेजूँ ?
मैं किसे संदेश भेजूँ ?

एक सुधि अनजान उनकी,
दूसरी पहचान मन की,
पुलक का उपहार दूँ या अश्रु भार अशेष भेजूँ ।

दीपशिखा, पृ. १०६

महादेवी जानती है कि स्थायी मिलन शरीर समान दीप के बुझ जाने पर ही संभव होगा । ऐसी स्थिति में जलना या विरहवेदना को स्वीकार करना ही होगा, इसलिए वे कहती हैं –

मैं क्यों पूछूँ यह विरह निशा
कितनी बीती क्या शेष रही ।

☆ ☆ ☆

उनके हित मिट–मिट कर लिखती,
मैं एक अमिट संदेश रही ।

प्रारंभ में महादेवी यह मानती थीं कि इसी जीवन में अपने प्रियतम से मिलन हो जायेगा पर अब उन्हें यह ज्ञात हो गया कि स्थायी मिलन के लिए विरह की धारा को जीवन की सीमाओं को पार करना होगा । उनकी ''दीपशिखा'' का अन्तिम गीत इस भावोल्लास को व्यक्त करता है ।

आज मैं कण–कण को जान चली
सबका क्रन्दन पहचान चली ।

☆ ☆ ☆

आँसू के सब रंग जान चली ।
दुःख को कर सुख आख्यान चली ।[६]

३.७ जयशंकर प्रसाद और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण

कालिदास, शेक्सपियर और टैगोर के नाम से विख्यात छायावादी कवि जयंशकर प्रसाद की मुक्तक कविताओं में 'चित्रधार', 'काननकुसुम' और 'झरना' है, प्रबन्ध काव्यों में 'प्रेम राज्य', 'वन मिलन', 'अयोध्या', 'प्रेम–पथिक', 'महाराणा का महत्त्व आँसू', 'कामायनी' आदि महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं । इनके जीवन की अक्षयकीर्ति का राज़ कामायनी है । कामायनी को छायावाद का उपनिषद भी कहा जाता है । जिसमें प्रसाद जी का नारी विषयक दृष्टिकोण आस्वादनीय है ।

'कामायनी' में श्रद्धा और ईड़ा के ज़रिये नारी को श्रद्धासमुन अर्पित किये हैं । श्रद्धा काम के गोत्र से उत्पन्न परम सुन्दरी है जिसकी रूपमोहिनी के बारे में कवि कहते है कि –

कुसुम कानन अँचल में मन्द,
पवन प्रेरित सौरभ साकार ।
रचित परमाणु–पराग–शरीर
खड़ा हों ले मधु का आधार

रूप सी नारी होने के कारण ही मनु उसे देखते ही कहते हैं कि –

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा हो मृदु अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघबन बीच गुलाबी रंग ।।

गुणवती, करुणा की सागर, धर्मपरायण, जीवन के तत्त्वों की ज्ञाता, पुण्यात्मा, आदर्श विरही माता, गृहलक्ष्मी, पतिपरायण, देवशक्ति समान, प्रकृति प्रेमी, बाह्य आंतरिक सौन्दर्य सम्पन्न सहृदया, शांति व आनंद को प्रदान करनेवाली, नारीसहज लज्जाशील, ध्येय प्राप्ति हेतु मनु के आगे–आगे रहनेवाली, व्यक्तिवादी आदर्श को सामाजिक धरातल पर प्रतिष्ठित करनेवाली प्रथम महिला

के रूप में प्रसाद जी का श्रद्धा के प्रति दृष्टिकोण रहा है, जो हृदय का प्रतिनिधित्व करती है ।

ईड़ा भौतिक ज्ञान–विज्ञान से युक्त अनुशासित पथप्रदर्शिता तथा मनुष्यों की शासिका के रूप में चित्रित है । वह सारस्वत प्रदेश की शासिका है । कर्म को प्रधानता देनेवाली, जीवन की अखण्ड़ता को स्वीकार न करते विभाजन में विश्वास करनेवाली, सहनशीलता के गुणों से सम्पन्न, जड़ को भी चैतन्य बनाने की क्षमता रखनेवाली, दूसरों में आत्मविश्वास पैदा करनेवाली, स्वभाव से शांतिप्रिय प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करनेवाली नारी के रूप में प्रसाद जी का दृष्टिकोण श्रद्धा के प्रति रहा है, तो बुद्धि का भी प्रतिनिधित्व करती है ।

३.८ सुमित्रानन्दन पन्त और उनका नारी विषयक दृष्टिकोण

पन्त का नारी प्रेम आरंभिक रचना 'वीणा' में जिज्ञासामूलक है । कवि का वैयक्तिक अनुराग 'ग्रन्थि' में उभरकर आया है । 'ग्रन्थि' का कथासार वैयक्तिक प्रेम की अनुभूतियों से भरा है । मूल रूप से पंत की नारीभावना सत्य, स्नेह, उल्लास में अपना आश्रयस्थल ढूँढ़ती है । पंत काव्य में व्यक्तिगत प्रेम का प्राथमिक उद्‌घाटन नारी–प्रेम के रूप में कल्पना के माध्यम से भावि पत्नी के अनेक रूपों की सृष्टि की है । उन्होंने भावि पत्नी को 'प्रिय प्राणों की प्राण' कहकर सम्बोधित किया है ।

''मृदूर्मिल सरसी में सुकुमार
अधोमुख अरुण–सरोज समान,
मुग्ध कवि के उर के छू तार
तुम्हारे शैशव में साभार
पा रहा होगा यौवन प्राण,
स्वप्न–सा विस्मय–सा अम्लान
प्रिय, प्राणों की प्राण''

पंत का नारी दृष्टिकोण ग्रामीण सभ्यता और संस्कृति की मौलिक जड़ों से जुड़ा हुआ है । ग्रामीण युवती ने विशिष्ट हाव–भाव, प्रकृति जीवन, सामान्य रहन–सहन, पनघट पर पानी भरना आदि नैसर्गिक क्रिया–कलाप उन्हें प्रभावित करते रहे हैं । धोबी, चमार, कहार आदि के नृत्य प्रस्तुत कर कवि ने नारी के विभिन्न श्रमसाध्य रूप का निदर्शन किया है । उनकी नारी दृष्टि कहीं जननी तो कहीं प्रेयसी रूप में दिखाई देती हैं । कवि उदारतापूर्वक अपनी नारीभावना का परिचय इन पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत करते है ।

''अखिल स्नेह अश्रु जल समा !
मुझको मतिमल धोने दो,
दग्ध हृदय की विरह व्यथा को
हरने दो, हरने दो ।''

ग्रामीण परिवेश में प्रकृति को नारीरूप मान ग्रामीण देवी रूप में अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है जो इन पंक्तियों में हैं

''मा अपने जन पूजन
ग्रहण करो पत्रम् पुष्पम् ।''

'पल्लव' का प्रकाशन कवि की प्रौढ़ मानसिकता का सूचक बना और प्रेम व प्रौढ़ता की गौरवशाली रचना सिद्ध हुई । खेतों की हरियाली में अकेली खेलनेवाली, पौधों के लहलहाते रूप को माँ का सम्बोधन देना नारीदृष्टि के उच्चाशय को अभिव्यक्त करता है ।

''इस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही माँ
वह अपनी वय–वाली में ।''

मधुर चांदनी भी नारी की सजीली प्रतिमा लेकर उपस्थित होती है ।

''नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद–हासिनी,
मृदु–करतल पर शशिमुखधर
नीरव, अनिमिष, एकाकिनी ।''

नारी के प्रति नूतन दृष्टिकोण भी कविवर पन्त की निजी विशेषता है । पन्त के लिए केवल नारी सुन्दरी ही नहीं है बल्कि कलिका में अखिल वसन्त है और स्वर्गपुनीत भी । इसका सम्पर्क देह–मन–प्राण को पुलकित किये देता है । वह गंगा स्नान के समान पावन है ।

''तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान ।''

यही कारण है, कि पन्त का नारी दृष्टिकोण, वासनापंकिल नहीं था । वह देवी के समान पवित्र लेकिन मानवी भी, माँ, सहचरी और प्राणी भी । नारी को कवि ने अनेक दृष्टि से देखा, नारी के प्रति उनका दृष्टिकोण अत्याधुनिक और युग–चेतना–संवलित है । उन्होंने नारी की स्वतंत्रता की आकांक्षा की है ।

''मुक्त करो नारी को मानव
चिर–बन्दिनी नारी को
युग–युग की निर्मम कारा से
जननी सखी, प्यारी को ।''

पंत ने नारी में नारीसुलभ गुणों की अनिवार्यता पर विशेष बल दिया है । जहाँ नारियों में दया, माया, ममता, अनुराग, शील, क्षमा, सहिष्णुता, इत्यादि का अभाव पाया जाता है, वहाँ नारियों का विरोध भी किया है । इसलिए 'आधुनिक नारी' की कृत्रिमता का विरोध सहज स्वाभाविक है ।

''आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, सिर्फ तुम नारी ।''

संध्यासुन्दरी के रूप में बाला की सुन्दरता पृथ्वी पर उतरकर मनमोहक वातावरण उपस्थित करती है । तो कान्ता के रूप में उनका नारी दृष्टिकोण खुद को नारी की सत्ता में अन्तर्ध्यान करता है ।

तुम्हारे गुण है मेरा गान
मृदु का पावनता अभिमान
शक्तिपूजन समान
एकेली सुन्दरता कल्याणि
सकल ऐश्वर्यों की संधान ।''

इस प्रकार पन्त काव्य में नारी प्रति दृष्टिकोण उन्नत स्थापित कर 'लोकायतन' का निर्माण किया है । पन्त ने नारी को विभिन्न रूपों में देखा परखा और चित्रित किया है ।[७]

३.६ सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला का नारी विषयक दृष्टिकोण

निराला भी नारी के रूप लावण्य–यौवन से अभिभूत थे । 'परिमल' में नारी के प्रति उनकी दृष्टि भावुकता प्रधान रही है । उन्होंने नारी के अंग–अंग के अलग–अलग चित्र अंकित किये है । यह चित्र कम मादक नहीं है । उसकी नासिका मीन मदन फाँसने की वंशी–सी है तो उसकी देह–यष्टि देखकर ऋषि–मुनियों का ध्यान छूट जाता है । समाधि भंग हो जाता है ।

उन्नत उरोज पीन–क्षीण कटि
नितम्ब भार–चरण सुकुमार
गति मन्द–मन्द ।

उन्होंने परकीया के स्थान पर स्वकीया को अधिक महत्त्व दिया हैं क्योंकि गंभीरता लज्जा, शील, सेवा, विनम्रता, ममता, समर्पण आदि भाव स्वकीया में ही हो सकते है । 'वह' कविता में नारी का यही सौन्दर्य है ।

सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग
किन्तु नहीं चंचल प्रवाह–उद्दाम वेग
संकुचित एक लज्जित गति है वह

'विधवा' कविता में नारी का जो रूप चित्रित किया गया है, वह अत्यंत साहित्यिक है और पाठक के हृदय को द्रवित कर देता है ।

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा–सी
वह दीपशिखा सी शांत, भाव में लीन ।[६]

निराला का नारीदृष्टिकोण उदात्त स्तरीय था क्योंकि वेश्या सौन्दर्य के प्रति उनको वितृष्णा है । दैहिकता का परिष्कार नारीसौन्दर्य के साथ प्रकृतिसौन्दर्य का मिश्रण प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष कर देता है जैसे कि –

बंद कंचुकी के सब खोल दिए प्यार से यौवन उभार ने
पल्लव पर्यंक पर सोती शेफालिका ।
व्याकुल विकास पर
झरते है शिशिर से चुम्बन गगन के

तुलसीदास काव्य में कवि ने नायिका रत्नावली के द्वारा भारतीय वैदिक नारी का महिमा मण्ड़न किया है । जिसके द्वारा कवि के नारी विषयक दृष्टिकोण का उदात्त रूप नज़र आता है । रत्नावली के रूप–लावण्य का चित्रण काफी सुन्दर ढंग से किया है वे तुलसीसदास के मुख से कहलवाते है कि –

''मैं बँधा एक शुचि आलिंगन
आकृति में निराकार, चुम्बन ...''

गृहिणी रूप व पत्नी रूप का परिचय 'वह रत्नावली, नाम शोभन' जैसे शब्दों में दिया है । भगिनी रूप में एक आदर्श बहन का रूप उभर आता है । जिसमें अपने भाई की बातें सुनकर अत्यधिक खुश होती है । और अतिआग्रह वश होकर पीहर चल पड़ती है । जहाँ पर उसकी संवेदनशीलता में भारतीय नारी की लाक्षणिकता का गुण विद्यमान होता है । उसके पीछे–पीछे बिन बुलाये आये पति के सम्बन्ध में भाभी के व्यंग्य वचन सुनकर व्याकुल हो जाती है । वह पति प्रेमी और उपदेशिका भी बनने में हिचकिचाहट नहीं रखती । मर्यादाशीलता का प्रयोग कर एकान्त में पति के इस प्रकार पिछे–पिछे आने पर क्रोधित होकर निम्न शब्दों में फँटकारती है ।

''धिक ! धाये तुम यों आनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल धर्म धूत
राम के कहीं, काम के सूत कहलाये ।
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ हाड़, चाम ।'
ऐसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये ।''

उक्त शब्दों से रत्नावली ने सभी परम्पराओं को धिक्कारा है । उपर्युक्त बातें कहते वक्त यह योगिनी रूप में रौद्र रूप धारण कर मध्यकालीन नायिका भेद वाले रूप को भस्म कर देती है । वह विदुषी है, इसीलिए तीन शब्दों में पति को धिक्कारती है वे विद्वत्ता से भरे व भावपूर्ण है । तुलसीसदास उन शब्दों के मर्म को समझ जाते है । अंत में रत्नावली में मातृरूप के दर्शन होते

है, वह आदि शक्ति, सरस्वती के रूप में दिखाई देती है । बाद में वही माँ भारती बनकर पति एवम् भारतीय संस्कृति को मुक्ति प्रदान करती हैं ।[९]

३.१० उत्तर छायावादी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

इस कालखण्ड़ की अवधि सन् १९३८ से अद्यतन मानी जाती है । १९३८ से प्रारम्भ होने वाले कालखण्ड़ का नामकरण उत्तरछायावाद या छायावादोत्तर काल किया जाता है । इस काल में तीन बातें राष्ट्रीय धरातल पर पनप गयीं थीं । एक तो भारत में पराधीनताजन्य यातना का अनुभव और उससे मुक्ति पाने की ललक, दूसरी पाश्चात्य सभ्यता और विघटन की भावना से प्रभावित भारतीय जनचेतना को उबारने के लिए प्राचीन गौरव, प्राचीन संस्कृति, सभ्यता जन्य विविधता में एकता का भाव जगाना, स्वाभिमान की प्रतिष्ठा और भारतीय अस्मिता के जागरण और सुप्रतिष्ठित करने की बलवती इच्छाशक्ति तीसरी उपयोगी व वरेण्य आधुनिक जीवनमूल्यों के प्रकाश में देश व समाज का सर्वांगीण विकास करने की दृष्टि से राजनीतिक, सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था के पुनर्गठन की प्रवृत्ति ।

छायावादोत्तर काव्यधारा के अन्तर्गत (१) राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता, (२) छायावादी कविता, (३) वैयक्तिक गीतकाव्य (व्यतिवादी कविता), (४) प्रगतिवादी कविता, (५) प्रयोगवादी और (६) नई कविता नामक छः काव्य प्रवृत्तियों का समावेश होता है । इनमें से पहली, दूसरी और तीसरी प्रवृत्तिगत कविता परम्परागत या क्रमागत है परन्तु चौथीं पाँचवी और छट्ठी प्रवृत्तिगत कविता ने इस काल में ही उत्कर्ष प्राप्त किया । अतः काल विभाजन की दृष्टि से १९३८ से १९५३ का कालखण्ड़ प्रगति प्रयोगकाल तथा १९५३ से आगे का कालखण्ड़ 'नवलेखन काल' की अभिधा से वर्गीकृत किया गया है ।[१०]

उपर्युक्त छः काव्यधारा के अन्तर्गत शीर्षस्थ कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण को निम्न रूप से देखने योग्य हैं ।

३.१०.१ रामधारीसिंह 'दिनकर' :

आज का कवि नारी की आत्मा में पैठकर उसके वास्तविक स्वरूप का विश्लेषण और विवेचन करता है । 'उवर्शी' की नारी आत्मा में प्रवेश कर दिनकर जी ने नारी रूप की दृष्टि से चार प्रकार से चित्रण किया है (१) नारी का उच्छृंखल रूप (२) नारी का प्रेम का रूप (३) नारी का पत्नी रूप और (४) नारी का मातारूप

अप्सराओं के माध्यम से कवि ने नारी के उस रूप का चित्रण किया है जो शारीरिक सौन्दर्य को ही मान्यता देता है । अपने इस रूप में नारी स्वच्छन्द, निरंकुश, भोगप्रिय, विलासी और इन्द्रिय परायण रूप में अंकित है । उसका प्रतिनिधित्व करती है रम्भा, मैनका तथा अन्य अप्सराएँ । रम्भा कहती है कि –

सहजन्ये ! हम परियों को इतना भी रोना क्या,
किसी एक नर के निमित्त इतना धीरज खोना क्या ?
प्रेम मानवी की निधि है, अपनी तो वह क्रीड़ा है,
प्रेम हमारा स्वाद, मानवी की आकुल पीड़ा है ।

प्रेम से अनभिज्ञ अप्सराओं का काम पुरुष को पीड़ा देना है । इनमें समर्पण भावना नहीं होती, इनका मन किसी एक सीमा में नहीं बँधता । मातृपद से उनको घृणा है । वे केवल देहसौन्दर्य के लिए चिन्तित है । यौवन को अक्षय–अमर बनाये रखना चाहती है, जो अत्याधुनिक युगीन पाश्चात्य प्रभावी रूपसियों की मानसिकता का प्रतिनिधित्व करती है ।

जब नारी किसी एक व्यक्ति के प्रति अपना सर्वस्व समर्पण करके उसके मिलन से सुख और वियोग से दुःख का अनुभव करती है, तो नारी का यह रूप प्रेमिका का होता है । उर्वशी इसी रूप का प्रतीक है । प्रेयसी के संयमित रूप का प्रतिनिधित्व करती वह एक आदर्श है । यही कारण है कि पुरुरवा से सदा एकरस प्रेम करती रहती है, उसके वियोग में कल्पद्रुम के नीचे बैठ तड़पती रहती है । वह पुरुरवा में इतनी तन्मय हो जाती है कि, उसे समयचक्र तक का ध्यान नहीं रहता । वह अपने प्रेमी के समक्ष अपना सर्वस्व समर्पित करके अधरों की सुधा का उसे प्रलोभन देती है ।

रसमयी मेघ माला बनकर मैं तुझे घेर छा जाऊँगी ।
फूलों की छाँह तले अपने अधरों की सुधा पिलाऊँगी ।।

जब नारी अपना सर्वस्व किसी एक व्यक्ति के प्रति समर्पण करके आजीवन उसी के साथ बंध जाती है तो उसका वह रूप पत्नी का होता हेा पत्नी के लिए उसका पति ही सर्वाधार है । 'उर्वशी' काव्य में सुकन्या पत्नी रूप का प्रतिनिधित्व करती है । औशीनरी पुरुरवा की पत्नी है, जिसके द्वारा आदर्श पत्नी का दृष्टिकोण प्रस्थापित किया गया है । साथ–साथ सुकन्या का माता रूप भारतीय परम्परा के अनुसार व अनुकूल मर्यादायुक्त, गौरवपूर्ण और आदर्शमयी है ।

नारी का मातारूप निःसंदेह नारी के सभी रूपों में श्रेष्ठ है । जिसकी श्रेष्ठता अप्सराएँ भी स्वीकारती है । नारी का मातारूप उर्वशी, सुकन्या और औशीनरी तीनों नारी चरित्रों में मुखर मिलता हैं । उर्वशी का गर्भवती अवस्था में पुत्र सम्बन्धी चिन्तन, पुत्र हेतु प्रेमी पुरुरवा को छोड़ना, सुकन्या का आयु को पालना और औशीनरी का आयु को पुत्रवत् स्वीकार करना जैसे कार्य इन नारियों के मातारूप के सूचक है ।

३.१०.२ बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' :

नवीन जी ने 'उर्मिला' काव्य में उर्मिला के कुमारिका और विवाहिता दोनों ही रूपों का चित्रण किया हैं । विवाहिता रूप में भी संयोग व वियोग दोनों रूपों का वर्णन किया है । कुल मिलाकर नवीन जी के दृष्टिकोण से उर्मिला साहस, तेज, प्रेम, नीड़रता, स्पष्टवादिता और कर्तव्य परायणता की एक ज्वलंत प्रतिमा के रूप में आई हैं । जब कि सीता में आदर्श अग्रजा, भाभी, वधू और कर्तव्य–प्रेरणा के भाव बाल्यकाल से अंत तक रहे है । कैकेयी के प्रति बिलकुल ही नये दृष्टिकोण में देखा गया है । उसके चरित्र की परंपरागत कुटिलता का एक कण भी दृष्टिगत नहीं होता । सुमित्रा परम्परागत ढंग से अपना कर्तव्य बजाती है ।

कौशल्या, माण्ड़वी, श्रुतकीर्ति आदि की इस ग्रन्थ में चर्चा भर की गयी हैं ।

३.१०.३ डॉ. रामकुमार वर्मा :

'उत्तरायण' में सीता के प्रति अलग नज़रिया प्रस्तुत किया गया है । तुलसीदास के तर्कों से सीता का चरित्र लांछन रहित होकर पवित्र उज्जवलता की ऊँचाइयों पर पहुँच गया है । कथा में आदि कवि महर्षि वाल्मीकि के प्रवेश से जानकी का निष्कलुष, पुनीत चरित्र और भी गरिमामय महिमा से मण्ड़ित हो गया है । अस्तु, वर्मा जी के उत्तरायण की सीता सौन्दर्यमयी, प्रेममयी, निर्भीक, तेजस्विनी और पातिव्रत्य के आतप से युक्त होने के साथ–साथ सतीत्व की जीती–जागती पावन प्रोज्वल्ल प्रतिमा है ।

३.१०.४ केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' :

'कैकेयी' खण्ड़काव्य की कैकेयी के प्रति मिश्र जी का नवीन दृष्टिकोण रहा है । कैकेयी को मन्थरा नहीं भड़काती बल्कि कैकेयी स्वयं राम को

सिंहासन के बंधन से मुक्त कर अनार्यों के आक्रमण से राष्ट्ररक्षा हेतु वन में भेजती हैं । कैकेयी कर्तव्य की पूर्ति, राष्ट्रभक्त, मानवता की पुजारिन, और आदर्श वीरांगना है जो ममत्व और सौभाग्य का विसर्जन करके भी क्षात्रधर्म निभाती है । आर्य सभ्यता पर अनार्य सभ्यता का हमला रोकने वाली सुधारवादी नारी के रूप में कवि का दृष्टिकोण रहा हैं ।[१०]

३.११ निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि मध्यकाल में हुई नारी की अवनति को देख आधुनिक युग ने नारी के बारे में कुछ सोचना चाहिए ऐसा सोचा । और जो सोच प्रस्तुत की गयी उसके पिछे नारी शिक्षा का प्रभाव देखा जा सकता है । नारी शिक्षा का प्रभाव शहरों में था किन्तु गाँव की नारी वहीं की वहीं थीं । आधुनिक युग में भी राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक परिस्थितियों का प्रभाव नारी दृष्टि पर विशेष रूप से पड़ा । साहित्यिक स्तर पर भारतेन्दु युग के प्रतापनारायण मिश्र ने बाल–विवाह निषेध व श्रीधर पाठक ने दुःखी बाल–विधवाओं के प्रति सहानुभूति के साथ शिक्षा–प्रदान का अनुरोध किया है । बाबू भारतेन्दु के समय बनी ज़मीन पर पाण्डित्यपूर्ण भाषा में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने नारी के प्रति दयाभाव रखा साथ ही वह बंदिनी भी बना दी गई । द्विवेदीयुगीन रामचरित उपाध्याय, हरिऔध, गुप्त जी आदि ने सीता और उर्मिला जैसे प्राचीन–पौराणिक पात्रों द्वारा आदर्श, पतिपरायणता जैसे मूल्यों का स्थापन कर नारी जागरण के प्रहरी का काम किया है । जब कि छायावादी काव्य में नारी को माँ, सहचरी, सखी आदि रूपों में देखा गया अतः नारी अपने ही गुणों से गौरवान्वित हुई । प्रकृति के साथ नारी की तुलना कर महादेवी, प्रसाद, पन्त, निराला आदि ने नारी के अनेक रूप चित्रित किये । किन्तु फिर भी नारी कोरी कल्पना ही

रही । जिसका वास्तविक धरातल पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा जिसे ठोक–बजाकर दिखाया जाये वैसे ही उत्तर छायावाद में दिनकर, नवीन, रामकुमार वर्मा, प्रभात आदि ने भी नारी के व्यक्तित्व को पौराणिक व रामायण के ही पात्रों द्वारा ही तत्कालीन परिवेश से जोड़ने का प्रयत्न किया । जिस से एक बात स्पष्ट होती है कि नारी को हज़ारों वर्षों से अभिव्यक्त नहीं होने दिया । उसे मौका देना चाहिए । तत्कालीन समाज ने उसके प्रति मानसिक दमन के बलात्कार का अपराध किया है । इस बात की स्वीकृति आधुनिक युग में स्पष्ट रूप से होती है । यही कारण है कि अंग्रेज जैसे अत्याचारियों को भी नारी उन्नति हेतु नारीशिक्षा प्रदान के बारे में सोचना पड़ा । हमारी कितनी बौनी मानसिकता होगी जिसका प्रमाण हमारा दुश्मन भी नारी की शिक्षा को लेकर चिन्तित हो उठा ।

संदर्भ सूची :

१	नामवरसिंह, छायावाद (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००) पृ.४७,४८,४९
२	डॉ. रमेशचन्द्र, साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६), पृ.१७९, १८४, १९३
३	डॉ. पूर्णिमा केडिया, हिन्दी राम काव्य में नारी (इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, २००२) पृ. १७५
४	हरिऔध, प्रियप्रवास (वाराणसी : हिन्दी साहित्य कुटीर, १९९३), पृ. ८३, ८४
५	डॉ. रमेशचन्द्र, साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६) पृ.२२२, २२३
६	प्रा. हरजीभाई वाघेला, छायावाद की काव्य प्रवृत्तियाँ एवम् महादेवी वर्मा (दिल्ली : भावना प्रकाशन, १९९५) पृ. २५ से ३१ और ४५,६७,६८,९० तथा ९१ से ९३
७	मधुबाला सिंह, सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य में प्रेम का अनुशीलन (नई दिल्ली : क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, २०००), पृ. २९, ३२, ३५, ३६, ३७, ४५
८	डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त, परिमल एक विवेचन (नई दिल्ली, अशोक प्रकाशन, १९९प) पृ. १३
९	डॉ. कुमार विमल, साहित्यिक चिन्तन और मूल्यांकन (इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, १९९७) पृ. ३७
१०	डॉ. रमेशचन्द्र, साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६), पृ. २६८, २६९
११	डॉ. पूर्णिमा केडिया, हिन्दी राम काव्य में नारी (इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, २००२), पृ. १८४ से ८७ और १९२, २०१

चतुर्थ अध्याय

प्रगति व प्रयोगवादी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

४.० प्रस्तावना
४.१ प्रगतिवाद
४.२ प्रगतिवाद का शाब्दिक अर्थघटन
४.३ प्रगतिवाद और नारी विषयक दृष्टिकोण
४.३.१ बाबा नागार्जुन
४.३.२ शिवमंगलसिंह 'सुमन'
४.३.३ पन्त जी
४.३.४ नरेन्द्र शर्मा 'अँचल'
४.४ प्रयोगवाद
४.५ प्रयोग शब्द के विविध अर्थ और साहित्य में प्रयोग की संभावनाएँ
४.६ प्रयोगवाद और नारी विषयक दृष्टिकोण
४.६.१ केदारनाथ सिंह
४.६.२ कीर्ति चौधरी
४.६.३ प्रयागनारायण त्रिपाठी
४.६.४ मदन वात्स्यायन
४.७ निष्कर्ष

चतुर्थ अध्याय
प्रगति व प्रयोगवादी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

४.० प्रास्ताविक

छायावादोत्तर कालावधि में वैश्विकस्तर व खास कर भारतीय सामाजिक, मानसिक, धार्मिक व स्वातंत्र्य की ज़द्दोज़हद के कारण अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिन दो धाराओं का क्रमशः संक्रमणता के साथ अवतरण हुआ है वे हैं – प्रगति व प्रयोगवादी धाराएँ । जो अपने साथ समानता, बौद्धिकता, नास्तिकता, जागृति, रूढ़ियों का विरोध, यथार्थवादिता, अहम्, असंतोष, निराशा, अनास्था, घुटन, पलायनवृत्ति, काम, कुण्ठा, भदेस आदि को लेकर आई थीं ।

इन सारी परिस्थितियों में नारी सिर्फ सृष्टि का एक अंग मात्र थीं । नारी न तो रूप–वैभव व कल्पना बनी, ना ही पूजनीय । उसके स्थूल शरीर को माँसल रूप को ही महत्त्व दिया गया । जिस से नारी न तो द्विवेदीयुगीन महिमा–मण्ड़ित देवी रही, ना ही छायावादी कवि की कोमल भावनाओं से युक्त स्वर्गीय प्रेयसी । नारी केवल स्त्री–पुरुष के गोपनीय व्यवहारों के नग्न रूप का वर्णन बनकर रह गई । केवल भोग्या बन गई ।

प्रगति व प्रयोगवादी कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण को क्रमशः निम्न रूप से अनुसंधक द्वारा देखने–परखने का विनम्र प्रयास किया गया है ।

४.१ प्रगतिवाद

God is the heaven, All's well with the world अर्थात् ईश्वर अपने स्वर्ग में है तथा संसार में सब कुशल है की विचारधारा ने साहित्य में इस लोक (प्रगतिवाद) की प्रतिष्ठा की ।[१] 'प्रगतिवाद छायावाद की गोद में जन्मा है, इस मान्यता के पक्ष में कई विद्वान और कवि हैं । दिनकर जी ने तो यहाँ तक लिख दिया है, कि ''रोमैंटिक आन्दोलन संसार के सभी आंदोलनों का पिता है और इसकी मूलभूत भावनाओं को सबसे पहले अपनाकर कवि ने अपने को क्रान्तिकारी सिद्ध किया था और यह दिखलाया था कि समय के प्रवाह को उलट देने में साहित्य कहाँ तक योग दे सकता है ।'' हिन्दी में प्रगति की परम्परा की शुरुआत भारतेन्दु काल से ही हो जाती है, जब वे 'भारत दुर्दशा' नाटक और 'एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न' जैसे निबन्ध की रचना करते हैं । इस संदर्भ का एक रूप द्विवेदीकाल के कवियों में भी मिलता है । यही क्रम छायावाद तक आता हैा आगे छायावादी काव्य की कुछ अतिशयताओं के फलस्वरूप १९३६ में प्रगतिवाद का जन्म हुआ और १९४५ तक पनप सका ।[२] जिससे यथार्थता और स्वाभाविकता को आश्रय मिला । रचनातंत्र परिवर्तित हुआ । साहित्य के मूल्य बदले । समाज को तिलमिला देने वाले व्यंग्य अपेक्षित हुए । व्यक्तिवाद और समाजवाद के वैचारिक संघर्ष में 'समाज का बल बढ़ा और' नरश्रेष्ठ की अपेक्षा 'नर जाति' को प्रतिष्ठा मिली । इस नर जाति में भी शोषित, उत्पीड़ित, दीन–हीन और उपेक्षित नर–समूह पर दृष्टि केन्द्रित होने लगी । साहित्यकार अन्तर से बाह्य की ओर उन्मुख हुआ और जीवन का ठोस (वास्तविक) सत्य देखने के लिए ललक उठा ।[३]

४.२ प्रगतिवाद का शाब्दिक अर्थघटन

'प्रगति' शब्द में 'गति' मूल शब्द है, जिस में 'प्र' उपसर्ग लगा हुआ है । जिसका अर्थ होता है, 'एक स्थान से दूसरे स्थान को गमन करना' या 'क्रियाशीलता' । प्रगति का दूसरा शाब्दिक अर्थ है 'उन्नति करना' । लेकिन जब हम साहित्य के सम्बन्ध में बात करते है, तो उसका अर्थ उसके बिलकुल भिन्न रूप में निष्पन्न होता है । साहित्य में इसका अर्थ मार्क्सवादी सिद्धान्त की ओर संकेत करता है । वस्तुतः प्रगतिशील साहित्य वह है, जिसकी रचना मार्क्सवाद अथवा साम्यवादी विचारधारा को दृष्टि में रखकर की गई हो ।[४]

४.३ प्रगतिवाद और नारी विषयक दृष्टिकोण

इस युग में भी नारी की स्थिति दयनीय थीं । समाज और परिवार में उसका कोई स्थान नहीं था । वह केवल पुरुषों के भोग का उपकरण मात्र थीं । नारी की ऐसी दयनीय दशा देखकर साम्यवादी दर्शन और उससे प्रभावित रचनाकारों ने नारी शोषण का विरोध किया तथा नारीस्वातंत्र्य की आवाज़ बुलंद की ।[५] प्रगतिवादी कवियों ने उसकी मुक्ति की कामना को व्यक्त किया है । इन कवियों के लिए मजदूरों और किसानों की तरह नारियाँ भी शोषित थीं । सदियों से समाजवाद की ज़ंजीरों में जकड़ी नारी अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुकी थीं । इस लिए नारी कविता नारी की पीड़ा का अंग बनकर प्रगतिवाद में प्रकट हुई ।

४.३.१ बाबा नागार्जुन

नारी सदियों से पुरुष समाज के सहारे गुलामी का जीवन व्यतीत करती रही है । उससे मार–पीट, घृणा कुछ भी किया जाये फिर भी वह पुरुष–च्युत नहीं होती । पुरुष समाज के मन में नारी के प्रति कोई विभाव नहीं है । उसने आज तक नारी पर लुट ही चलाई है । वह नारी को एक खज़ाना

समझकर लुटता रहा और नारी लुटती रही । नारी कटु–पाश में बँधती रही, कवि नागार्जुन ने नारी की इस दयनीयता का चित्रण इस प्रकार किया है, जैसे

''रही देखती वसुन्धरा यह
नारी को लूटता सोल्लास
और घृणा से नयन मुंद गये
प्रेम हीन था वह कटु–पाश''[६]

नारी की ऐसी दयनीयता को देखकर कवि को बहुत ही दुःख होता है । कवि चाहते है, कि नारी अपने इस गुलामी भरे वातावरण से बाहर निकल शोषण से मुक्त हो और उस में मान सम्मान की भावना जागृत हो ।

४.३.२ शिवमंगलसिंह 'सुमन' :

इस युग में नारी की जो दयनीय स्थिति है, और वह जिस तरह अपने गुलामी भरे जीवन को जी रही है, उसकी लाचारी का अंकन कवि सुमन जी ने अपनी कविता में चित्रित करते हुए लिखा है कि –

आज कहाँ नारी की लज्जा ?
धर्म कर्म का जाल
चौराहें पर माताएँ जनती है अपने लाल ।[७]

इस समाज की शोषित–पीड़ित दलित नारी को भी परिवार में कोई स्थान नहीं हैं । पति का संग निभाना ही अपना जीवन मान कर वह पति आज्ञा का पालन करती रही । पति के मरने पर उसका सर्वस्व लुट जाता है । विधवा के रूप में दमघोटू स्थिति में रहती है । परिवार और समाज से शोषित नारी अपने जीवन यापन के लिए मजदूरी करने जाती है । वह भी नहीं मिल पाती । अन्ततः वेश्यालय तक का सफर मज़बुरन तय करना पड़ता है । प्रगतिवादी कवि नारी की इस दयनीय दशा का चित्रण कर स्वयं स्वस्थ

नहीं रह पाता । यही कारण है कि **केदारनाथ अग्रवाल** ने नर–नारी के समान अधिकार तथा समान प्रतिष्ठा का समर्थन किया है ।

४.३.३ पन्त जी :

प्रगतिवादी कवियों ने नारी की अवनति के लिए बुर्जुआ समाज को ही दोषी माना है । पंत जी ने उसे इस रूप में वाणी दी है कि –

सुधा कामवश गत युग ने
पशुबल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश
नारी भी कर ली अधिकृत

इस लिए उनका कहना है कि,

मुक्त करो नारी को मानव ।
चिरबन्दिनी नारी को
युग–युग की बर्बर कारा से
जननी, सखि, प्यारी को ।[८]

'मजदूरनी के प्रति' कविता में कवि ने नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाया है । यहाँ नारी अपने सभी बन्धनों को त्यागकर नर के कार्य में हाथ बँटाने लगी है । इस अवस्था में वह अर्धनग्न भी दीख पड़ी तो किसी का मन कलुषित न हुआ । यहाँ निश्चित रूप से नारी ने अपने हृदय के समस्त द्वारों को खोल दिया । यथा –

''नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ
चिर जन्म सहृदय–सी, जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बटा रही तुम जग–जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे । न छूती तुमको काम–लाज ।''

पंत जी की नारी भावना मिट्टी की उदासीन प्रतिमा और ग्रामवासिनी के रूप में प्रकट हुई है । यही कारण है कि नारी का कविवर पंत ने पुनर्जागृत नारी प्रतिमा के रूप में चित्रण किया है ।

''यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर तो
वह नारी–उर के भीतर ।''

कवि जीवन की प्रगति के लिए नारी और पुरुष दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध की प्राचीन आदर्शात्मक अवधारणा को सहज ही स्वीकारते है और कहते है, कि

''निखिल जब नारी नर–संसार
पुलक से पुलक प्राण से प्राण ।''[९]

इस प्रकार पंत जी ने नारी को विभिन्न रूपों में देखा परखा और चित्रित किया ।

४.३.४ नरेन्द्र शर्मा 'अँचल' :

प्रगतिवादियों की सब से बड़ी प्रगतिवादिता नारी स्वातंत्र्य को लेकर है । नारी कहीं भी एक गिलास पानी पी लेने के सामान आसान मानी जानेवाली चीज़ समझ ने वालों के प्रति विद्रोहात्मक दृष्टि से देखते है । इन नारियों को काम–वासना के चंगुल में जकड़ ने वालों को 'अंचल' चेतावनी देते है, कि

''क्रांति का तूफान जब विश्व को हिलाएगा ।
ये बाजार की असंस्कृत निर्लज नारियाँ
जो कि न योनि मात्र रहकर बनेगी
प्रदीप्ति उगलेंगी ज्वालामुखी ।''

इस प्रकार अँचल जी नारी कल्याण के लिए क्रान्ति का आहवान होने की सूचना देते है ।[१०]

इस प्रकार नारीस्वातंत्र्य उचित माना जा सकता है । पर उसका स्वैराचार न तो उसे 'देवी' के पद पर स्थिर रख सकता है, और ना ही उससे समाज संस्था की नीव भी दृढ़ रह सकती है । यथार्थवाद या प्रगतिवाद या नारी–मुक्ति के नाम पर नारी के जम्पर और साड़ी उतरवा के उसके गुप्तांगो का चित्रण उचित नहीं है ।

४.४ प्रयोगवाद

कुछ समीक्षकों ने 'तार सप्तक' प्रकाशन १९४३ से लेकर ५०–५२ तक की कविता को प्रयोगवादी कहा है ।[११] प्राचीन रूढ़ियों और संस्कारो से जब मनुष्य उब जाता है तब वह नवीनता की और उन्मुख होता है । जीवन और जगत के सौन्दर्य के मान–दण्ड़ों के समान साहित्य सौदर्य की अभिव्यक्ति के मानदण्ड़ बदलते रहते है । डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में ''यों तो प्रत्येक युग ही की कविता प्रयोगवादी होती है, क्योंकि वह वस्तु और शैली दोनों में अपनी पूर्ववर्ती कविता से भिन्न प्रयोग करके ही अपने आविर्भाव की घोषणा करती है ।[१२]

प्रयोगवाद हिन्दी काव्य–साहित्य का कलावादी आन्दोलन है । जिस प्रकार प्रगतिवाद के अन्तर्गत वर्ण्य–विषय की उत्कृष्टता की ओर अधिक ध्यान दिया गया वैसे ही प्रयोगवाद शिल्प के अनेक प्रभावी ढर्रे खोजता रहा । जैसे प्रगतिवाद की मूल स्थापना में मार्क्सवादी दर्शन के सिद्धान्त सहायक रहे हैं । वैसे ही प्रयोगवाद को पश्चिम के कला–आन्दोलन से प्रेरणा मिली है । इस प्रेरणा के माध्यम से कविता क्षेत्र की एकरूपता खंड़ित हुई है । कला सम्बन्धि उपलब्धि के लिए यह आवश्यक भी था । किसी नयी काव्य–प्रवृत्ति के आ जाने पर भी पिछली रचना–शैली कुछ दिनों तक वैसे ही चलती रहती है । आन्दोलन और नयी खोज के आधार पर हमें विकास का प्रशस्त मार्ग मिलता

है । कवियों के लिए कल्पना का विस्तारलोक नयी–नयी सृजन भूमिकाएँ प्रदान करता हैं । विषयसम्बन्धि जो परिसिमाएँ प्रगतिवाद के अन्तर्गत पाई जाती थीं, प्रयोगाद में वह टूटी और कवि मनचाही दिशाओं की ओर बढ़ गए । अज्ञेय का काव्य व्यक्तित्व एक सफल अगुआ के रूप में प्रयोगवादी आन्दोलन का नायक बना था । कहने का तात्पर्य यह नहीं, कि इस नायकत्व के लिए कोई उत्सव या समारोह किया गया था । अज्ञेय में संकलन, संपादन, लेखन की कुशलता थीं । उसी के आधार पर वह आगे बढ़ते चले गए । आज भी उर्दू परम्परा जैसी गुरुआई अज्ञेय और शिष्य (!) कवियों में पायी जाती हैं । आदर और श्रद्धा का रूप परिस्थितियों के कारण बदला अवश्य है, पर उस में कमी ही आई । इतिहास को ध्यान में रखते हुए देखना होगा, कि प्रगतिवाद के साथ प्रकट अथवा प्रच्छन्न रूप में गुरुता का ऐसा दायित्व किसी ने नहीं सम्हाला था । वहाँ सभी जनरल थे, सिपाहियों की कतार में या तो सब खड़े थे, या फिर कोई हीं था । मार्क्सवाद के सुझाए हुए मार्ग पर ही चलने को वे संकल्पित थे ।[१३]

४.५ प्रयोग शब्द के विविध अर्थ और साहित्य में प्रयोग की संभावनाएँ

'प्रयोग' शब्द की व्युत्पति 'योग' शब्द में 'प्र' उपसर्ग पूर्वक से हुई हैं । 'योग' शब्द 'युज्' धातु में 'धञ्' उणादि तद्धित प्रत्यय लगाने से 'उ' 'ओ' में तथा 'ज' 'ग' में परिवर्तित होने के कारण व्युत्पन्न हुआ हैा संस्कृत में 'प्रयोग' शब्द का अर्थ अनुष्ठान, योजना, प्रयोजन, हेतु, कारण, तांत्रिक उपचार, विधि–नियम, कार्य या क्रिया के लिए किया जाता था । 'प्रयोग' शब्द अंग्रेजी के 'एक्सपैरिमेन्ट' शब्द का पर्याय है । जो लेटिन धातु ***Experir*** से बना है, जिसका अर्थ 'टु ट्रायथरोली' है ।

प्रयोग में चमत्कार के लिए कोई स्थान नहीं है । क्योंकि वह वस्तु को यथासंभव नग्न सत्य के रूप में प्रतिष्ठित करता है । उस पर रंगीन आवरण नहीं डालता । वह लोगों को चमत्कृत करने में सहायता प्रदान करता है ।[१४]

४.६ प्रयोगवाद और नारी विषयक दृष्टिकोण

आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रयोग के नामसे तारसप्तक चर्चेआम था । ऐसे कुल मिलाकर तीन सप्तकों को महत्त्वपूर्ण माना जाता हैं । पहला तारसप्तक १९४३ में, दूसरा तारसप्तक १९५६ में और तीसरा तारसप्तक १९७९ में प्रकाशित हुआ ।[१५]

प्रथम तारसप्तक के कवियों में गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमर माथुर, रामविलास शर्मा और अज्ञेय थे । तथा दूसरे तारसप्तक में भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती । और तीसरे तारसप्तक में प्रयागनारयण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का समावेश किया गया था ।[१६]

इन कवियों ने धार्मिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों के साथ–साथ सामाजिक क्षेत्र में खासकर के नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण भी तत्कालीन परिस्थितियों के मद्दे नज़र प्रस्तुत किया है । जिसे तीसरे सप्तक के माध्यम से निम्न रूप से प्रस्तुत करने का अनुसंधक के द्वारा यथासंभव प्रयत्न किया गया है ।

४.६.१ केदारनाथ सिंह :

नारी का व्यक्तित्व दूधिए धूए जैसा होता है । बड़ा ही गाढ़ा । जिसे तत्काल न समझ पाने वाले प्रियतम कवि का मन ड़ण्ठल झरे फूल–सा बनकर रह जाता है । लम्बे अरसे के बाद कवि उस स्थान विशेष पर जाते है, जहाँ

प्रियालाप हुआ था । किन्तु वहाँ कुछ न था फिर भी सबकुछ था, क्योंकि वहाँ यादें जड़ी हुई थीं ।

लम्बे दिन के बाद शाम को भटका–भटका
कभी पहुँच जब जाता हूँ उस जगह, जहाँ पर
तुम ने बात कही थीं वह, चुप बह जाना है
मन का सारा दर्द स्वरों में । जब था खटका
तब था, अब तो लिखी हुई हो तुम्हीं वहाँ पर ।

(सवरमयी – १३६)

रात और याद का बड़ा ही गहरा सम्बन्ध है । ऐसे में जब दिल घड़कता है, तो आँखों की नींद चोर हो जाती है । ऐसा तब होता है, जब किसी को किसी की याद सताती है । नारी के प्रति अपनी प्रणयदृष्टि प्रस्तुत करते कवि कहते है कि –

रात पिया, पिछवारे पहरु ठनका किया ।
कँप–कँप कर जला दिया,
बुझ–बुझ कर यह जिया,
मेरा अंगअंग जैसे,
पछुए ने छू दिया,

(रात–१४२)

ऋतुओं का प्रभाव व्यक्ति के मन पर रहता है । शरद का प्रातः काल कवि के मन–हृदय को प्रसन्न कर देता है । जिस से कविहृदय से अपनी प्रिया के लिए शुभाशिषें निकलती है, कवि कहते है कि

चूल्हे पर उफने, गरमाये,
संग–संग बैठा आँच लगाये,

साथ–साथ रोटियाँ सिंकाये,
शरद तुम्हारे तन पर छाये,
मन पर छाये,

(शरत प्रात – १४३)

४.६.२ कीर्ति चौधरी :

कवयित्री स्वयं नारी हैं और अपने आप को असहाय पाती है । नारी वैसे भी अबला मानी जाती है । लता को यदि वृक्ष का सहारा न मिले तो वह जीवन को कैसे आगे बढ़ा पायेगी । किन्तु धरती असीम है, अगर प्रयत्न करेगी तो पेड़ पर चड़ेगी, फूलेगी उसकी शिरा–शिरा महेक उठेगी । क्योंकि कोशिश करनेवालों की कभी हार नहीं होती । यही कारण है, कि कवयित्री को कहना पड़ा कि –

.... कई दिन बीते, सुधि भूली;
पर अचानक ही एक साँझ देखा –
अंग–अंग मुकुलित
शत कोमल करों को बढ़ा
लता ने वृक्ष की दूरी सब नाप ली

(लता – २ – ५५)

नारी बहुरूपिणी है । नारी जन्मजात अभिनेत्री है । हर संवेदनशील नारी की भाँति कवयित्री को भी एक ही अभाव महसूस होता है कि हर नारी की तरह विविध रूप धरकर अपने प्रिय के निकट प्रस्तुत हुई, फिर भी कहीं कुछ कह, कर, लेने के बाद भी पीड़ा महसूस करती है । यही की कहीं कुछ रह जाता है, छूट जाता है । भावों की यह सरिता अपने कूल को लाँध उमड़–उमड़ कर सागर में समा जाना चाहती है, यथा

शब्द–कूल से परे सदा ही बही ।
सागर मेरे ! फिर भी,
इस की सीमा–परिणति
सदा तुम्ही ने भुजा भर गही–गही ।

(केवल एक बात – ५६)

नारी अपने प्रिय के विश्वास में, भ्रम में, प्रेम की आस में, आगे बढ़ती रही । किन्तु दुःसह प्रतीक्षा के उपरांत भी वह नहीं आया । उसे आशा थी, कि वह उसे सीमा रेखा से बिलगाएगा । अपने संग ले जायेगा । किन्तु अफसोस ऐसा नहीं हुआ । अंततोगत्वा उसका मन चाहता है, कि स्वयं सीमा रेखाओं को लाँघ जाए; चाहे सीमा–रेखा के उस पार कोई छद्मधारी अविचारी या कलंकित ही क्यों न ले जाये । वह अपने जीवनमंदिर के उजाले का प्रण करती है । इससे स्पष्ट होता है, कि नारी अपने पाँव पर खड़ी होने का समाज का सामना करने का, एक प्रयत्न करने को उत्सुक है । यथा

कौन वहाँ आतुर है ?
किसे यहाँ देनी है
ऊँचा ललाट रखने को वह अग्नि की परीक्षा ?

(सीमा–रेखा ६०)

४.६.३ प्रयागनारायण त्रिपाठी

ज़िन्दगी का बेलौस मुसाफिर कवि अपने हाथ में एक नदारद हाथ के होने का एहसास करते है । कवि नारी के प्रति अपने नज़रिए को प्रस्तुत करते कहते है, कि वह हाथ जिस में न आग की चिनगारी है और बर्फ–सी ठण्ड़ । जो न तो मुझे बन्धन में बाँधता है और ना ही रेशमी एहसास का अनुभव कराता है । वे इन सारी चीज़ों से मुक्त होकर जीवन में आनेवाली

कठिनतम परिस्थितियों का सामना करते आगे बढ़ना चाहते है इसी लिए कवि कहते है, कि –

''मेरी साँसों में ये किस की साँसें हैं
जो न फुफकार है न झंकार ?
इन से कह दो कि
मैं स्मशानयात्रा पर नहीं निकला हूँ'' (यह हाथ – २४)

कवि की तरह प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा क्षण आता है, जो काफी महत्त्वपूर्ण होता है । कवि भी क्षणवादी है । आनेवाले क्षण का इन्तज़ार कर मिली हुई क्षण को गवाना नहीं चाहते । मिले हुए क्षण में ही जीवन संगीत को सार्थक कर स्वर्गीय अनुभव का एहसास करना चाहते हैं । अपनी प्रिया के दो क्षण के सान्निध्य को दीर्घकालीन याद बनाना चाहते है । साथ–साथ बीते दो क्षण चिर–कृतज्ञ क्षण हैं । कवि जिसके प्रति समर्पित होना चाहते है । वे चाहते है, कि प्राप्त क्षण को जीवन भर की अनमोल याद बना लिया जाये । इन बातों से कवि की नारी के प्रति कोमल भावदृष्टि स्पष्ट होती है । – यथा –

फिर सहसा कस जायें हाथ कुछ और
डूब से उभर साथ कुछ और पाये
हम–तुम अपने को
नरम दूब पर
स्वच्छ धूप में दो क्षण और नहायें
बाहें किसी भरम से पुलकें
ओठ गरम हो जायें
(अन्तिम दो क्षण – २६)

कवि अपनी प्रिया के साथ हुए मिलन को अन्तिम मिलन मानते हैं । क्योंकि फिर मिलन हो, न हो । कवि मानते हैं, कि अन्तिम मिलन यादगार बन जाये ताकि, तुमसे दूर रहकर भी तुम्हारी याद में, तुम्हारे सरल विश्वास में, रस में, प्राण में रह सकूँ । जिस से दूरी की व्यथा का दाह, वर्जना, कुण्ठा, आसिक्त को भस्म किया जा सके । और अन्तिम मिलन यादगार बन जाये, जैसे, कि –

जो तुम्हारे साथ है
पर सच नहीं है;
चाहता हूँ मैं इसी से
यही चुम्बन
हो स्मरण अन्तिम, चिरन्तन ।

(चाहता हूँ – ३२)

जीवन में कई सारी लकीरें रेलवे की पटरियों की तरह समानान्तर चलती हैं । जो साथ–साथ चलती तो है किन्तु गलबाँही नहीं कर सकती । बस, साथ–साथ चलते हुए भी अलग–अलग रहती है । जिसका मिलन असंभव है । ऐसी सामीप्य सभर दूरी प्रत्येक संवेदनशील व्यक्ति के हृदय की भाँति कविहृदय को भी छू जाती है । कवि अपने चश्मेनूर का संस्पर्श नहीं कर पाते । परिचय, अपरिचय की दृष्टि, कायरता, संशय और भय पुरुष मन को इस क्षुद्र जग में परास्त कर देते हैं । यह क्षुद्र जगत सिर्फ ग्रंथि बन्धन को ही सही मानता है । यही कारण है कि जीवन के सही राहियों की राहलकीरें समानान्तर चलती रहती है । जिसका मिलन कभी नहीं हो पाता है । इस लिए कवि कहते है, कि –

तो यही हो,
ओ सती !
तो नहीं छू पाया तुम को,
ओ अछूती पुण्य !
मेरे स्पर्श का अंगार;

(समानान्तर लकीरें – ३६)

कवि ने अपनी प्रिया से कभी भी किसी भी प्रकार की याचना नहीं की । जो समर्पण के रूप में मिला उसे ही उज्जवल सुन्दर और अपने आप से भी प्रियतर मानकर अपनाया । सारी उपलब्धियाँ प्रिया को समर्पित करना चाहते हैा जिस में उसे किसी भी प्रकार की झिझक नहीं है । कवि कहते है, कि –

इसी लिए तो –
भोग्य नहीं माना था उस को : केवल थाती
इसी लिए तो –
अन्तिम इस क्षण
तुम को यह उपलब्धि सौंपते
मन में कोई झिझक नहीं है (आशिष–३७)

४.६.४ मदन वात्स्यायन :

कवि की नारी के प्रति की दृष्टि बाह्य सौन्दर्य रत रही है । वे अपनी प्रिया की माँग का वर्णन करते कहते है, कि उषा की लालिमा–सी तुम्हारे दोनों ओर के बालों के बीच में माँग है । आगे सुशिप्रा के पात्र ज़रिये नारी के आँगिक सौन्दर्य में नाक को महत्त्वपूर्ण बताते है । इस से स्पष्ट होता है, कि कवि का दृष्टिकोण सौन्दर्य सभर रहा है ।

रूपवानों में नारी हूँ,
नारी के अंगों में नाक
नाकों में सुशिप्रा की नासिका ।

(सुशिप्रा की वर्षगाँठ पर –६६)

अपनी प्रियतमा की अनुपस्थिति में तकियों के बीच से पाया गया लम्बा बाल कवि को विह्वल बना देता है । प्रिया का वियोग डँस रहा है । प्रिया की अनुपस्थिति में जीवन सूना–सूना लगता है । जैसे –

वही शिद्त, वही दुपहर, वही कछमछ, वही शोले–
और तब वही ठण्ड़ी बयार ।
प्रियतमे, बस तू नहीं है –
और वह बात नहीं है ।

(ऋतु संहार– ६७)

कवि की प्रिया घर पर नहीं है । उसे आने में अभी पैंतीस दिन लग सकते है, किन्तु विरह का हाल यह है, कि कवि को घर आँगन की एक–एक चीज़–वस्तु प्रिया की याद दिला जाती हैं । मूली तीखी न होने पर भी आँखें भर आती है । तबियत उदास रहती है । रोटी खायी नहीं जाती, दीवानों का हाल है । यही कारण है कि –

रोज शाम को जो तू धूपबत्तियाँ जलाया करती थी
उन की राख धीरे–धीरे उड़ गयी हैं,
वहाँ खिड़की के सिल के चूने पर मटमैले धब्बे से,
पर आधी रात को मेरे इस कमरे में आज भी सुबास है ।

(विरह वर्णन – ६८)

४.७ निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि प्रगतिवादी समयावधि दौरान सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि स्तर पर नारी की स्थिति उतनी समुन्नत न थी, किन्तु साहित्यिक स्तर पर उस पर हो रहे अत्याचार, शोषण आदि पर प्रकाश अवश्य ड़ाला गया था । नारी की इस स्थिति के पिछे बुर्जुआ समाज को ही दोषित ठहराया गया था जो उचित भी था । नारी के प्रति अपना नवीन नज़रिया व शाब्दिक पुष्पांजलि देने का श्रेय प्रगतिवादियों में विशेष रूप से नागार्जुन, सुमन जी, पन्त, अंचल आदि को जाता है । जिन्हों ने नारीशोषक तमाम तत्त्वों को नीडर रूप से धमकी दी है । तो प्रयोगवाद तक आते–आते नारी के प्रति कवियों की रेशमी भावनाएँ झंकृत होने लगी और मर–मिटने तथा कुछ भी कर–गुज़रने की तमन्नाएँ आबाद हुई । कुल मिलाकर प्रगति व प्रयोगवादी कवियों की दृष्टि में नारी न उच्चासन आरूढ देवी थी ना ही लौंडी (दासी) अर्थात् नारी का स्थान मध्यमा था । मध्यमा–त्रिशंकु का कोई स्थान नहीं होता उसे दोनों और से लात खानी पड़ती है । अच्छा कार्य किया हो या बूरा, दोष की टोकरी उसी पर ऊँडेली जाती है । यह इस समयावधि की एक प्रकार से मानसिकता रही है ।

संदर्भ सूची :

१	डॉ. विमला सिंह, नयी कविता और नरेश महेता (इलाहाबाद : शिल्पी प्रकाशन, १९९४), पृ. १
२	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १९७९), पृ. ६१
३	डॉ. रमेशचंद्र शर्मा, विद्या साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६), पृ. २७०
४	डॉ. आलोक कुमार रस्तोगी, साहित्यिक निबन्ध (दिल्ली : प्रेम प्रकाशन मंदिर, १९८७, पृ. ९०)
५	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १९७९), पृ. २७१
६	रांगेय राघव, रूप छाया (कानपुर : अभिनव प्रकाशन, १९७५) पृ. ५५
७	डॉ. शिवमंगलसिंह सुमन, कलकत्ते का अकाल (दिल्ली : अमित प्रकाशन, १९८४), पृ. ७६
८	डॉ. रमेशचंद्र शर्मा, विद्या साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६), पृ. २७७
९	मधुबाला सिन्हा, सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में प्रेम का अनुशीलन (नई दिल्ली : क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, २०००), पृ. ३९, ४३, ४४, ४५,
१०	डॉ. रमेशचंद्र शर्मा, विद्या साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९६), पृ. २७७/७८
११	डॉ. विमला सिंह, नयी कविता और नरेश महेता (इलाहाबाद : शिल्पी प्रकाशन, १९९४), पृ. १

१२	डॉ. रमेशचंद्र शर्मा, विद्या साहित्यिक निबन्ध (कानपुर : विद्या प्रकाशन, १९९४), पृ. २८४
१३	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १९७९), पृ. १०२
१४	डॉ. श्रीराम नागर, हिन्दी की प्रयोगशील कविता और उसके प्रेरणास्रोत (आगरा : दी एज्युकेशनल प्रेस) पृ. १०२
१५	डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र, काव्यास्वाद के नव्य निकष (दिल्ली : नरेश प्रकाशन, २००१), पृ. ९९
१६	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १९७९), पृ. १०८, ११०, ११६
१७	सं. अज्ञेय, तीसरा सप्तक (नयी दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ, प्रकाशन, १९८४) पृ. २४, २९ ३२, ३६, ३७, ५५, ५९, ६०, ९६, ९७, ९८, ९९

पंचम अध्याय

नयी कविता, नवगीत और साठोत्तरी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

५.० प्रास्ताविक
५.१ नयी कविता
५.२ नयी कविता का नामकरण
५.३ नयी कविता और नारी विषयक दृष्टिकोण
५.३.१ *धर्मवीर भारती*
५.३.२ *डॉ. विनय*
५.३.२ *नरेश मेहता*
५.४ नवगीत
५.५ नवगीत और नारी विषयक दृष्टिकोण
५.६ साठोत्तरीकाल
५.७ साठोत्तरीकाल और नारी विषयक दृष्टिकोण
५.८ निष्कर्ष

पंचम अध्याय
नयी कविता, नवगीत और साठोत्तरी कवियों का नारी विषयक दृष्टिकोण

५.१ प्रस्तावना

छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता आदि नाम आन्दोलनों के साथ जुड़े रहे हैं । आन्दोलन के रथ पर चढ़कर आनेवाली ये काव्य प्रवृत्तियाँ एक ओर तो रचनात्मक उपलब्धि से ऐतिहासिक भूमिका बनाती रही और दूसरी ओर इनसे प्रेरित होकर नये–नये काव्य आन्दोलनों ने जन्म लिया । नयी कविता अपनी प्रौढ़ि की ओर बढ़ रही थी, कि अचानक अकविता का बगूला उठा और धुएँ की भाँति फैल गया । उसके बाद तो 'किस्म–किस्म की कविता' की बाढ़ आ गई । एलेन गिंसबर्ग के अघोरी जीवन से कतिपय बुजुर्ग कवियों को प्रेरणा मिली और उस पर लम्बी कविताएँ लिखीं । फिर तो भूखी पीढ़ी, नाराज़ पीढ़ी, क्रुद्ध पीढ़ी, युयुत्सु पीढ़ी आदि नाम हिन्दी कविता में उछाले गये । दूसरा वर्ग अकविता के ढर्रे चला अगली कविता, सहज कविता, ताजी कविता, साठोत्तरी कविता, बीट कविता जैसे नामों की बाढ़ सी आ गयीं । छोटे–बड़े घोषणापत्रों द्वारा अपने–अपने मत का समर्थन किया जाने लगा । इस बात के लिए छोटी पत्रिकाओं और छोटे संकलनों का माध्यम चुना गया । अपने–अपने मतवाद के प्रसार के लिए 'इंदु', 'हंस' और 'प्रतीक' आदि साहित्यिक पत्रिकाओं की एक भूमिका हमारे साहित्य के इतिहास के साथ आबद्ध है । इस प्रकार साठ के बाद तो काफी उतार–चढ़ाव आये ।

'नवगीत' नयी कविता के ही ढंग पर सोचा गया शब्द है । यह शब्द कब, किसने कहाँ प्रयोग किया इस बात पर मतभेद है । आए दिन पत्र–पत्रिकाओं में ऐसे लेख छपते रहते हैं जिनमें 'नवगीत' का इतिहास प्रस्तुत करने की प्रयत्नशीलता दिखायी पड़ती है । छायावाद काल से लेकर आजतक गीति–विधा ने एकछत्र राज किया है । विद्यापति और सूरदास की परंपरा को छायावादी गीतों से जोड़ा जा सकता है । आज के नवगीत की अभिव्यक्ति और विषय दोनों पहले के गीतों से अलग हैं । उनका कोई प्रभाव इन गीतों पर नहीं है । आज का गीत पुरानी परंपरा से जुड़ता है, तो इसी बात पर कि वह गीत है ।

५.१ नयी कविता

इतिहास अपने आपको दोहराता है । यद्यपि प्रयोगबद्ध और नयी कविता का कालसंदर्भ निश्चित करना असंभव इसलिए है, कि प्रयोगवाद नाम की प्रतिक्रिया की उत्पत्ति–नई कविता है । किन्तु अनुसंधान के लिए काल भेदक रेखा खिंचना आवश्यक है । 'नयी कविता' भारतीय स्वतंत्रता के बाद लिखी गयी उन कविताओं को कहा गया जिन में परंपरागत कविता से आगे नये भाव–बोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प–विधान का अन्वेषण किया गया ।[१] पाश्चात्य रेस्तोराँ की जूठन चाटना हमारी हैसियत है । इस मानसिकता के कारण अंग्रेजी साहित्य में 'न्यू पोएम्स' का गिटार बजा । जिस के फलस्वरूप १९२० में डी.एच. लोरेन्स की कविता पुस्तक 'न्यू पोएम्स' प्रकाशित हुई और सन् १९६० में भी इसी नाम से पुस्तक प्रकाशित हुई । जिस में डेनी एब्से, डब्लू.एच. आडेन, अलेक्जेंडर बेर्ड, पैट्रिशिया बीयर, फ्रैंसिस बेरी, पी. कलार्क, सी.डे. लेविस, ग्राहम हाक, एडिथ सिटवेल, स्टीफेन स्पेंडर डेविस राइट और जेम्स रीव्ज आदि कवि सम्मिलित थे । संपादन एंटली क्रोनिन

और उनके साथियों ने किया था । हिन्दी में 'नये पत्ते' सन् १९५३ में लक्ष्मीकान्त वर्मा और रामस्वरूप चतुर्वेदी के संपादन में निकला । इनके बाद १९५४ में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नयी–कविता' का पहला अंक निकाला । सन् १९५५ में भारती और लक्ष्मीकान्त वर्मा के सम्पादन में 'निकष' पत्रिका का सूत्रपात हुआ । यही समय है, जब नयी कविता नामीने ज़ोर पकड़ा ।[२]

नयी कविता का आरम्भ कब हुआ यह एक विवाद का विषय है । किन्तु सन् १९४० से लेकर सन् १९५४ तक इसका प्रारंभ–काल माना जाता है । निष्कर्षतः डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी के मतानुसार '' 'नयी कविता' का प्रारम्भ सन् १९४० के आस–पास हो गया था । सन् १९५४ के आस–पास उसकी कविताएँ प्रकाशित होने लगी थीं और सन् १९६० से उसकी एक निश्चित परम्परा उपलब्ध होती है ।''[३]

५.२ नयी कविता का नामकरण

नयी कविता का नामरण अज्ञेय की देन है । सर्व प्रथम उन्होंने पटना आकाशवाणी से सन्१९५२ में प्रसारित अपनी एक भेंट–वार्ता में तथाकथित प्रयोगवादी कविता को 'नयी कविता' की संज्ञा दी । यह भेंट–वार्ता 'नये–पत्ते' जनवरी–फरवरी १९५३ के अंक में प्रकाशित हुई थीं ।[४]

'नयी कविता' नाम को स्वीकार ने के तीन कारण है (१) 'प्रयोगवाद' की बदनामी से बचने का प्रयत्न (२) पूर्ववर्ती कवियों के विषयवस्तु और शैली की भिन्नता के द्योतन का प्रयत्न (३) समसामयिक युगबोधवाली कविता की प्रवृत्ति विशेष के साथ दुनिया से कदम मिलाकर चलने की इच्छा ।

सन् १९३० में लन्दन में ग्रिर्यसन द्वारा सम्पादित पत्रिका न्यूवर्स (***New Verse***) का अक्षरशः अनुवाद नयी कविता है । साथ–साथ १९५० के लगभग

विदेशों में समसामयिक कविता को नयी कविता (***New Poetry***) कहने का रिवाज ज़ोरों से चला था । जी.एस. फ्रेसर ने समसामयिक कविता को 'न्यू मूवमेण्ट्स' कहा है । अन्य यूरोपीय एवम् एशियाई देशों की नई पीढ़ी की काव्य रचना को नवीनार्थक विभिन्न नामों द्वारा अभिहित किया गया । अतः भारत वर्ष में भी यह हवा आई ।[५]

५.३ नयी कविता और नारी विषयक दृष्टिकोण

हिन्दुस्तान की आज़ादी के बाद के समय में युगबोध, वर्तमान जीवन का संग्राम, संघर्ष–विघटन और अन्वेषण, वास्तविकता, यथार्थवादी दृष्टिकोण, सामाजिकता परक वैयक्तिकता, नवीन मूल्यों की पुकार, नवमानव की कल्पना के स्वप्न साकार करने का प्रयत्न किया गया है ।

नयी कविता तक आते–आते रूमानी कविता में जो नारी को लेकर भद्दे और वासनात्मक उष्ण चित्रों की प्रधानता थीं, वह कम हुई । नारी को नये नज़रिये से देखने का प्रयत्न किया गया । उसे एक नयी भावभूमि प्रदान की । प्राचीन पात्रों के माध्यम से उसे रूढ़ियों से मुक्त कर नयी सामाजिक चेतना प्रदान की है ।

नयी कविता के कवियों में गिरिजाकुमार माथुर, गजानन माधव मुक्तिबोध, शमशेरबहादुर सिंह, धर्मवीर भारती, अज्ञेय, नरेश मेहता, कुँवर नारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यंत कुमार, केदारनाथ सिंह, नकेन[६] का समावेश किया जाता है । जिन में से प्रमुख कवियों के नारी दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का अनुसंधक द्वारा विनम्र प्रयास किया गया हैं ।

५.३.१ धर्मवीर भारती :

धर्मवीर भारती रचित 'अंधायुग' की गांधारी के चरित्र द्वारा आधुनिक व्यक्तित्व अवतरित कर व्यक्तित्व की निराशा, कटुता एवम् आक्रमकता का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया हैं ।

गांधारी धर्म नीति, मर्यादा एवम् मानवता में आस्था रखनेवाली नारी थीं । किन्तु उसने अनुभव किया, कि ये सारे मूल्य मिथ्या हैं । गांधारी अंधी नहीं थी, किन्तु नग्न सत्य देखने की अपेक्षा आँखों पर पट्टी चढ़ाकर अंधा बन जाना स्वीकार करती है । महाभारत के युद्ध का जिम्मेवार कृष्ण को मानते हुए उसे वंचक कहती है, यथा –

''जिसको तुम कहते हो प्रभु उसने जब–जब चाहा
मर्यादा को अपने ही हित में बदल लिया
वंचक है''

कृष्ण की इसी पक्षपाती नीति के कारण गांधारी उसे शाप देती है,कि

''सारा तुम्हारा वंश
इसी तरह पागल कुत्तों की तरह
एक दूसरों को परस्पर फाड़ खाएगा
तुम खुद उनका विनाश करके कई वर्षो बाद
किसी घने जंगल में
साधारण व्याध के हाथों मारे जाओगे ।

संकीर्ण एवम् आहत मातृत्व ही उसके व्यक्तित्व का मूल नियामक तत्त्व है । उसमें नारी–सुलभ भावुकता है । जो प्रतिक्रियावश प्रचंड़ रूप ग्रहण करती है । गांधारी के शोकसंतप्त मातृत्व की अभिव्यक्ति कोमल और कठोर दोनों रूपो से हुई है अपने पुत्रों और विशेषतः अपनी ममता के अंतिम अवलम्ब

दुर्योधन के प्रति उसका ममत्व असीम है । उसने याचकों के लिए एक दान–गृह भी खोल रखा था । जिससे उसकी दानवृत्ति और उदारता का परिचय मिलता है । कौरवों की पराजय के समाचार सुनते ही जड़वत् बन जाती है । करुण मातृत्व अनेक स्थानों पर प्रतिहिंसावश अनियंत्रित उग्र और विस्फोटक रूप ग्रहण कर लेता है । गांधारी के व्यक्तित्व में कुण्ठा, ज़िद और कठ़ोर भावनाएँ निर्वासित हैं ।

गांधारी स्वभावतः ममतामयी माता है किन्तु उसकी कटुता का कारण उसका अहम् ममत्व है । अंत में वह वन की प्रचण्ड़ अग्नि से स्वयं को जला देती है । गांधारी के ज़रिए कविने ममताजन्य मोह, उदारता, पुत्र–प्रेम, पति–भक्ति, प्रतिहिंसाजन्य प्रखरता, प्रचण्ड़ता, तेजस्विता और स्पष्टवादिता आदि सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया हैं ।[४]

डॉ. धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' की राधा को आस्था की टूटन, परिवेश की घुटन की निरर्थकता, व्यक्ति की आकांक्षाएँ, इतिहास की प्रक्रिया और नारी समस्या के दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का यथेष्ट प्रयत्न किया है । कनुप्रिया के माध्यम से कवि ने आधुनिक नारी की पीड़ा को चित्रित किया है । कनुप्रिया की राधा अपनी परिणयवाली स्थिति और कृष्ण की युद्ध–नीति में किसी भी तरह ताल–मेल नहीं बिठा पातीं । उसके लिए उसका कनु सरग है, बन्धु है, रक्षक है, लक्ष्य है, आराध्य है, शिशु है, सहचर है और स्वयं उसकी सखी है, राधिका है, माँ है, बधू है और सहचरी है ।

कनुप्रिया के कृष्ण शासक, कूटनीतिज्ञ, व्याख्याकार हैं किन्तु राधा के लिए सिर्फ एक आधुनिक मनुष्य है । राधा इतिहास का नये सिरे से सृजन करना चाहती है । वह मानव समस्याओं का हल युद्ध से नहीं रागात्मकता से करना चाहती है । राधा की त्रासदी यह है, कि वह कृष्ण से इतनी अधिक जुड़कर

भी केवल एक पुकार बनकर रह गयी है । राधा कृष्ण के प्रणय में बँधकर दिग्काल की सत्ता को नियंत्रित करना चाहती हैं । वह कहती है कि दिशाएँ हमारे आलिंगन में घुल जाये और काल हमारी केलि के समाप्त होने तक प्रतीक्षा करता रहे, यथा –

''कह दो दिशाओं से
कि वे हमारे कसाव में आज
घुल जाएँ
ओर कह दो समय के अचूक धनुर्धर से
कि अपने सायक उतार कर
तरकस में रख ले.....
.....
अपने अधरों से
तुम्हारे वक्ष पर लिखकर, थक्कर
शैथिल्य की बाँहों में
डूब न जाऊँ

राधा के लिए सार्थकता की समझ तभी उपयोगी है, जब कृष्ण राधा के पास बैठकर बालों में ऊँगलियाँ उलझाकर कँपते अधरों से कुछ कहे । धीरे–धीरे हिलते जादू भरे होठों से निकलते सान्त्वना के शब्द है । इस प्रकार कवि ने एक आधुनिक युगीन अपने आप में सिमटकर पड़ी हुई नारी का दृष्टिकोण राधा के ज़रिए प्रस्तुत किया है ।[४]

५.३.२ डॉ. विनय :

'एक पुरुष और' में डॉ. विनय ने मेनका के ज़रिए आज की विद्रोहिणी नारी का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । वस्तुतः सत्य को मान ने के लिए कई

बार गुनाहों के कोटरों से गुज़रना पड़ता है और गंदे रक्त को शरीर बनाने से पहले अनेक प्रकार के प्रहार झेलने पड़ते हैं । गर्भपात जैसा पाप भी यदि सत्य की खोज़ के लिए किया जाए तो वह न तो वर्ज्य है और न असह्य । सीधे रास्ते पर चलकर जिया भी जा सकता है और उन पर भवन भी खड़े किए जा सकते हैं । सृजन की प्रक्रिया प्रवंचना की नहीं, वंदना का विषय है । क्योंकि सृजन की कोई भी प्रक्रिया अवैध नहीं होती । 'एक पुरुष और' की मेनका गर्व के साथ इन विचारों को प्रस्तुत करती है और समाज के ठेकेदारों से पूछती है, कि –

''आखिर या दे सकते है हमें
महान ग्रन्थ .... ?
मात्र रिरयाते हुए जीवन की प्रक्रिया
क्या दे सकते है किसी को.....
महत्तम आदर्श
केवल दम घोंट कर
जीने की आदत
यह सोचना गलत है कि
जीवन में कुछ अवैध होता है
अवैध होता है मात्र कोई अस्वीकृत

मेनका निर्भीकता के साथ कहती है कि बन्धे बन्धाए नियमों में बन्धकर कुत्ते, बेल और भेड़ों का समूह तो चल सकता है लेकिन आदमी नहीं । क्यों कि आदमी हमेशा अपने वक्त से आगे रहता है और जो वक्त से आगे रहता है उसके लिए कोई नियम नहीं होते । विद्रोहिणी मेनका विश्वामित्र का आहवान करते कहती है, कि

तुम चुप क्यों हो महामुनि... ।
तोड़ते क्यों नहीं शताब्दियों का चक्रव्यूह
अपनी हूँकारों से
काट क्यों नहीं देते आवरण की लकीरें

मेनका आगे कहती है कि संसार कितना धोखेबाज है । एक आदमी को पति और स्त्री को पत्नी तथा संतानों के मस्तक पर दोनों के नाम का पट्टा लगा देता है । नारीशोषण के बारे में आगे कहती है, कि नारी जिसको चाहे उससे सम्बन्ध स्थापित करे तो अवैध कहलाता है । और नारी की इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक या छलपूर्वक या व्यवस्था में सामाजिक स्वीकृति के नाम पर नारी को पालने वाले पिता नाम का जंतु उसे पशुओं की तरह बाँध देता है । दैहिक स्तर पर स्थापित सम्बन्ध वैध है और मानसिक स्तर पर सौदा मानते हैं । व्यक्तित्व व भावुकतापूर्ण लिए गए निर्णय अवैध है । इस सोच को सामाजिक दिवालियापन के अलावा क्या कहा जाए ? क्या नारी के लिए पत्नी और पुरुष के लिए पति होना ज़रूरी है ? क्या नारी केवल नारी और पुरुष केवल पुरुष बने रहकर सामाजिक प्रगति में हिस्सेदारी निभाते हुए मानसिक यंत्रणा से मुक्त नहीं हो सकते ? 'एक पुरुष और' की मेनका को आश्रय पत्नीत्व और सौभाग्य नहीं चाहिए । वह इन तमाम स्थितियों से मुक्त एक 'स्त्री' बनी रहना चाहती है ।[६]

५.३.३ नरेश मेहता :

कवि नरेश मेहता ने 'शबरी' काव्य में त्रेतायुगीन समाजव्यवस्था को सांकेतिक रूप में प्रस्तुत करते हुए शबरी जैसी निम्न–साधारण नारी को आध्यात्मिक संघर्ष द्वारा उपर उठाने की चेष्टा की है । तत्कालीन

समाज–व्यवस्था में शूद्र को तप एवम् पूजा–पाठ करने का कोई अधिकार नहीं था । इस मान्यता को तोड़ने का प्रयत्न शबरी के माध्यम से किया है ।

शबरी के माध्यम से दलित–पीड़ित पिछड़ी जातियों की नारियों को उन्नत करने का विनम्र प्रयास है । कवि की नायिका शबरी कुल–कटुम्ब की चिन्ता से प्रभु–आराधना को श्रेयस्कर मान परिवार छोड़ देती है । इसलिए शबरी द्वारा दिये गये समता के तर्क ईश्वरभक्ति की सत्ता में ही औचित्य रखता है, यथा –

क्या आत्मा की उन्नति केवल
है उच्च वर्ग तक ही सीमित ।
प्रभु तो है सब के पिता भला
उनका आराधन क्यों सीमित ।

मतंग ऋषि शबरी को आश्रम में रहने की अनुमति दी । जो निम्न वर्गीय दलित–पीड़ित नारी के प्रीत संभ्रान्त वर्ग का समाज के ठेकेदार और धर्मधरों के द्वारा नारी की निम्न दशा को उन्नत लाने के प्रयत्न का छोटा–सा अंश है ।

'प्रवाद पर्व' में कवि ने सीता के आदर्श भारतीय नारी का रूप चित्रित किया है ।

अनाम धोबी द्वारा सीता के चरित्र पर शंका किये जाने पर राम आसन्नप्रसवा सीता को वनवास देने का निर्णय लेते है । निर्णय के पहले सीता और राम के बीच कवि ने जिस संवाद का आयोजन किया है, उस से सीता के आदर्श नारी, आदर्श पत्नी, कर्तव्यशील नारी के लक्षण लक्षित होते है । सीता जनतांत्रिक मूल्यों की समर्थनकर्त्री बनती है । प्रशासकीय मर्यादा को स्वीकार कर लेती है । सीता अपने को निष्कलंक सिद्ध करने का एक भी

प्रयत्न नहीं करती । नरेश मेहता के लिए आदर्श नारी का विशेषकर पत्नी का रूप पति की अनुगामिनी होना ही है, इसलिए तो सीता कहती है कि–

''मुझे अवगत था
आर्यपुत्र !
आरम्भ से ही मुझे इसकी प्रतीति थी
कि मुझे
इतिहास और
इतिहास पुरुष के पार्श्व में
केवल एक प्रतिमा–सा खड़ा होना है ।''[१०]

५.४ नवगीत

गीतों की ध्वनि सागर की लहरों से, फूलों की मुस्कान से, पक्षियों की ध्वनियों से, पौधों के लालित्य से फूटी पड़ती है । प्रकृति गीतकार है और इसी के गीतितत्त्व का प्रभाव मानवमन के उपर है । वह गाता है और एकाकी एवम् समाजी रूप में अपने मन की आकांक्षाओं, पीड़ाओं और प्रसन्नताओं को रूप देता हैं । यह क्रम सृष्टि की रचना के साथ–साथ चला आ रहा है । अच्छे काव्य की रचना के लिए शिक्षा–अभ्यास की शर्त लगायी गयी है । गीत के साथ ऐसी कोई शर्त नहीं है । परिणामस्वरूप बंगाल के भटयाली गीत से लेकर हिन्दी प्रदेश के बिरहा, सोहर आदि तक फैली हुई समस्त गीत संपदा अनाम कवियों की हैं ये गीत कब के रचे हैं, निश्चित तिथि का कोई पता नहीं है । कितना निस्संग है, गीतकार अपनी रचनाओं से ये गीत अमुद्रित रूप में लोगों की जुबान पर है ।

भारतवर्ष के लोकगीतों की विषयव्यापकता देवेन्द्र सत्यार्थी इन शब्दों में बतलाते हैं : प्रत्येक ऋतु, प्रत्येक उत्सव, कातने–बुनने के धंधे, जोताई–बुनाई

और निराई–कटाई की सामाजिक क्रियाएँ सभी के साथ गीतों के टांके लगे हुए है । जिसमें किसी क्लान्त थकी युवती का चित्र, एकाकीपन में गुंथा हुआ, मातृवत्सला की कोई कड़ी, ग्राम देवता का आह्वाहन, अच्छी फसल के लिए प्रार्थना, किसी रीति–नीति, प्रथा या विश्वास का संकेत, कोई वीर गाथा, प्रेम–गाथा, ऐसी बहुमुखी सामग्री लोकगीत में प्रस्तुत की जाती रही हैं ।

आधुनिक साहित्य में गीतों का प्रारंभ भारतेन्दु काल से ही माना जाना चाहिए । द्विवेदी काल में एकान्विति, लय, संगीत आदि के आधार पर रचे गए गीतों की संख्या कम है कितु छायावाद काल में यह कमी पूरी होती है । प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी के गीतों की कल्पना की सघनता ने पाठकों को आकर्षित किया था । १९७० में बच्चन के गीतों में मन की पीड़ा प्रकट होती है । मात्र प्रेमगीत ही नहीं युग की स्थितियों का भी चित्रण मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र, प्रभाकर माचवे आदि ने किया है । तो प्रयोगवादी कवियों ने गीतों को न सराहा बल्कि अपने संकलनों में स्थान भी दिया ।[११]

नवगीत कवियों एवम् नवगीत समीक्षकों में से अधिकांश ने निराला की परम्परा में ही इसके विकास का स्वीकार किया है । देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का मानना है, कि 'गीतिका' के प्रकाशन के साथ ही नवगीत के उद्‌भव का पूर्वाभास होने लगा था ।[१२]

५.५ नवगीत और नारी विषयक दृष्टिकोण

विज्ञान के अनेक आविष्कार हुए । भारत में उनका प्रभाव आया । गाँव की रेलगाड़ी और ज़हाज का परिचय मिला । परदेशी की प्रीति की उत्कटता सिद्ध करने के लिए गाँव की विरहिणी गोरी की और से अज्ञातनामा कवि ने नारी के प्रति अपना भावदृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा है कि –

रेलियं न बैरी, जहजिया न बैरी
उहै पइसवै बैरी हो ।
देसवा, देसवा भरमावै
उहै पइसवै बैरी हो
भुखिया न लागै, पिअसिया न लागै
हमके मोहियै लागै हो.... ।

विरह के संदर्भ में गाँव की स्त्रियों के लिए अपना देश ही परदेश है । उनका परदेशी रेलगाड़ी द्वारा दूर देश चला गया है, इसलिए विरहिणियों की सौत है यह रेलगाड़ी । इस प्रकार की विरहवेदना में डूबे हुए कथनों का कोई अंत नहीं है ।

'दूसरा सप्तक' लीजिए । जिस में भवानीप्रसाद मिश्र, हरिनारायण व्यास, नरेश कुमार मेहता, और धर्मवीर भारती गीतकार है । ***धर्मवीर भारती*** ने तो ड़ंके की चोट पर गुनाह का एक नहीं दो–दो गीत लिखे हैं । जिस में जवानी की ऊर्जा थी, प्रेम था, मस्ती थी, बलिदान और मर–मिटने की तमन्ना थीं । जैसे कि –

इन फोरोज़ी होठों पर मेरी ज़िंदगी बरबाद ।
मृणालों की मुलायम बाँह ने सीखी नहीं उलझन
सुहागन लाज में लिपटा शरद की धूप जैसा तन,
अंधेरी रात में लिखते हुए बेले सरीखा मन ।
पंखुरियों पर भंवर के गीत–सा मन टूटता जाता
मुझे तो वासना का विष हमेशा बन गया अमृत
बशर्ते वासना भी हो तुम्हारे रूप से आबाद
मेरी ज़िन्दगी बरबाद ।

'तीसरा सप्तक' में भी ***केदारनाथ सिंह*** ने तो धान–गीत, बसंत गीत, फागुनगीत, विदा–गीत लिखे है । केदारनाथ सिंह के 'विदा–गीत' की प्रारंभिक पंक्तियाँ कुछ इस प्रकार है –

रुको, आँचल में तुम्हारे
यह समीरन बाँध दू, यह टूटता प्रन बाँध दू ।
एक तो उँगलियों में
कहीं उलझा रह गया है
फूल–सा वह कंपता क्षण बाँध दू

इस प्रकार कवि ने गाँव से विदा होती गोरी के लिए तमाम बागों–बहार लूटाने की उत्सुकताएँ दिखाई हैं ।

नारी शरीर को लेकर नवगीतों में भी कवियों ने बड़े काल्पनिक श्रम किए हैं । नवगीत में भी उसके शरीर से क्षण महकते हैं, उसके सरोवर में कवि की छाँह डूबती है, उसका रूप शुक्लपक्षी है । ठाकुरप्रसाद सिंह प्रेयसी के साथ 'तटस्थ' होना चाहते है । रामदरश मिश्र फर्श के हर ठाँव पर प्रेयसी के चरणचिन्ह याद करते हैं । महेन्द्र भटनागर नारी के साथ सखा का सम्बन्ध जोड़ते है । ***वीरेन्द्र मिश्र*** अपनी 'स्पर्श–स्मृति' को नवगीत में इस तरह व्यक्त करते हैं ।

थरथराता एक माँसल स्पर्श
ठंड़ी हवाओं में
एक रुठन लाँधकर आती दशा
एक मधुवर्णी मनौती की निशा
संधि–पत्र लिए खड़ा है मेघ
विद्युत् समाओं में

गंध जो तरु के तले खोई हुई
झुमती है बेखबर सोई हुई
फरफराता एक निर्झर
चन्द्रमा की कलाओं में
क्या कहूँ वर्षा–ऋणों की भीड़ है
अनलिखे आमंत्रणों की भीड़ है
चक्रवर्तिनी हो तुम्हीं
अभिव्यक्ति की सब विधाओं में

नारी की स्थिति चक्रवर्तिनी की है । उसकी व्याप्ति को कोई पा नहीं सकता । नयी कविता में नारी को मित्र माना गया है । नवगीत में उसका रूप ठीक वैसा नहीं हैं । वहाँ तो वह परम्परा की नारी है । अभिव्यक्ति के स्तर पर ऊब, घुटन संत्रास आदि के चित्रण बहुत सामान्य ढंग के बन पड़े हैं ।

५.६ साठोत्तरीकाल

१९६० से १९७० तक विभिन्न काव्यान्दोलन हुए जिनमें साठोत्तरी कविता के आन्दोलन में 'अकविता' का हल्ला–गुल्ला अधिक रहा है । अकविता के प्रथम चयनकर्ताओं में जगदीश चतुर्वेदी, मुद्राराक्षस, रवीन्द्रनाथ त्यागी और श्याम परमार के नाम हैं । प्रस्तावकों में अतुल भारद्वाज, गंगाप्रसाद विमल, गिरिजाकुमार माथुर, तार तिक्कू, नित्यानन्द तिवारी, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, राजीव सक्सेना, विनोदचन्द्र पाण्ड़ेय और सौमित्र मोहन के नाम हैं । ये सारे कवि पिछली परम्परा को नकारते हैं और परिवर्तित सौन्दर्यबोध के पक्षधारी हैं । जिस में अकविता–१ को 'विघटन', 'अकविता–२ को 'शरीर', अकविता–३ को 'मृत्यु', अकविता–४ को 'नगर' और अकविता–५ को 'व्यक्ति'

शीर्षक दिये हैं । मेला समाप्त होने पर दुकाने उठ़ जाती है और मेले की झंड़ियाँ बच्चे लूट लेते हैं वैसे ही सन् १९७३ में 'निषेध' नाम का जो संकलन जगदीश चतुर्वेदी ने निकाला उसमें उनका 'अकवित' का आग्रह नहीं था ।

अकविता के बाद 'बीट' और 'भूखी पीढ़ी की कविताएँ' आती है । यह आन्दोलन कलकत्ते में आयात किया गया था । 'भूखी पीढ़ी', 'हंग्री जनरेशन' का भावानुवाद था । वास्तव में वह एलेन गिंसबर्ग जैसे अघोरी जीवन की जूठन थीं ।

'बीट' और 'भूखी पीढ़ी' के बाद 'श्मशानी पीढ़ी' की कविताएँ आती हैं । जिसके सम्पादक निर्भय मल्लिक है । इनकी प्रगति के सूचक यौन प्रतीक हैं । जिनके आधार पर ये सपाट साहित्य की रचना करते हैं । सव्यसाची, विष्णुचन्द्र शर्मा, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जैसे प्रगतिशील कवियों और लेखकों की पंक्तियों को ये श्मशानी पंक्ति मानते हैं ।

'ताजी कविता' का झण्ड़ा लेकर लक्ष्मीकान्त वर्मा आये । जो नई कविता में आये 'बासीपन' को दूर करने के लिए झाड़ूमार का काम करते हैं ।

इसके अलावा डॉ. रमेश कुन्तल मेघ, श्यामनारायण द्वारा संपादित 'अंतर' में 'सांप्रतिक कविता' निकालते है । 'युयुत्सावादी' कविता 'अतिकविता' और 'निर्दिशायामी कविता' आयी । श्रीराम शुक्ल ने 'अस्वीकृत कविता' निकाली । 'अगली कविता' का प्रकाशन ओमानन्द सारस्वत ने सन् १९६३ में वल्लभ विद्यानगर – गुजरात से किया था । मार्च सन् १९६७ में 'सहज कविता' का आगमन डॉ. भ्रमर के नेतृत्व में हुआ । श्री वीरेन्द्रकुमार जैन द्वारा उद्घोषित 'सनातन सूर्योदयी नूतन कविता' १९६२ में प्रकाशित हुई । १९६९ में 'पोस्टर कविता' निकली ।

कानपुर के सलिल गुप्त के संपादन में 'साठोत्तरी कविता' नामक संकलन निकला उस साठोत्तरी कविता के 'मैं' में सामूहिकता की व्याप्ति है । जिन छः कवियों को साठोत्तरी कविता में संकलित किया गया था, उनके नाम है : सुरेश सलिल, बैजनाथ गुप्त, ललित शुक्ल, चन्द्रेश गुप्त, सलिल गुप्त और जीवन शुक्ल ।

'साठात्ततरी कविता' संकलन की कविताएँ निश्चय ही उन तमाम कतिवाओं से श्रेष्ठ थीं । जो वाद–घूमायित वातावरण में, उस समय छपा करती थीं । उपलब्धि पर विचार करें तो साठोत्तरी कविता के कवि में, क्रान्ति का उन्मेष था । नारी के प्रति नवीन दृष्टिकोण था ।

५.७ साठोत्तरीकाल और नारी विषयक दृष्टिकोण

साठोत्तरी काल में अपनी–अपनी विचारधारा को अलग–अलग रूप से प्रस्तुत करने व दूसरों से अलग हटने हेतु अनेक कवियों के खेमें साहित्य जगत में अवतरित हुए । इन तमाम साठोत्तरी कविता खेमों के कवियों का नारी के प्रति किस प्रकार का रवैया रहा है ? जिसकी प्रस्तुति करने का अनुसंधक ने यथेष्ट प्रयत्न किये है, जो निम्न रूप से है ।

नारी का रोल पुरुष जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण है । कभी–कभी तो राजनीति भी नारी के कारण बदल जाती है । 'अकविता' में जिस विद्रोह और विक्षोम की बात उठायी गयी है, वह नारी केन्द्रित हैा

'अकविता' में नारी की दुर्दशा सबसे अधिक हुई है । उसकी इस से कहीं अधिक दुर्दशा बंगाल में मलयराय चौधरी ने की है । वहाँ कवि की 'शुभा' नामक कामिनी या मशीननुमा प्रेयसी को यदि समस्त नारी जाति का प्रतीक माने तो यह कहना असंगत नहीं होगा, कि मलय की सेक्स सम्बन्धित भूख में कोई अन्तर हीं होता । कदाचित इस प्रकार के निष्कर्ष को वह अपनी

सबसे अच्छी समीक्षा माने । नारी और पुरुष के सम्बन्ध की व्याख्या अकवियों ने अपने–अपने ढंग से की हैं । कुछेक कवियों को छोड़कर यह स्त्री–पुरुष सम्बन्ध विकृति के स्तर तक पहुँचा है । नारी की स्थिति बड़ी ही दयनीय है । अकविता के कवि ***श्याम परमार*** ने नारी के अंगों को चित्रित कर यौन उदारता और वितृष्णा के बीभत्स चित्र अंकित किये है, यथा –

स्तनों को रौंदते पागल कदम
खरोंचे जख्म पर
मृत मछलियाँ
औरतों के कटे–नुचडे ध्वस्त अंगो पर
शिश्न की परछाइयाँ

सेर पे सवासेर बनकर ***राजकमल चौधरी*** नारी के प्रति अपना खुला नज़रिया विनम्र भाव से प्रस्तुत करते है, देखिए

स्त्री कभी नग्न नहीं होती है
अपनी त्वचा में ढकी हुई
उजाले में सोती है

अपनी कविताओं में ***जगदीश चतुर्वेदी*** कुछ विशिष्ट बातें करते हैं । वह तमाम हत्याओं का जीवन जीते हैं । स्तनों को प्यार करते हुए उन्हें कभी सुख नहीं मिला । वह पार्कों में व्यभिचार उगलते हैं । इन्हें औरत, पत्नी, वेश्या या प्रेमिका के साथ सोना अच्छा नहीं लगता । औरत समय बरबाद करने की जिंस होती है । यह औरत के निर्वसन अंगों को देखते रहेंगे, छुएँगे नहीं । पत्नी और प्रेमिका को घर से निकालने के पूर्व यह 'वस्त्रमुक्त' करना चाहते हैं । प्रेमिका के शरीर को गन्ने के खेत में तोड़ने का इनका इरादा है । यह अपनी प्रेमिका के साथ वस्त्रहीन यात्रा करना चाहते है । इन्होंने उन लड़कियों

से मिलना छोड़ दिया है, जिनके स्तन मात्र प्रतीक्षा करते–करते सिकुड़ कर रबड़ की चपटी गेंद से हो
गए हैं । इनकी रुचि ठण्ड़ी औरतों में नहीं हैं । इनकी प्रेमिका किसी गंदी गली में अपनी शारीरिक भूख किसी अल्सेशियन से मिटा रही है ।

सौमित्र मोहन का कहना है कि प्रत्येक चीज़ और सम्बन्ध को वे झटके से छोड़ सकते है इस त्याग भावना में पिता और पत्नी भी हो सकती है । आगे नारी के बारे में उनकी सोच है, कि –

औरत के पेट की सीवन उधेड़कर उसके गर्भ जल से अपना शिश्न धोया ।

अकविता के कवियों के मन में नारी कहीं बहुत गहरे गड़ गयी है । वे उसी के आसपास घूमते रहते है । जब कि नारी पुरुष और अपने बीच के सम्बन्धों की नयी व्याख्या–स्थिति पर प्रकाश डालती है । जिन के लिए 'प्यार' शब्द घिस गया है, इसलिए 'सहवास' याद आता है । इस से स्पष्ट होता है, कि नारी की दुर्दशा अधिक हुई है । नारी का नग्न व फूहड़ चित्रण कर माँ को गाली देने का प्रशंसनीय कार्य करने का श्रेय इस खेमे के कवियों को विशेष रूप से जाता है ।

अकविता के कटघरे में सभ्यता, संस्कृति व अपने संस्कारों की भद्रता प्रदर्शित करने में कुछ सम्भ्रान्त महिलाएँ भी मौजूद हैं । जिन में ममता कालिया, मोना गुलाटी और मणिका मोहिनी के नाम विशेष रूप से उज़ागर हैं ।

मोना गुलाटी के अनुसार सेक्स अश्लीलता का नहीं, वितृष्णा का विषय है । वह कहती है कि नर शताब्दी में रहते–रहते मेरे पूरे ज़िस्म पर फफोले हो गये हैं । इनकी कविताओं में तमाम औरतों, कन्याएँ और देवदासियाँ जन्म

लेती हैं । और गर्व का भी अनुभव करती हैं । यह अपनी कुचली हुई देह को सड़क पर फेंक देती है । देखिए मोना गुलाटी अपनी करनी को कथनी में कैसे बंधती है ।

नरमुण्ड पहने हुए और नाचते हुए और भागते हुए
अपने कण्ठ को समूचा निगल जाती हूँ
और अनजाने छू लेती हूँ विवस्त्र शिवलिंग

मणिका मोहिनी अपनी कविताओं के सम्बन्ध में कोई दावा नहीं करती । कभी न समाप्त होनेवाली बेचैनी उन्हें रचना के लिए प्रेरित करती है । अंदर की टूटन ही अभिव्यक्ति का कारण है । मणिका मोहिनी की एक कतिवा की बानगी देखिए ।

सुबह होने से लेकर दिन डूबने तक
मैं इन्तजार करती हूँ रात का
जब हम दोनों एक ही कोने में सिमट कर
एक दूसरे को
कुत्तों की तरह चाटेंगे
विवाह के बाद जिंदा रहने के लिए
जानवर बनना बहुत जरूरी है ।

विद्या शर्मा कहती है कि उनके 'ज़िस्म' में पैदा हो गया है एक नर । अब वे शताब्दियों तक बिना संसर्ग के पीढ़ियों का सृजन कर सकती है ।

'साठोत्तरी' काव्य प्रवास में जगदीश चतुर्वेदी, मौना गुलाटी श्रीराम शुक्ल, राजकमल चौधरी आदि के यहाँ, जिस फ्री सेक्स की दुहाई दी गई है, उसमें नारी वर्ग को कुचलने की गहरी साज़िश है । काम–वासना की व्याप्ति पूरे विश्व के प्राणियों में है, फिर सभ्य मानव के लिए इस प्रकार की कल्पना उसे

पशुता की ओर ले जाती है । कुछ साठोत्तरी कवयित्रियों ने तो पशुओं के साथ सोने की कल्पना की कामना व्यक्त की है । क्योंकि उन्हें आदमियों में पशुता की पर्याप्त झलक मिली है ।

सेक्स के नाम पर जीवन और काव्य में नारी का शोषण नहीं होना चाहिए । किन्तु नये कवियों में ज्यादातर ऐसे है, जो उसे मात्र भोग की वस्तु (चाय) मानते है । सेक्स का वह चित्रण, जो भदेस और गँवारपन का एहसास देता है । किसी भी प्रकार ग्राह्य नहीं होना चाहिए । ***किरण जैन*** ने अस्तित्व खोती हुई एक गुड़िया का चित्र प्रस्तुत किया है । देखिए –

आदमी लोहे का पुतला
औरत.... मोम की गुड़िया
सुलगता लोहा जब भीगे मोम को
अपनी बाँहों में कसता
पिघलकर
अस्तित्व खो देती गुड़िया विवश ।[१३]

साठ के बाद की कविताओं में कवियों ने नारी को नंगा करके बलात्कार गुज़ारने का विनम्र प्रयास किया है । जिससे इन महाशयों व महाशयाओं की प्रशंसा के पुल टूटते नज़र आते है । मैं इस दशक को नारी अवदशा का दशक कहूँगा ।

५.८ निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि नयी कविता, नवगीत और साठोत्तरी काल के कवियों के नारी सम्बन्धित दृष्टिकोण में क्रमशः विकार उत्पन्न हुआ है । नयी कविता के आगमन तक देश आज़ाद हो चुका था और स्वातन्त्र्य की भावभूमि पर विचरण करने लगा था । नई बात, नया विचार

प्रस्तुत किया जाने लगा था । शिक्षा के विस्तृत आलोक के प्रभाव स्वरूप कविता में जो नारी सम्बन्धित वासनात्मक उष्ण व भद्दे चित्र अंकित किये जाते थे वह कम हुए । प्राचीन पात्रों के माध्यम से नारी को रूढ़ियों से मुक्त कर नयी सामाजिक चेतना प्रदान की गई । धर्मवीर भारती ने गांधारी के माध्यम से, जो जानबूझ कर नग्न सत्य का अस्वीकार करने वाली आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करती थी उसका व कनुप्रिया (राधा) के ज़रिये अपने आप में सिमटकर रहनेवाली आधुनिक युगीन नागरी का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया । जब कि डॉ. विनय की युगों से बंदिनी नारी स्वतन्त्र रूप से समाज से, समाज के भद्र वर्ग के सामने दहाड़ी है । इस प्रकार उनकी मेनका पत्नीत्व और सौभाग्य की चाहत से मुक्त हो एक 'स्त्री' बने रहने में ही जीवन की सार्थकता मानती है । नरेश मेहता ने शबरी द्वारा निम्न जाति की नारी का स्थापन व सीता द्वारा पत्नी रूप की महत्ता सिद्ध की है । दूसरी ओर नवगीतकारों में धर्मवीर भारती, केदारनाथसिंह, और वीरेन्द्र मिश्रा जैसे गीतकारों ने नारी के विविध उदात्त रूपों के प्रति मर–मिटने की तमन्नाएँ जताई है । साठोत्तरी काल नारी अवनति का दशक माना जाना चाहिए । क्योंकि इस समयावधि के कवियों को विवृत वस्त्रों की सुन्दरता की बजाय नंगापन व अंग–उपांगों की उभरी आभा से ज्यादा प्यार है । भले ही मानसिकता से कोई मन–मेल न हो । कवयित्रियों को भी पुरुष ही अधिक भाये है । चाहे बंगाल के मलयराय चौधरी हो या फिर श्याम परमार, राजकम चौधरी, सौमित्र मोहन आदि और ममता कालिया, मोना गुलाटी, मणिका मोहिनी, विद्या शर्मा या किरण जैन ही क्यों न हो उनकी कविता का काम ही काम की अभिव्यक्ति रहा है वरन् इसके अलावा इन काव्यों का ओर कोई दाम नहीं है ।

संदर्भ सूची :

१	सं. डॉ. नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास (नयी दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, १९८८), पृ. ६३७
२	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १९७९), पृ. १६७
३	डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, अभिनव साहित्यिक निबन्ध (आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, १९८३), पृ. ३०१
४	डॉ. विमल सिंह, नयी कविता और नरेश मेहता (इलाहाबाद : शिल्पी प्रकाशन, १९९४), पृ. ३
५	डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी, अभिनव साहित्यिक निबन्ध (आगरा : विनोद पुस्तक मन्दिर, १९८३), पृ. ३०३/०४
६	आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, नई कविता (नई दिल्ली : प्रकाशन संस्थान, १९९७)
७	डॉ. कमलेश त्रिवेदी, अंधायुग एक शैली वैज्ञानिक अनुशीलन (नड़ियाद : दर्पण प्रकाशन, २००२), पृ.१६७
८	श्रीमती कामायनी कौशिक, कनुप्रिया का शैली वैज्ञानिक अध्ययन (दिल्ली : दीपू प्रकाशन, २००१) पृ.१५६
९	डॉ. एस. ए. सूर्यनारायण वर्मा, नयी कविता पुराख्यान और समकालीनता (इलाहाबाद : जयभारती प्रकाशन, १९९९) पृ. १४०/४१/४२
१०	डॉ. विमल सिंह, नयी कविता और नरेश मेहता (इलाहाबाद : शिल्पी प्रकाशन, १९९४), पृ. १२२/२३/२६/२७

११	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १६७६), पृ. २२२/२३
१२	डॉ. मायाप्रकाश पाण्ड़ेय, रचनाकर्म (जुलाई–दिसम्बर – २००३) पृ. ८५
१३	ललित शुक्ल, नया काव्य नये मूल्य (दिल्ली : दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड, १६७६), पृ. १६६ से २६७

षष्ठम अध्याय

आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण

६.० प्रास्ताविक
६.१ आठवें दशक की पृष्ठभूमि व कविगण
६.२ आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में
नारी विषयक दृष्टिकोण
६.२.१ मातृत्व या मातारूप नारी
६.२.२ पतिपरायण व परतन्त्र नारी
६.२.३ गृहस्थ या गृहिणी नारी
६.२.४ बेबस–लाचार नारी
६.२.५ गरीबी की शिकार नारी
६.२.६ चरित्रसम्पन्न नारी
६.२.७ स्वेच्छाचारिणी नारी
६.२.८ रूपसी, सौन्दर्यसम्पन्न व रूपगर्विता नारी
६.२.९ विज्ञापन सुन्दरियों के रूप में नारी
६.२.१० प्रेमिका नारी
६.२.११ पतिता या समाजभ्रष्टा नारी
६.२.१२ दलित–पीड़ित नारी
६.२.१३ आकांक्षी नारी
६.३ निष्कर्ष

षष्ठम अध्याय
आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण

६.० प्रास्ताविक

आज का युग वैज्ञानिक और प्रतियोगिता का युग है । अतः जीवन में जीत–हार, सफलता–असफलता का महत्त्वपूर्ण स्थान है । किन्तु भारतीय समाज में नारी ने इस प्रतियोगिता में हिस्सेदारी बीसवीं शती के उत्तरार्ध से ही निभानी शुरू की है । साहित्यकारों ने नारी चरित्रों का अंकन उसके मन के सूक्ष्म और स्थूल रूप के विभिन्न आधारों पर किया हैं । समाज सम्मत मान्यताएँ और बदलते परिवेश की चुनौतियाँ नारी की जीवनधारा को परिवर्तित करने में सहायक हुई है । साहित्य में चित्रित नारी की आदर्शवादी छवि में सभ्यता और संस्कृति के बदलाव के साथ अन्तर आया है । मनोविश्लेषण यह प्रमाणित करता है, कि कोई भी आदर्श स्थायी नहीं होता, मानव जीवन नये सिद्धान्तों को अपनाता रहता है ।

मानवजाति की सभ्यता एवम् सामाजिक उन्नति का मूलाधार नारी है । मानव जीवन में नर–नारी का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में नर के बिना नारी और नारी के बिना नर अपूर्ण है । सभ्यता और संस्कृति का भवन नर–नारी सम्बन्ध पर आधारित है । इस सम्बन्ध की समता से सभ्यता का उत्कर्ष होता है, और विषमता से अपकर्ष । किन्तु प्रकृति की मनोरम पुत्री नारी के अपने सौन्दर्य और व्यक्तित्व से युगों –युगों से धर्म, साहित्य और इतिहास को प्रभावित किया गया है । अपने

विविध रूपों में उसने पुरुष का पोषण किया है, उसे प्रेरणा दी है । इतिहास की अनेक अंधेरी सुरंगों से निकालकर विगत सौ वर्षों में उसकी आवाज़ और अस्तित्व को नये आयाम मिले हैं । साहित्य जीवन का मंथन है । अनेक राष्ट्रीय, आन्तरराष्ट्रीय आन्दोलनों ने समाज में उपेक्षित नारी को एक नयी चेतना प्रदान की है ।[१]

जिस देश में स्त्रियाँ कष्ट पाती थीं, वहाँ का शासन असफल मना जाता था । किन्तु आज उलटी गंगा बहती है जिसे प्राचीन काल से लेकर आज तक के काल में विभिन्न दृष्टिकोण से देखा गया है । युग बदले, परिवेश बदले उसके साथ नारी के व्यक्त्वि के विविध चित्रों में भी अंतर आता गया । कभी आदर्श, कभी यथार्थ, कभी विकृत, कभी देवी, कभी कामिनी । उसका रूप सभी काल में एक सा नहीं रहा, कारण, कवियों के दृष्टिकोण में अंतर आ गया था । भारतीय समाज व्यवस्था में नारी ''मानुषी'' की अपेक्षा ''कठपुतली'' अधिक रही है जिसे पुरुष ने अपनी इच्छानुसार गति तथा रूप प्रदान किया है । जिसमें नारियों का योगदान भी कम नहीं है ।

६.१ आठवें दशक की पृष्ठभूमि व कविगण

छट्ठे दशक में 'नई कविता' का काव्यान्दोलन अपनी व्यक्तिगतता और आत्मस्थता के कारण अपनी मौत मर गया । सब मिलाकर उसमें आस्था का स्वर ही प्रधान था, यद्यपि अनास्था की कमी नहीं कही जा सकती । आस्था–अनास्था के द्वन्द्व में व्यक्तिस्वातन्त्र्य, उत्तरदायित्व आदि मूल्यों का अन्वेषण भी किया गया । किन्तु सामाजिक व्यवस्था ने व्यक्तिस्वातन्त्र्य और उत्तरदायित्व के बीच की खाई कभी पटने नहीं दी । राजनीतिज्ञों के वादों की तरह कवियों की आस्थाएँ भी झूठी सिद्ध हुई । इसलिए सातवें दशक के पहले

दौर से अस्वीकार और नकार का स्वर अधिक मुखर होकर आया पर आगे चलकर आठवें दशक में एक व्यवस्था आई ।[१]

भारतीय संविधान में व्यक्तिस्वातन्त्र्य और उसके दायित्व को रेखांकित किया गया । पर व्यक्तिस्वातन्त्र्य भ्रष्टाचार का दूसरा नाम हो गया । वर्तमान लोकतन्त्र अपनी विसंगतियों में प्रतिदिन धुँधलके की ओर बढ़ता रहा । पूँजीवादी और लोकतन्त्र की साँठ–गाँठ के कारण मनुष्य की रही–सही आशा भी क्षीण हो गई । ज्यों–त्यों समय बीतता गया और वर्ग–भेद, जाति भेद, भाई–भतीजावाद का बाज़ार गरमाता गया और राष्ट्रीय चरित्र गिरावट की सीमा पार कर गया । फलस्वरूप स्वतन्त्रता के पाले हुए सपने का मोहबन्ध टूट गया । मूल्यहीनता की आत्यंतिक स्थिति में व्यक्ति की अपनी पहचान खो गई और समाज अंधेरे की पर्तों में खो गया ।

ऐसी स्थिति में बुद्धिजीवी के पास दो विकल्प थे – एक तो यह कि वह व्यवस्था में अपने को ढाल ले, दूसरा यह कि बदलाव के लिए संघर्षरत हो । व्यवस्था में अपने को ढाल लेने पर बुद्धिजीवी–बुद्धिजीवी नहीं रह जाता । अतः बदलाव ही एकमात्र विकल्प बचता है । इस बदलाव के प्रति दो दृष्टिकोण दिखाई पड़ते हैं – हताशा की नियति और बदलाव की गत्यात्मकता । इस दशक की मूल प्रवृत्तियाँ ये ही हैं । दोनों ही को अगर एक नाम देना हो तो आधुनिकता कहा जा कसता है ।[२]

आधुनिकतावाद एक वैश्विक प्रवृत्ति (फिनोमिना) के रूप में स्वीकार कर लिया गया है । वह भी इतिहास की एक विशेष परिस्थिति में जन्मा है । अपनी ऐतिहासिक परिस्थितियों के फलस्वरूप विभिन्न भू–भागों में इसकी उत्पत्ति का समय भी भिन्न–भिन्न है । एक भिन्न ऐतिहासिक परिस्थिति में जन्म लेने के कारण इसमें पश्चिमी आधुनिकतावाद की गंभीरता, अनेक आयामीयता और

तकनिकी पेचोखम नहीं है । पश्चिमी आधुनिकतावाद दो–दो महायुद्धों द्वारा विध्वस्त जीवन, अस्तित्ववादी दर्शन, फासीस्टवाद और पूँजीवादी पदार्थीकरण की देन है । इसके कीटाणु वाइरस की तरह दुनिया भर में फैल गये । इसकी तकनिक हिन्दी में भी ग्रहण की गयी ।

इस संदर्भ में पश्चिम की कलात्मक और साहित्यिक उपलब्धियों को देखकर आश्चर्य चकित हो जाना पड़ता है । साहित्य के क्षेत्र में टी.एस. इलियट, जेम्स, ज्वायस, काफ्का, बेकेट, प्रूस्त, रिल्के, लोर्का आदि विश्वविख्यात नाम हैं । अपने देश का सतही आधुनिकतावाद फूहड़ विकृतियाँ लेकर आया ।[३]

इस दशक की अगुआई की राजकमल चौधरी ने । उसमें आधुनिकता अपनी समग्रता में दिखाई पड़ती है । इस समय की अधिकांश रचनाओं पर चौधरी की छाप देखी जा सकती है । श्री चौधरी बिहार के पूर्वांचल के निवासी थे । बंगाल की भूखी पीढ़ी के साथ उनका गहरा सम्पर्क था । ये गूस्से के कवि थे । अपनी आक्रोशपूर्ण वाणी में ये अपना गुस्सा उतारते रहे । राजकमल चौधरी के 'कंकावती' 'मुक्तिप्रसंग' और 'इस अकाल बेला में' के अध्ययन द्वारा इस दशक की नब्ज़ पकड़ी जा सकती हैं ।

'धूमिल' का असली नाम सुदामा पाण्ड़ेय है । हाईस्कूल की मामूली शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे कभी लोहा ढ़ोने वाले मज़दूरों के साथ काम करते रहे तो कभी व्यवसायिक फर्म में । अन्त में उन्होंने आई.टी.आइ. वाराणसी में नौकरी कर ली । उनके दो काव्य–संग्रहों 'संसद से सड़क तक' और 'कल सुनना मुझे' को अनेक रूप रंगों में देखा जा सकता है ।[४]

लीलाधर जगूड़ी मूलतः वामपंथीं विचारधारा के कवि है । प्रायः कहा जाता है, कि उनकी आरंभिक कविताओं पर धूमिल की मुहावरे बाजी और खिलंदड़ापन का प्रभाव है । किन्तु दोनों कवि लगभग एक साथ लिख रहे

थे । जिस वर्ष धूमिल का 'संसद से सड़क तक' प्रकाशित हुआ, उसी वर्ष (१६७१) में जगूड़ी का भी पहला संग्रह 'नाटक जारी है' छपा । उनके अन्य संग्रह है – 'इस यात्रा में', 'रात अब भी मौजूद है', 'बची हुई पृथ्वी', 'घबराये हुए शब्द' और 'भय भी शक्ति देता है' आदि ।

चन्द्रकान्त देवताले ने एक सीमा तक धूमिल–जगूड़ी के भाषायी आतंक से अपने को बचाया है । वह उन्हीं के समसामयिक कवि हैं । उनके कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं – 'हड्डियों में छिपा ज्वार', 'दीवार पर खून से', 'लकड़बग्धा हँस रहा है', 'रोशनी के मैदान की तरफ', 'भूखण्ड़ तप रहा है' और 'आग हर चीज़ में बनाई गई थीं' देवताले वैसे पीड़ा के कवि है । कविता को बुलेट बताने की बड़बोली स्पृहा उनमें नहीं है । आज की दुनिया को सही दिशा में न ले जाने की कविता की अक्षमता उन्हें दुःखी कर देती है ।

मंगलेश ड़बराल के काव्य–संकलन 'पहाड़ पर लालटेन' पढ़ते समय अमृता शेरगिल के चित्रों की याद आती है । शेरगिल ने चित्रों को सहानुभूति दी है तो ड़बराल ने आत्मानुभूति । इनके अन्य कहानी संग्रहों में 'घर का रास्ता', 'हम जो देखते है' और 'आवाज़ भी एक जगह' है ।

राजेश जोशी प्रतिबद्ध कवि है । वे अपने विचारों और भावों के लिए कहानी बनाते हैं । 'एक दिन बोलेंगे पेड़' चर्चित काव्य संग्रह है । 'मिट्टी का चेहरा', 'नेपथ्य में चेहरा', 'दो पंक्तियों के बीच' आदि कविता संग्रह हैं ।

अशोक वाजपेयी ने बौद्धिक रुखाई और छायावाद विरोधी फैशन के किनारे से हटकर अपने कव्य को नव्य रुमानियत और नये राग से सँवारा हैं । वह राग–बोध का नहीं राग–वृत्ति का कवि हैं । 'शहर अब भी संभावना

है', 'बुहरि अकेला', 'संचयन थोड़ी सी जग्ह', 'घास में दूबका आकाश', 'होना पृथ्वी न होना आकाश', 'समय के पास समय' उनके काव्य संग्रह हैं ।

इनके अलावा विष्णु खरे का कविता संग्रह 'पिछला बाली' गिरधर राठी का 'निमित्त', 'बाहर–भीतर' और 'उनींदे की लौरी' है । तथा भगवत रावत का 'सच पूछो तो' और 'समुद्र के बारे में' कविता संग्रह हैं ।

ऋतुराज, कुभंज, ज्ञानेन्द्र, प्रयाग शुक्ल, सोमदत्त, ज्ञानेन्द्रपति, कुमार, कृष्ण, इब्बार रब्बी, असद जैदी, उदय प्रकाश, अरुण कमल, कुमार विकल, विनोद कुमार शुक्ल आदि भी इस दशक के उल्लेखनीय कवि हैं ।

६.२ आठवें दशक के हिन्दी काव्यों में नारी विषयक दृष्टिकोण

डॉ. बच्चनसिंह के आधुनिक 'हिन्दी साहिय का इतिहास' और 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' के आधार पर जिन कवियों और उनके कविता संग्रहों को आठवें दशक के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है जो इस प्रकार हैं –

भगवत राव का 'सच पूछो तो', लीलाधर जगूड़ी का 'भय भी शक्ति देता हैं,' 'घबराये हुए शब्द', 'ईश्वर की अध्यक्षता में', 'मंगलेश ड़बराल का हम जो देखते हैं' पहाड़ पर लालटेन, घर का रास्ता, आलोक धन्वा का दुनिया रोज़ बनती है', राजकमल चौधरी का 'विचित्रा', अशोक वाजपेयी का 'थोड़ी–सी जग्ह', 'तत्पुरुष', 'आविन्यों', 'समय के पास समय', धूमिल का 'संसद से सड़क तक', राजेश जोशी का 'दो पंक्तियों के बीच', 'धूपघड़ी' गिरधर राठी का 'निमित्त', चद्रकान्त देवताले का 'पत्थर की बैंच', विष्णु खरे का 'पिछला बाकी' ।

उक्त कविता संग्रहों की कविताओं में प्रस्तुत कवियों के नारी विषयक दृष्टिकोण को अनुसंधक ने अपने शब्दों में प्रस्तुत करने का विनम्र प्रयत्न किया हैं । जिनको कुल मिलाकर तेरह बिन्दुओं में विभाजित किया गया हैं । जो क्रमशः निम्न रूप से हैं, यथा–

६.२.१ *मातृत्व या मातारूप नारी*
६.२.२ *पतिपरायण व परतन्त्र नारी*
६.२.३ *गृहस्थ या गृहिणी नारी*
६.२.४ *बेबस–लाचार नारी*
६.२.५ *गरीबी की शिकार नारी*
६.२.६ *चरित्रसम्पन्न नारी*
६.२.७ *स्वेच्छाचारिणी नारी*
६.२.८ *रूपसी, सौन्दर्यसम्पन्न व रूपगर्विता नारी*
६.२.९ *विज्ञापन सुन्दरियों के रूप में नारी*
६.२.१० *प्रेमिका नारी*
६.२.११ *पतिता या समाजभ्रष्टा नारी*
६.२.१२ *दलित–पीड़ित नारी*
६.२.१३ *आकांक्षी नारी*

६.२.१ मातृत्व या मातारूप नारी :

हिन्दू समाज में नारी का मातृत्व रूप पूज्य है । पुरुष के लिए पत्नी का या प्रेमिका का जितना भी अधिक महत्त्व हो पर मातृत्व रूप की महत्ता उसकी उपयोगिता के समक्ष नारी के सभी रूप हेय हैं । नारी के इस रूप के प्रति प्रत्येक व्यक्ति श्रद्धावान हैं । माँ की आँचल की छाँव में जो आनंद प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । माँ का स्नेह व्यक्ति को विशेष प्रकार की

शांति प्रदान करता है, उसकी स्नेह छाया में पलकर व्यक्ति विनम्र, शालीन बनता है, अन्यथा उसका व्यक्तित्व उद्दण्ड़तापूर्ण हो जाता है । समाज में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं कि वैसी सन्तान जिसका बचपन माँ के आँचल की छाया से अलग व्यतीत हुआ हो वैसी सन्तान उद्दण्ड़ होती है ।

किन्तु माँ अपनी छत्रछाँव में अपने छोटे बच्चे को उसके पिता की मृत्यु हो जाने पर भी पिता की अनुपस्थिति खलने नहीं देती । वह पास–पड़ौस का झाड़ू–कपड़ा करके भी अपनी उमर काट देती है । किन्तु अपने ज़िगर के टुकड़े अपने बच्चे को पढ़ाकर आगे बढ़ाती है । बच्चे के भविष्य को बनाने के लिए माँ क्या कुछ नहीं करती । विधवा गंगाबाई का चित्र **भगवत रावत** ने काफी मर्मस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया है । माँ की इस निःस्वार्थ ममता की अभिव्यक्ति करते माँ के चरणकमल में श्रद्धा सुमन अर्पित करते कहते है कि –

बरतन झाड़ू पोंछा करके
किसी तरह बेटे को दसवाँ पास कराया
पर जब से उसका बेटा लग गया काम से
सबके चेहरे बदल गए हैं

(सोच रही है गंगाबाई – २५)

मज़दूरी करनेवाली औरत, जिसका जीवन वैसे भी दर्दनाक होता है । ऐसी दर्दनाक स्थिति में जब वह अपनी मिट्टी के मानव को जन्म देती है तो फूली नहीं समाती । अपने जीवन–यापन, अपनी सुख–सुविधाओं के लिए न सही अपनी संतान की आवश्यकताओं की अनुपूर्ति हेतु तपती दोपहर में भी मज़दूरी करने से होचकिचाती नहीं । अनवरत यत्नशील रहती है; यथा –

उसकी जरूरत नहीं होगी तो भी
छोड़कर अपना मिट्टी का संसार
तपती दोपहर में
मजदूरी करने
झाबुआ से भोपाल चली आयेगी । (मानव संग्रहालय – ३७)[५]

रवीन्द्रनाथ टैगोर से जब किसी भावक ने पूछा, कि ''गुरुदेव, यह विश्व कब तक चलेगा ?'' तब गुरुदेव ने उत्तर दिया ''वत्स, जब तक मनुष्य की गोद में एक नया बच्चा जनमता रहेगा तब तक यह विश्व चलता रहेगा ।'' किन्तु आज एक नया दौर शुरू हुआ है, गर्भपात का । लड़के का नहीं लड़की का । अब मैं और आप सोच सकते है, कि विश्व कब तक चल सकता है । नारी की संपूर्णता व सार्थकता उसके मातृत्व धारण में है । जब वह माता बनती है, तो बेसाख़्ता माँ को माँ की याद आती है, पिता की नहीं । **राजेश जोशी** ने माँ के प्रति अपना दृष्टिकोण इन शब्दों में प्रस्तुत किया हैं ।

उसे रह–रहकर याद आती है
माँ
इन दिनों
इन दिनों
जब वह खुद
माँ बनने वाली है ।(माँ की याद १३७)[६]

नारी की अपने जीवन में सबसे बड़ी दो चाहतें रहती है, एक शादी और दूसरी बच्चा । स्त्री अपने जीवन में शादी करके तो खुश होती है किन्तु माँ बनते वक्त ज्यादा ही खुश दिखती है । उसकी खुशी में एक और खिल–खिलाता सितारा जुड़ जाता है । कहते है स्त्री की सुन्दरता माँ बनते

वक्त और निखार लाती है । वह अपने आनेवाले भविष्य के लिए क्या कुछ नहीं करती । क्या कुछ बुनती करती नहीं ।

पुराने कपड़ों के बक्से से सामान निकालते हुए प्रकट हुए अचानक
ऊन के वो दो नन्हे मोज़े
याद आये दिन जब दुपहर की गुनगुनी धूप में बैठी
बीच–बीच में देखती हुई अपना पेट
मन ही मन मुस्कुराती पत्नी
बुनती रहती थीं इन्हें

(दो नन्हे मोज़े – ४४)[७]

६.२.२ *पतिपरायण व परतन्त्र नारी :*

कहा जाता है – विवाह होने पर नारियों के जीवन में शान्ति की स्थापना होती है क्योंकि उसका सहारा उसका पति उसके साथ होता है । पति–पत्नी के लिए सम्बल है । इस सत्य को अस्वीकार भी किया जा सकता है । विवाह होने के बद नारी स्वयं को अधिक सुरक्षित समझती है । इस प्रकार एक क्षेत्र में अगर शान्ति की स्थापना होती है, तो एक क्षेत्र में अशान्ति भी रहती है क्योंकि वह क्षेत्र समस्याओं से भरा रहता है ।

आधुनिक सभ्यता में तथा आधुनिक शिक्षा प्राप्त परिवारों में बहू अपने मातृगृह की भाँति आचरण करती है । किन्तु मध्यमवर्गीय परिवारों में नारी के बहूरूप की स्थिति भिन्न है । उसे पतिपरायण, परतन्त्र रहना पड़ता है । किन्तु विभक्त पारिवारिक जीवन में पत्नी नौकरीपेशा है, तो स्वतंत्र रहती है । किन्तु यह स्वतन्त्रता क्यों ? और कितने प्रतिशत है, वह एक अनुसंधान का विषय है । किन्तु जो स्त्री संपूर्णतया पति आधारित है उसे आज्ञाकारी पत्नी बनना ही पड़ता है । भले ही कहा गया हो कि सात कदम साथ–साथ चले

ज़िन्दगी भर का साथ बन गया । मतकमाऊ औरत मर्द के हाथों की कठ़पुतली बन ही जाती है । भले ही उसका पति जुआरी या शराबी हो । नशे में धूत पति के पिघले धैर्य को अपने आप में समा लेने के लिए तैयार रहना पड़ता है । **चन्द्रकान्त देवताले** ने नारी के पतिपरायण व परतन्त्र रूप पर अपना दृष्टिकोण निम्नलिखित शब्दों में प्रस्तुत किया हैं ।

वह ऊँची सीढ़ी पर था
और देखकर इस तरह पत्थर अपनी औरत को
काफूर हो गया उसका प्रेम
नशा वैसा ही रहा थिगा हुआ
आकाश में ऊँचे ठिठकी पतंग की तरह
केवल बर्फ के टुकड़े की तरह पिघल गया उसका धैर्य ।

(वह आज़ाद थीं सुबकने के लिए – ३२)

फूल का फूल होना ही पर्याप्त है, खुशबू तो बाद की बात है । नारी–जीवन भी फूल की तरह है, जो काँटों में खिलता हैं । जिसे पति नामक तूफानी झोंका जकज़ोर के बिखराने की कोशिशें करता रहता है । किन्तु नारी सहनशीलता की मूरत है । जो अपने जीवन–दुखड़े के गीतों को गुन–गुनाकर खुश रहने की कोशिश करती रहती है । और कोशिश ही का तो दूसरा नाम जीवन है । ऐसी नारियों की किस्मत रोटी पकाने के तवे सी होती है । जो सिर्फ सुबकने के लिए ही आज़ाद होती है । क्योंकि ऐसी नारी परतन्त्र होती है यथा–

और वह रोटी लाने चौके में चली गई
'तवे सी किस्मत अपनी' बुदबुदाते हिचकियों को
रोकती रही

पर आँसुओं पर लगाम नहीं लगा पाई वह
वैसे ही रोटी लेकर पहुँची
तो उसकी किस्मत से
दहाड़ता हुआ मर्द, मूँछोंवाला सो चुका था वैसे ही
जूठे हाथ–मुँह, जूते मोजे समेत ।

(वह आज़ाद थीं सुबलने के लिए–३३)[६]

नदियाँ बहती हैं, तो दूसरों के लिए । ठीक नारी भी सदियों से दूसरों के लिए जीती हैं । समाज, पुत्र, पति आदि के लिए । नारी के जीवन की सब से महत्त्वपूर्ण इकाई पति है । पति–पत्नी में परस्पर विश्वास न हो तो जीवन का कोई महत्त्व नहीं हैं । विश्वास के गुलों से ही जीवन के व्यक्तित्व का गुलदस्ता सज़ सकता है । व्यक्तित्व खुद का होना चाहिए, दूसरों के प्रभाव से उत्पन्न नहीं । व्यक्तित्व ऐसा निर्मित करना चाहिए, कि लोग हमें देखकर आनन्दित हो जाये । आज समाज में ऐसी भी नारियाँ है, जो शादी के तीस साल बाद भी अपने मर्द को सड़क पार करने के लिए पूछती है । अगुआ करती ड़ग भरती है । खोये हुए साहस व व्यक्तित्व का नायाब नमूना हिन्दूस्तान के किसी भी कौने में मुआईना हो सकता है । ऐसा ही एक शब्दचित्र **लीलाधर जगूड़ी** ने काफी सुन्दर ढंग से चित्रित किया है, यथा –

अकेली औरत पार करना चाहती है सूनी सड़क
आगे बढ़ चुके पति को पीछे बुलाती है
जो कि लौट आता है गुस्से और कोफ्त में

(स्त्री प्रत्यय – ६२)[६]

समय मध्यकालीन युगीन हो या असभ्यता में सभ्य माना जानेवाला आज का युग हो । औरत की पहचान उसका पति ही है । अपवाद रूप यह बात

और है, कि कुछ पति महाशय पत्नी और ससुर की प्रतिष्ठा की संज्ञा से अभिज्ञात हैं । गाँवों में औरतों की पहचान का एक अलग ही रिवाज है । उनके पतियों के नाम या पदनाम बिगाड़कर नाम बना लिए जाते हैं । जैसे डाक्टर की बीबी डाक्टरनी और कलकटर की बीवी कल्कटराइन कहलाती हैं । बेंडी (पगली) किसनी भी एक ऐसी ही औरत है । जिसके पति का नाम किसना था, अब यह तक गाँव में किसी को पता नहीं । **राजेश जोशी** ने उस पगली औरत का चित्र कलम की कटार से तराशने का यत्न किया है, जो आस्वादनीय है ।

सारा गाँव उसे बेंडी किसनी के ही नाम से पुकारता था
कि उसका पागल होना जोड़ दिया गया था उसके नाम में
कि जैसे वह उसके नाम का ही हिस्सा हो
(क्यों रोई वो इतने बरस बाद १०४)[१०]

६.२.३ गृहस्थ या गृहिणी नारी :

भारतीय नारी की अनेकों विशेषताओं में से एक हैं, गृहिणीरूप । प्राचीन व मध्यकाल यहाँ तक कि आज के आधुनिक काल में भी नारी के गृहिणी रूप की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है । विवाहोपरान्त नारी की कर्मभूमि घर की चार दीवार ही मान ली जाती हैं । बहता नल, चीजों से बिखरा घर और घर की देख–भाल करते–करते अपने आप को भूल जाती हैं । चक्की पीसना, बच्चे पैदा–पालना करना और चूल्हे के धुएँ से आँखे मलने वाली को गृहिणी संज्ञा से अभिहित किया जाता है । क्या नारी की यह गलती हैं, कि वह अपने घर परिवार से प्रेम करती हैं ? घरेलू स्त्री हररोज़ अपने घर के कामकाज में व्यस्त रहती है । और अपने घर से प्रेम करती स्त्री हररोज़ नया स्वप्न देखती है किन्तु व्यर्थ, उसका अर्थ नहीं निकाल सकती क्योंकि घर से प्रेम

करती स्त्री हररोज़ ठगी जाती है । नारी की इस मानसिकता को **मंगलेश डबराल** ने काफी सुन्दर ढंग से प्रस्तुत की है ।

प्रेम करती स्त्री
ठगी जाती है रोज़
उसे पता नहीं चलता बाहर क्या हो रहा है
कौन ठग रहा है खलनायक
पता नहीं चलता कहाँ से शुरू हुई कहानी
(प्रेम करती स्त्री – १५)"

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है । इस विधानानुसार नारी की स्थिति में भी काल–क्रमानुसार परिवर्तन आया । नारी अब घर की चार–दीवारी तक सीमित न रहकर विश्वफलक पर छाने लगी । उसकी दास्ताँभरी ज़िन्दगी में उन्नति का चन्द्रोदय हुआ । पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हुए । पुरुष ही की भाँति नौकरी–पैशा करने लगीं ।

आज के मध्यमवर्गीय विभक्त पारिवारिक अल्ट्रामोर्ड़न युगमें सही ढंग का जीवन जीना है, तो पति–पत्नी दोनों को कामकाज–नौकरी में लगना पड़ता है । किन्तु मूलतः बात यह है, कि स्त्री नौकरी करती है, फिर भी उसे घरेलू कामकाज गृहस्थी संभालनी ही पड़ती है । थकी–हारी आफिस से आई हो तो भी फिर से उसी रफतार में लग जाना पड़ता है । पुरुष नारी के घर के कामकाज में हाथ बँटाना चाहे तो, चाह कर भी वह सफल नहीं हो पायेगा । अपनी पत्नी के लिए चाय तक नहीं बना पायेगा । क्योंकि उसे पता ही नहीं होता कि शक्कर किस डिब्बे में है और चाय की पत्ती कहाँ रखी है । जिसके लिए वह पत्नी की मदद माँगेगा, सब व्यर्थ ! **राजेश जोशी** ने नारी की इस दूहरी भूमिका का काफी सुन्दर ढंग से वर्णन किाय है । जैसे कि

साड़ी का पल्लू कमर में खोंसती हुई वो आती है
मुझे हटाते हुए कहती है– 'हटो, तुम्हें नहीं मिलेगी कोई चीज़' ।
होठों को तिरछा करती अजीब ढंग से मुस्कुराती है
मुश्किल है उस मुस्कुराहट का ठीक–ठीक अर्थ
समझा पाना
जैसे कहती हो मेरी सृष्टि है
तुम नहीं जान पाओगे कभी
कि किन बादलों में रखी हैं बारिशें, किनमें रखा है कपास ।

(उसकी गृहस्थीं – ४०)[१२]

गरीब की बीवी हर किसी की भाभी । और ऐसी भाभी माँ के रूप में नहीं भोग्या की नज़र से देखी जाती है । ऐसी है निम्नवर्गीय गृहिणी की स्थिति । एसी गृहिणी की किस्मत में बच्चे की 'फटे हुए दूध से रोने' की आवाज़ और भूख का जायका बदलने के लिए कुम्हड़े में पकती सब्जी हैं । खुद का उदास, उतरा–सा पीला फक चेहरा । जिसके बदन पर अपने अंग को ठीक से ढंक सकनेवाली साड़ी तक नहीं है । आज की इस निम्नवर्गीय घरेलू नारी की स्थिति काफी दयनीय है । शीलवान नारी के वस्त्र फटे–टूटे हो तो उसकी ओर हरकोई ऐसे देखता है, जैसे उनकी आँखों में कुत्ते भोंकते हो । ***धूमिल जी*** ने इस चित्र को धड़ल्ले से खिंचा है ।

उसकी फटी हुई साड़ी से झाँकती हुई पीठ पर
खिड़की से बाहर खड़े पेड़ की
वहशत चमक रही है

(कवि १९७०–६४)[१३]

६.२.४ बेबस–लाचार नारी :

प्यास और प्यास की टकराहट का ही दूसरा नाम नारी है । नारी जीवन के कुछ दर्द छूटते ही नहीं, कुछ दर्द छोड़े भी नहीं जाते । दर्द और नारी पर्याय हैं । नारी के जीवन में कई ऐसी बातें आती हैं, जो उसे बेबस–लाचार बनने या हो जाने के लिए मज़बूर कर देती हैं । मजबूरी की दूसरी संज्ञा समर्पण की ही ओर जाती है । नारी अकेली घर में हो या रास्ते से गहरी रात को चलती आती है, लेकिन उसकी आपत्ति की आवाज़ किसी को सुनाई नहीं देती । उसकी आवाज़ सुनकर कोई ठिठक ने तक का साहस दिखाला नहीं पाता । नारी की इस बेबसी का वर्णन कर **मंगलेश ड़बराल** ने बहरे कानों को सुनाने के लिए बम फेंकने का काम इन शब्दों में किया हैं ।

उसने कुछ कहा
एक गहरी रात में
जब कहीं कुछ सुनाई नहीं देता
और लोग सोने जा चुके होते हैं
(चौराहे पर – २६)[१४]

तलवार की धार पर चलना आसान है लेकिन नारी का अपने अनागत से सामना करना बड़ा ही कठिन है । क्योंकि नारी का भविष्य साँप की तरह है, जिसे बनाने के लिए विपरीत परिस्थितियों से बचने हेतु यत्नशील रहना पड़ता है । वरना वह अगले दिन अपनी ओर आती मृत्यु तक को पहचान न पायेगी ।

वह अकेली थी उस रात
वह कहीं जा रही थीं अपना बचपन छोड़कर
कितने सारे लोगों द्वारा आतंकित

कितने सारे लोगों द्वारा सम्मोहित
कितने सारे लोगों की तनी हुई आँखों के नीचे
कितनी झुकी हैं उसकी आँखें
कि वह देख नहीं पाती अपनी ओर आती मृत्यु

(अगले दिन – १७)

स्त्री का विगत जीवन एक खूफिया इतिहास है । उसके लिए विगत जीवन एक अनजाने में या जानबूझकर देखा गया एक दुःस्वप्न है, या फिर ज़रा–सा अफसोस मात्र । ऐसे अपने बचपन और आँसुओं से घोंटा–सा जीवन ढ़ंककर किसी को भी समर्पित हो जाती है । क्योंकि प्रेम में समर्पित होना सहरा में गुल खिलने के बराबर है किन्तु बाकी समर्पण–समर्पण नहीं सिर्फ सामाजिक ढाँचे का समझौता है जैसे कि –

वहाँ होती है उसकी बहुमूल्य देह ।
व्यर्थ जाती हुई ।
उसके कितने अकेले स्तन
उसकी देह में समाते हुए ।
वह आँखें बंद कर लेती है ।
और गुज़र जाने देती है अपने ऊपर ।
सारा दर्द अंधकार और इतिहास

(दुःस्वप्न – २६–२७)[१५]

पृथ्वी और नारी दोनों महान है क्योंकि वे दोनों ही अपने आप पर बीतती पीर की शिकायत किसी को नहीं करती, बस सहती जाती है । यही एक शाश्वत गुणधर्म है, जिसके कारण नारी का अस्तित्व बरकरार है । सहनशीलता के व्यक्तित्व के कारण ही नारी को हर कोई अपने पाँव की जुती

समझता है । नारी और घाँस में कोई फर्क नहीं समझा जाता । जिसे कोई भी गधा अपने आपको घोड़ा (हेवान) समझकर अपने पेरों तले रौंद सकता है । नारी के प्रति अपनी सहानुभूति को **चन्द्रकान्त देरताले** ने इस शब्दों में व्यक्त की है ।

अँधेरा होने पर वह खुद मिलेगी बाहर ।
कपड़े नहीं, देह ही नहीं सुखाने के लिए
हड्डियों तक को बिछा देगी स्याह चट्टान पर
फिर खून और पसीने की गंधसे भरी पूरी
वह माँ हो जाएगी ।
अँधेरे के शिशुओं को स्नान–पान कराती पृथ्वी ।

(अँधेरा होने पर – १६)

नारी का जन्म से मृत्यु तक का उसकी खुशी–गम का कोई सही हमसफर है तो वह आँसू हैं । आँसू अनमोल रतन है । स्वर्ग का आबदार मोती भी बे–आब लगता है, उस मोती के सामने । ऐसे अमूल्य आँसू उस पर जाया किये जाने चाहिए, जो उसकी कद्र जानता हो । किसी लल्लू–पंजु पर इन्हें खर्च करना व्यर्थ बात हैं । आँसू और नारी का मणिकांचन योग अनादि काल से चला आ रहा हैं । कहा जाता है नारी का सब से बड़ा हथियार आँसू है । यद्यपि घड़ियाली आँसू है तो बात सही हैं । किन्तु एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी है, कि मामूली वज़हों से नारी कभी अकेले में नहीं रोती । क्योंकि हमारे समाज में कुछ नारियाँ अपना दुखड़ा हथेली पर लेकर नहीं घुमती, वह तो बे–आवाज़ पत्थर और पत्तियों की तरह अपना रोना रो लेती हैं । अपनी आँखों से बहते अनमोल मोतियों को कोई देख न ले अतः

वह नहाने वक्त रो लेती है । कितना बड़ा तिरोहित नग्न सत्य है ! क्योंकि –

वह जानती है पानी बहा ले जायेगा ।
आँसुओं और सिसकियों को चुपचाप ।
शिनाख्त नहीं कर पाएगा कोई भी ।
वह तक नहीं जो कल्पना में देख सकता होगा ।
बारिश में टपकती ओस की भी बूँद ।

(नहाते हुए रोती हुई औरत – ३७)[१६]

मनुष्य परिस्थितियों का गुलाम है । वह वही करता है, जो परिस्थितियों उस से करवाती हैं, जिस पर नारी हो तो परिस्थितियाँ उस पर कुछ ज्यादा ही हावि हो जाती हैं । बात सही हैं कि संतानों का माता–पिता के प्रति कुछ कर्तव्य होता हैं । वही बात माता–पिता के लिए भी लागू होती है । माता–पिता ही अंधे होकर अपनी संतान को आय का झरिया समझने का यत्न करते है । तिस पर भी बेटी हो, तो परिणाम पीले खत तक जा सकता है । **विष्णु खरे** ने इस संदर्भ में नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है ।

जब घर से निकलती है ।
तो उसे जान–बूझकर सपाट बनाए गए ।
अपने सीने का पश्चात्ताप नहीं ।
पड़ोसियों के अधसिले कपड़ों का ख्याल रखता है ।

(लड़की – ६५)

यही कारण है कि सही प्यार की खोज़ में लालटेन की छाँव में पीले खत की तलाश करने के लिए लाचार बन जाती है । इस आस में कि शायद पीले खत की दोस्ती मंज़िल बन जाये ।

और रात गए लालटेन की कसैली रोशनी में ।
खोजती है पुरानी किताबों के बीच ।
एक पीला खत ।

(लड़की – ६५)[१७]

आज के सुधरे हुए सभ्य जनतन्त्र में अक्सर छोटी मछली बड़ी मछली का शिकार करती है । किन्तु छोटी मछली उलटकर वार तक करने का यत्न नहीं करती । क्योंकि अपेक्षा की मुट्ठी में ही चाहत का मोती होता है । यही नारी की बेबसी–लाचारी है । एक साड़ी पर रात भर सहशयन को राजी हो जाने वाली नारी की स्थिति का वर्णन ***धूमिल जी*** ने इन शब्दों में किया हैं ।

उस महरी की तरह है, जो
महाजन के साथ रात–भर
सोने के लिए
एक साड़ी पर राजी है ।
सिर कटे मुर्ग की तरह फड़कते हुए
जनतन्त्र मे

(जनतन्त्र के सूर्योदय में – १३)

आज के शहरी व सभ्य समाज में धन की आपा–धापी में ऐसी अवनति हुई हैं कि बात मत पूछो । अभिभावकों के मन की अंधियारी कोठरी में अतृप्त आकांक्षाओं की वेश्या बुरी तरह खाँस रही होती हैं । जिसकी अनुपूर्ति हेतु अपने भविष्य–बच्चों का हथियार बनाते हैं । ताकि सुख–चैन का जीवन

बसर कर सके । जिस का शिकार आखिरकार लड़की ही होती है । जहाँ लड़कियों को उपार्जन का एक मात्र उपकरण मान लिया जाता है, वहाँ नारी की हालत कुछ निम्न रूप से हो सकती है ।

जहाँ बूढे
खाना खा चुकने के बाद अन्धे हो जाते हैं
जवान लड़कियाँ अँधेरा पकड़ लेती है

(मकान–५०)[१८]

नारी जीवन को कोई भी जूजी समझकर खेल सकता है । ऐसा घटिया किस्म का बचकाना खेल–खेलना कुछ समाज के असामाजिक मनुष्यों की फ़ितरत होती है । जिसका शिकार नारी बनती है । ऐसी काली छाया उसे झकझोर देती है । ऐसी काली छायाओं से आतप्त नारी आखिरकार पाप–पुण्य की खूंटी पर अपनी ज़िन्दगी रख देती है । नारी की इस भावना को **अशोक वाजपेयी** ने बड़े यत्न के साथ प्रस्तुत किया है ।

और पापपुण्य की पुरानी खूँटी पर
उतारकर रख दी अपनी जिन्दगी
कोई दूसरा आया
और उसे पहनकर गली में खो गया ।

(गली में – ४४)[१९]

६.२.५ गरीबी की शिकार नारी :

सुख–दुःख, धूप–छाँव परस्परावलंबित हैं । दुःख सबको माँझता है । मँझन से चमक ज़रूर आती है, किन्तु तब तक गरीबी उसे अपने चंगुल का शिकार बना चूकी होती है । नारी को गरीबी का शिकार होने में ज्यादा देर नहीं लगती । गरीबी के कारण नारी जीवन में कई सारी विपरीत परिस्थितियाँ

पैदा होती है । जो नारी को कई उतार–चढ़ाव पार करने को मज़बूर कर देती है । इस दुनिया की सब से बड़ी व खतरनाक शत्रु भूख है । जो गरीबी से उत्पन्न होती है । जो किसी को कुछ भी कर गुज़रने को मज़बूर कर देती है । जिसका शिकार बनी नारी को अपने किसी भी ड़र को छिपाने के लिए मज़बूर कर देती है । **मंगलेश ड़बराल** गरीबी की शिकार नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते लिखते है कि

आस–पास कभी कोई आदमी दिखता था
हंफता अंधेरे में जाता हुआ
कभी कोई औरत दिखती थी
अपना डर छिपाती

(आते–आते ११)

आज की अजीबो–गरीब भावशून्यता से भरे गगनमण्ड़ल को शहर की संज्ञा दी जाती है । जहाँ गरीब–गबरू औरतों की स्थिति बड़ी दयनीय है । वहाँ हर कोई अपनी धून में है, एक–दूसरे को धक्का देते चलते है और चले भी जाते हैं । किसी के भीतर किसी की पीड़ा दस्तक ही नहीं देती ।

अँधेरे में फूले पेट की एक औरत ऊँघती है ।
उसके तीन मरियल बच्चे
आपस में पिटते हैं

(आखिरी वारदात – ३३)[२०]

आज हिन्दुस्तान में ज्यादातर गरीबी–बेकारी–भुखमरे का अकालदर्शन यत्र–तत्र होता हैं । अपनी इस गरीबी–बेकारी के समयव्यापन का उपकरण नारी को बनाकर उसे जैसे बच्चे पैदा करने का यंत्र स्थापित कर दिया गया है । जिससे कि बच्चे उसके लिए भीख माँगकर खाने को रसद ला सके ।

जिस से जीवन में बसन्त बुनना सफल माना जाए । गरीबी की शिकार बनी नारी की इस स्थिति का वर्णन *धूमिल जी* ने निम्न रूप से दिया है ।

मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा –
'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत है'
इससे वे भी सहमत हैं
जो हमारी हालत पर तरस खाकर, खाने के लिए
रसद देते हैं ।
उनका कहना है कि बच्चे
हमें बसन्त बुनने में मदद देते हैं

(अकाल–दर्शन १५)[२१]

६.२.६ *चरित्रसम्पन्न नारी :*

शालिन व्यक्तित्व न हो तो जीवन का कोई महत्त्व नहीं है । नमक के बिना भोजन और चरित्र के बिना जीवन दोनों फिके लगते हैं । बादल तभी बरसते हैं, जब पानी से लबालब भरे हो । चिनगारी डालने पर भी आग न लगे तो समझना चाहिए, कि वह गया । जी से और जहाँ से, किन्तु हमें न जी से जाना है न जहाँ से जाना है ! इसी जहाँ में रहना है और जी–जान से रहना है । चरित्र किसी एक बात से नहीं जीवन के सारे पक्ष सम्मिलित होकर बनता हैं । चरित्र से ही आदमी लचीला बनता है । जिस प्रकार महासागर बुन्दों का समूह है और रेखा बिन्दुओं का अस्तित्व । वैसे ही चरित्र भी छोटी–छोटी इकाइयों का समूह हैं । पुरुष–चरित्रहीन होगा तो उसे समाज स्वीकृति दे देगा । किन्तु आज का पाखण्ड़ी समाज नारी को वही स्थान न देगा, जो पुरुष को देता है । नारी का चरित्र उस रेशमी कपड़े की तरह है,

जिसे कोई भी जुलाहा अपनी मुट्ठी मे कैद कर सकता है । अतः नारीजीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण व अमूल्य पूँजी चरित्र है ।

आज की भारतीय नारी का चारित्रिक आदर्श सीता, सावित्री, अनसूया या झाँसी की रानी नहीं अपितु उसका आदर्श ऐश्वर्या रॉय, बिपाशा बसु, जेनिफर लोपेज और ड़ेमी मूर हैं । उसका आदर्श ऐसी नटियाँ व अमेरिकी नारी हैं । वह अपने व्यवहार, रहन–सहन अमेरिकी स्वतन्त्र (स्वच्छन्द) नारी को देखकर बनाती है । अमेरिकी नारी की स्थिति यह है कि उसे मुस्कुराते आना चाहिए । बनावटी–कृत्रिम मुस्कराहट ही सही । यदि वह ऐसा नहीं कर सकती तो कहीं की नहीं रहती । क्योंकि वहाँ का समाज उपयोगितावादी समाज है । जिस चीज़ की उपयोगिता न हो उसका कोई महत्त्व नहीं है । हमारी भारतीय सन्नारियाँ उस उपयोगितावाद की ओर चल नहीं रही बल्कि दौड़ लगा रही है । **मंगलेश ड़बराल** नारी की चारित्रिक गरिमा को व्यक्त करते हुए कहते है –

कि आलीशान दूकान में सामान बेचती
एक दुबली–सी लड़की
जो कुछ सोचती हुई–सी बैठी थीं
एक दिन एक ग्राहक के सामने मुस्कुराना भूल गयी
शाम को उसे नौकरी से अलग कर दिया गया
यह बात जब उसका पति उससे अलग हुआ
उससे एक दिन बाद की है

(अमेरिका में कविता – ७६)[२२]

६.२.७ *स्वेच्छाचारिणी नारी :*

नारी सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् हैं । किन्तु उसे बंदिनी की तरह रखना पाप है । स्वतन्त्रता जीव मात्र का अधिकार है । किन्तु अधिकार खोकर बैठे रहना भी पाप है । अतः न्यायार्थ उसकी कल्पनाओं को साकार रूप देने के लिए आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, आदि–आदि स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए । कुछ सम्भ्रान्त परिवारों को छोड़कर आज भी नारी स्वतन्त्र नहीं है । कुँवारी नारियाँ पिता की और विवाहिता नारियाँ पति की इच्छाओं पर जीवन यापन करती हैं । अतः वे न तो स्वतन्त्र चिन्तन कर सकती है और न ही स्वतन्त्रतापूर्वक किसी कार्य को संपन्न कर सकती है । कुछ सम्भ्रान्त व निम्न वर्ग की नारियाँ ही स्वतन्त्र है । जो हर प्रकार के बन्धनों से मुक्त है । और अपनी इच्छाओं को कार्य रूप देने में स्वतन्त्र है । किन्तु आज स्वतन्त्रता का शाब्दिक अर्थघटन स्वच्छन्दता, स्वेच्छाचरण कर लिया गया है । यहीं से नारी अवनति का श्रीगणेश होता हो नारी जब स्वेच्छाचारिणी बन जाती है, तब मर्यादा की सारी परिसीमाएँ लाँध जाती है । और अंततोगत्वा पश्चात्ताप करने के लिए भी सक्षम नहीं रह पाती । अंततः आठ–आठ आँसू रोती है, जो उसकी एक मात्र महत्त्वपूर्ण लाक्षणिकता हैं ।

नारी स्वेच्छाचारिणी बनकर अपने लिए हर मनचाही चीज़ प्राप्त करने के लिए हमेशा तत्पर रहती है । जिस के लिए वह चिड़िया की तरह उड़ती है, फड़फड़ाती है । आखिरकार भी अपनी मनचाही मंज़िल पाने में असफल होती है । शायद मकाम तक पहूँच भी जाये तो खरी नहीं उतरती । अंततोगत्वा समाज की नदी में पत्थर बन जाती है । कश्मकश व विपदाओं से घिरा उसका मस्तिष्क तय नहीं कर पाता कि क्या से क्या हो गया । ऐसी नारी के

प्रति अपना नज़रिया प्रस्तुत करते हुए **मंगलेश ड़बराल** नारी की सोच को प्रस्तुत करते हुए कहते है कि

मैं देर तक सोचती हूँ अंधकार
उसने कहा तय नहीं कर पाती
कि चिड़िया हूँ
या पत्थर

(वह – ३३)

स्वेच्छाचारिणी नारी अपने स्वच्छन्द व स्वतन्त्र व्यवहार से आर्थिक रूप से सम्पन्न हो जाती है । हर चीज़, हर कला प्राप्त कर लेती हैं किन्तु मन की शान्ति नहीं पा सकती । उस के जीवन की उपलब्धि का निष्कर्ष सिर्फ और सिर्फ उदासी ही होती है । एक अमीर लड़की पाँच पुरुषों को अपने आलीशान घर पर उनमें से किसी एक का चयन करने बुलाती हैं किन्तु आखिरकार उस अमीर लड़की ने लाचारी और जीवन की व्यर्थता इन शब्दों में व्यक्त की हैं ।

यह रही मेरी कला
फर्श और दीवार पर धुँधली रोशनी में
यहीं पायी है मैंने सच्ची निरर्थकता
यही है मेरी उदासी, मेरा प्यार

(अमीर लड़की – ६५)[२३]

जवानी वो आग है, जिसकी लपटों पर पानी छिड़कना उसे ओर भड़काने के बराबर है । ऐसी कुछ नवयौवना युवतियाँ अपनी युवावस्था को ही आनेवाले बुढ़ापे से बेखबर होकर रोज़गार समझती हैं । और मूल्यवान शीलधन लूटा देती है । जानकर भी बेखबर बनकर

किसी चट्टान के पीछे
सन्नाटे में एक एक एक स्त्री सिसकती है
अपनी युवावस्था में
अगले ही दिन आने वाले बुढ़ापे से बेखबर
(एक स्त्री – २१)

आज तमाम वर्ग की नारियाँ सामाजिक स्वातन्त्र्या के कारण नौकरी–पेशा कर सकती हैं । यहाँ तक कि गाँवों में भी शिक्षिका और नर्स के रूप में नारी नौकरी करने लगी हैं । शहर की बड़ी–बड़ी कम्पनियों में भी नारियाँ काम करती है । किन्तु आज के प्रतिस्पर्धी युग में आर्थिक शोषण इतना हो रहा है कि बात मत पूछो । खास करके शहरों में नौकरी करनेवाली लड़कियों को शहरी हवा के पंख लग जाते है जिस से वह हैसियत से ऊँची उड़ान भरना चाहती हैं । नौकरी की आय उसके नूर–ए–नख़रों को निख़ार नहीं सकती । अंततः वह दफतर से छूटकर अपने शोख पूरे करने के लिए कटे हुए पौधों की तरह फैंल जाती हैं । यह तो पुरानी बात है, आज तो कॉलगर्ल तक की प्रगति हो चुकी है । इसी लिए कवि कहते है कि –

मैंने देखा है कई साल से
स्तब्ध लड़कियों को
जो दफ़तरों से निकलकर
कटे हुए पौधों की तरह फैल जाती हैं
सड़कों पर कहीं न देखती हुई
मैंने मकानों के पिछवाडे से उठती हुई
भूख देखी है
तहस–नहस रात के कठघरे में चिल्लाते
(आखिरी वारदात ३३)[२४]

आधुनिक युगीन नगरीय नागरी की पाश्चात्य स्वच्छन्द विचारधारावाली मानसिकता उसे ओर स्वेच्छाचारिणी बना देती है । विवाह पूर्व ही सारे अनुभव प्राप्त कर लेना ज़रूरी मानती हैं । ऐसा प्राप्त अनुभव उसके लिए एक गर्व की बात होती है । और बात गर्भपात तक आकर रुकती है, जो उसके लिए एक मोर्ड़न फैशन है । यह आज के टी.वी. कल्चर की फलश्रुति है । उसके लिए प्रेम सिर्फ आबादी वाली बस्तियों में मकान की तलाश है, घर की नहीं । जैसा कि ***घूमिल जी*** कहते है, कि

एक सम्पूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गर्भाधान की क्रिया से गुजरते हुए
उसने जाना की प्यार
घनी आबादीवाली बस्तियों में
मकान की तलाश है
लगातार बारिश में भीगते हुए
उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद
धर्मशाला हो जाती है

(कविता–०७)

आज की नारी यह तथ्य जानती है कि पुरुष अपने मतलब के निकल जाने के बाद किसी भी रूप में सहायक साबित नहीं होता । फिर भी वह नहीं संभलती । नारी यह भी जानती है कि पुरुष के लिए सौन्दर्य और महुवे के फूल में कोई फर्क नहीं । फिर भी नारी अपनी रस लोलुपता व उद्देश्य की अनुपूर्ति हेतु महुवे के फूल–सी मदहोश बनने की कोशिश करती है ।

सौन्दर्य में स्वाद का मोल
जब नहीं मिलता
कुत्ते महुवे के फूल पर
मूतते हैं

(वसन्त – २१)[२५]

६.२.८ रूपसी, सौन्दर्यसम्पन्न व रूपगर्विता नारी :

नारी सौन्दर्य बाह्य व आंतरिक दो रूपों को धारण करता है । आजकल आंतरिक सौन्दर्य की ओर किसी की नज़र नहीं जाती । बस, बाहरी नज़ारे पर अटके हैं । और लोग जीवनपथ पर अटके और भटके हैं । नारी आंतरिक सौन्दर्य को समृद्ध बनाने की बजाय बाहरी सौन्दर्य को निखारने लगी है । किन्तु जो क्षण–क्षण नवीनता प्रकट करे वह रमणीय है, सुन्दर है । उसे सौन्दर्य कहते है, जिसमें दूसरों को अपनी ओर खिंचने की कशिश हो । सौन्दर्य वह है जो हंमेशा आनन्द प्रदान करे । आज खिला–खिला कल बुझा–बुझा हो वह सौन्दर्य–सौन्दर्य नहीं होता । हर पल नयापन हो वह सौन्दर्य है । जिसे प्रकट करने का माध्यम भाषा है, नहीं कि बाहरी दिखावे की कोस्मेटिक सर्जरी । नारी की एक लाक्षणिकता उसका सौन्दर्य है, बात सही है । किन्तु सोने की सुन्दर कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में ड़ाल नहीं सकता । आज लोग उस कटार को अपने हृदय में ड़ालकर आत्महत्या कर रहे हैं । नारी भी अपने बाह्य सौन्दर्य को लेकर मगरूर हो गई है । जिसे पोषने का श्रेय किसी को जाता है तो वह नारी ही है ।

खूबसूरती खुदा की देन है किन्तु सुन्दरता को भी सज़ाने की ज़रूरत पड़ती है । यह सजावट संस्कारों की होनी चाहिए । नारी सौन्दर्य निकम्मेपन का पर्याय है, ठीक पुरुष निठल्लेपन का । नशा कई प्रकार का होता है, शराब

का, रूपयों का, अच्छे पद का आदि–आदि । किन्तु आज के उपयोगितावादी अत्याधुनिक युग में एक वर्ग में नया ही नशा छाया हुआ है । हालाँकि वह लम्बी रेस का घोड़ा नहीं बन सकता । वह नशा नारी को अपनी सुन्दरता का नशा है । **लीलाधर जगूड़ी** ने इस बात को बखुबी प्रस्तुत की है ।

जो स्त्रियाँ सुंदर होती हैं वे हमेशा किसी धुन में रहती हैं ।
जैसे नशें में हों
जो ऐसी नहीं लगती वे सरल स्त्रियाँ होती हैं
सरल स्त्रियों के बहुत कठिन दुःख हैं
उनके सीधेपन में दिखते रहते हैं
उनके नकचढ़े दुःख

(कष्टसाध्य– ८६)[२६]

आजकल विदेश अरे ! हमारे देश में भी राज्यों और शहर–शहर में राष्ट्रभावना विकास प्रतियोगिताएँ नहीं, नारी–सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ हो रही हैं । जिस से नारी सौन्दर्य की इज़ाद की जाती है । सिर्फ बाह्य सौन्दर्य की आंतरिक सौन्दर्य की नहीं । इस प्रतियोगिता में एक नंगी नाचती औरत कहती है ''मैं अकेली नहीं हूँ, मैं स्वयं बाजार हूँ, अबला नहीं हूँ ।'' उपनिषदों में जिसे नारायणी कहा गया है क्या वह यही है ? प्रश्न उठता है, कि नारी नारायणी है ? या नारायणी बनने की कोशिश कर रही है ? मेरी सोच कहती है, कि ऐसी नारी न नारायणी हो सकती है न नारी वह कुछ हो सकती है तो नारी जाति का बहुत बड़ा कोढ़ हो सकती है । जिसे **गिरधर राठी** ने इन शब्दों में प्रस्तुत करने का यत्न किया हैं ।

बंद करो रोना–और–धोना
मैं अबला नहीं

दीवार पैर रंग मैं

मेरे पैर जादुई कालीन

घड़ी मैं कलाई पर

(सौन्दर्य प्रतियोगिता – ६५)

नारी जगत को प्रेरणा देती है कि रोना–धोना छोड़ो क्योंकि अब हम अबला नहीं सौन्दर्य के कारण सबला हो गई हैं । जैसे कि–

खड़ी मैं

उन्मुक्त

स्वयंवरा

मैं निरा अम्बार

नई नई चीजों का ! (सौन्दर्य प्रतियोगिता – ६५)[२७]

इस से स्पष्ट होता है कि स्वतन्त्र–स्वच्छन्द नारी वास्तव में सौन्दर्य साम्राज्ञी है ।

अशोक वाजपेयी का नारी विषयक दृष्टिकोण सीमित है । वे अपने निजी नेह की काल्पनिक नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते है । कवि की नायिका सौन्दर्य सम्पन्न, वैभवशालिनी, निष्कलंक हैं । उसके होंठ तराशने में जन्मान्तर लगे है । फिर अभी–अभी उगी पत्तियों की तरह ताजे हैं । वह उन होठों से मुस्कराती है तो –

उसी रास्ते आती है हँसी

मुस्कुराहट

वहीं खिलते है शब्द बिना कविता बने

वहीं पर छाप खिलती है दूसरे ओठों की

(ओठ–३०)[२८]

६.२.६ *विज्ञापन सुन्दरियों के रूप में नारी :*

आज का युग विज्ञान तकनिकी का युग है । जिस की महत्त्वपूर्ण कही जानेवाली उपलब्धि मूर्ख–बक्सा यानी टी.वी. है । जो हमारे जीवन का पथप्रदर्शक है । हमारे जीवन के जिम्मेवार सिर्फ हम ही होने चाहिए । हमारे जीवन के पन्ने पर सिर्फ हमारे ही हस्ताक्षर होने चाहिए, किसी और के नहीं । क्योंकि जीवन हमारा है और हमें जीना है । ऐसे जीवन की कोइ एहमियत नहीं है, जो किसी दूसरे के निर्देशन मुताबिक चले । आज हमारे भारतीय समाज की स्थिति ऐसी ही है । जिसे कैसे रहना है, कैसे चलना है, कैसे कपड़े पहनने है, कौन–सी क्रिम, पावड़र या साबून का इस्तमाल करना है जिसका निर्धारण कोई दूसरा करता है । इन बातों को व्यक्ति खूद तय नहीं करता बल्कि टी.वी., अखबार, मेगेझिन व फैशन–शो तय करते हैं कि जनता की आवश्यकता क्या है ? विज्ञापन व्यक्ति के जीवन के साथ अभिन्न व अनिवार्य कोढ़ के रूप में चिपका हुआ है । और इन विज्ञापनों में पुरुषों से ज्यादा नारियाँ ही काम करती हैं । चलाने की कार, मोबाइल, फेविकोल, बॉलप्वाइन्ट, घड़ी और हज़ामती आधुनिक उस्तरों का विज्ञापन नारियाँ देती हैं । इन सारी विज्ञापन की चीज़ों से विज्ञापन सुन्दरियों का वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है । यही विज्ञापन की नदियाँ हमारे जीवन की आवश्यकता–अनावश्यकता व कौन–सी चीजें हमें जच सकती हैं और कौन सी नहीं जिसका ठेका संभाले है । ये ऐसी नारियाँ है जिस का स्वयं का जीवन रेगिस्तान बना हुआ है, जहाँ फूल खिलने की या गीत के स्फूरने की कोई गुंजाईश नहीं है । ऐसी देवियाँ समाज को जीवन जीने का तरीका बताती है । क्योंकि आज लोग विचारों से बौने हो गये हैं । अतः ये विज्ञापन सुन्दरियाँ

हमें विचारशील व अनुकरणीय बनाने के लिए विज्ञापन के ज़रिए समाज–सेवा करती हैं ।

आधुनिक युगीन समाज विज्ञापन सुन्दरियों का गुलाम है । जो आज के नये बाज़ार की उपज है । इस नये बाज़ार को अपने विज्ञापन के लिए विश्वसुन्दरी की आवश्यकता पड़ती है । जो समाज के अप्रस्तुत जीवन में हर वक्त प्रस्तुत रहती है । गोबर थापती, उपले थापती, गरीब गबरू औरतों के मैल से पैदा हुई ये विज्ञान सुन्दरियाँ साबुन, पावड़र, क्रीम बेचकर आर्थिक स्त्रियाँ मान ली गयी है । यही कारण है कि विज्ञापन सुन्दरियाँ कठ़पुतलियाँ बन गयी हैं । यहाँ **लीलाधर जगूड़ी** का नारी विषयक पैना दृष्टिकोण दर्शनीय है –

कंपनियों की कठ़पुतलियाँ विज्ञापन सुंदरियाँ
एक अकर्मण्य–सा परिधान बेचती है
एक अस्वीकार्य–सा वस्त्र स्वीकार्य करवाती हैं
कम लंबाई वालों के बीच ज्यादा लंबी–लंबी बेजोड़ स्त्रियाँ
जिनमें बौद्धिक सौन्दर्य की तलाश उन्हें अबौद्धिक मान लेने से हुई है
ये स्वतःस्फूर्त सौन्दर्य की धनी भरोसे की स्त्रियाँ नहीं हैं

(विज्ञापन सुंदरी – २१)

ये सारी विज्ञापन की नटियाँ स्वतःस्फूर्त सौन्दर्य की स्त्रियाँ नहीं हैं । जिनके पीछे मुख का नहीं सुख का सौन्दर्य मानने वाली नारियाँ गायब हैं । क्योंकि कुछ लोग पैसों से खर्च होते हैं, कुछ दिमाग से । अतः

वह स्त्री कहाँ है जो इस ड्रेस की डीज़ाइनर है
वह कैंची के बराबर कैंची जैसी चलती स्त्री कहाँ है
जो समझती है देहदर्शन उसके जीवन का आदर्श नहीं
जो समझ बैठी है सिर्फ मुख का सौन्दर्य गया सुख का सौन्दर्य गया

(विज्ञापन सुंदरी – २१)

गारंटी और धोखा–घड़ी के युग में चीज़ों की बिक्री के लिए नारी एक मात्र अंग्रप्रदर्शन और अतिरंजनाओं का बहुत बड़ा ज़खीरा बनकर रह गई हैं । विज्ञापन की खूबसूरती व विशेषताएँ कम और नारी की कम कपड़ों की खूबसूरती ज्यादा दिखाई जाती हैं । पता ही नहीं चलता कि विज्ञापन किस चीज़ का है । क्योंकि विज्ञापन सुन्दरी गाती है कि ''मैं चीज़ बड़ी मस्त–मस्त हूँ'' क्या नारी चीज़ है ? अतः कवि कहते है, कि –

जो है उसे बेचते जाओ
नया खरीदो का पाठ सिखाया जा रहा है
नया वाहन ज़रूरी वाहन बताया गया है
जिसके लिए दिखाये गये हैं
कुछ अपारिवारिक स्त्रियों के विशिष्ट वक्ष
(बस अब और कितना – २६)[२६]

६.२.१० प्रेमिका नारी :

इस संसार के अस्तित्व का एक मात्र अढ़ाई अक्षर का मंत्र है 'प्रेम' । कहा जाता है दो प्रेम करनेवाले हृदयों के बीच में स्वर्गीय ज्योति का निवास रहता है । प्रेमोत्पत्ति के आधार धन–वैभव, बाह्य व्यक्तित्व और आंतरिक सौन्दर्य हैं । जो बाद में इन सारी चीज़ों से पर होकर सारे गुण–दोषों को भूल दिव्यता में परिणीत हो जाता है । नारी और पुरुष जिसकी दो ईकाइयाँ हैं । नारी सुन्दर है, कोमल है और संवेदनशील हैं । अतः वह प्रेम करने योग्य है । नारी में अपूर्व आकर्षण है । उसके रूप और कोमल स्वभाव पर आकर्षित होकर पुरुष उसे प्यार करता है । बदले में नारी प्रेम का अक्षय भण्ड़ार लुटाती है । पुरुष और नारी के प्रेम साहचर्य का परिणाम है वह सृष्टि । बचपन में माता–पिता तथा अन्य सम्बन्धियों के प्रति उपजा प्रेम

कालान्तर में प्रेमी–प्रेमिका के प्रेम में परिणत होता है । पुरुष–नारी एक–दूसरे से प्रेम करते है किन्तु सफल नहीं होते । यहाँ प्रेम की सफलता से तात्पर्य है वैवाहिक बन्धन में आबध्य होना । जीवन के कुँवारेपन का प्रेम अगर विवाह का रूप ले लेता है तो वही सफल प्रेम है । यथार्थ में प्रेम का स्वरूप निर्धारित करना दुष्कर है क्योंकि कुँवारेपन के प्रेमी–प्रेमिका वैवाहिक सूत्र में न बँधकर भी प्रेम को जीवित रख सकते हैं किन्तु समाज उसके लिए बाधक है ।

समाज में ऐसी नारियाँ देखी जाती हैं जिन्होंने अपने प्रेम को जीवित रखने के लिए सामाजिक नियमों को तोड़े हैं और सामाजिक रीति–रिवाजों के विरुद्ध वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए गये हैं । वैसी नारियों को प्रेम में सफल नारियों की संज्ञा दी जानी चाहिए । विवाहित नारी पर–पुरुष से प्रेम करती है और पति इस स्थिति से वाकेफ होकर उसे तलाक देकर स्वतन्त्र छोड़ देता है, तो वैसी नारियाँ भी प्रेम में सफल मानी जाती हैं । समाज पति–पत्नी के प्रेम को ही वैध मानता हैं । इसके अतिरिक्त कुँवारेपन में पुरुष नारी के प्रेम या वैवाहिक पुरुष नारी का पर–पुरुष नारी से प्रेम को समाज अवैद्य मानता है । कितने ही प्रेम सम्बन्ध जुड़ने से पहले ही टूटते देखे जा सकते हैं । कुँवारेपन का प्रेम जातिभेद, धर्मभेद के नाम पर टूट जाता हैं । जातिभेद के नाम पर समाज दो परिचित हृदयों को तोड़ता है और दो अपरिचित हृदयों का सम्बन्ध स्थापन करता है । यही प्रेम और प्रेमियों की अवदशा है ।

नारी जीवन में चाहत का हुजूम कुछ ज्यादा ही होता है । और बात भी सही है छोटी बात, छोटा काम, छोटी चाहत नहीं होनी चाहिए । हम से भी बढ़कर हमारी चाहत होनी चाहिए । क्योंकि जीवन में संसार की प्रत्येक चीज़ का अनुभव करना ज़रूरी है । वैसे भी जो भीग नहीं सकता वह सूख

जाता है । आदमी चला जाता है नाम रह जाता है । प्रभाव बना रहता है । प्रेम पलता है, पनपता है, पकता है जवानी की आग तब तक खत्म नहीं होती जब तक उसे शांत करनेवाला पानी के समान प्रेमी का इन्तज़ार खत्म नहीं होता **राजेश जोशी** ने नारी जीवन की तलाश की ललक को बखूबी प्रस्तुति की है –

मछुआरे अपने घरों की ओर जा चुके हैं
दूर ताड़ की छत वाली झोंपड़ियों से धुआँ उठ रहा है
फकत लहरों की धीमी और तेज होती आवाजें हैं
नाव की आड़ में एक लड़की खड़ी है अकेली
उसे किसी का इन्तजार है

(समय के स्वप्न की चीख – ८६)

आज के अफड़ातफड़ी के माहौल में किसी के पास वक्त ही नहीं हैं । सिर्फ धन के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं । ऐसे में एक रमणी अपने प्रिय को मिलने के लिए बड़ी बेसब्री से इन्तजार कर रही है वह भी

जीवन की न जाने कितनी आपा–धापी के बीच से
चुराकर लाई थीं वो इस समय को
जो धीरे–धीरे बीत रहा है

(रेस्त्राँ में इंतज़ार – ८८)

किन्तु उस रमणी का चश्मेनूर नदारद है । आया ही नहीं है, संगदिल । उसके भीतर अजीब–सी कसमसाहट है । घड़ी–घड़ी घड़ी देखती है । यह रमणी पाश्चात्य पेदाइश मिलन–मुलाकात के स्थान रेस्त्राँ में बैठी है । जो आज की युवा पीढ़ी की नारियों की ज़िन्दगी का हल्फ़नामा लिखती है । उसके आनेवाले जीवनसंगी या जीवनभंगी का –

घड़ी देखती है और देखती है
कि घड़ी चल रही है या नहीं
एक अदृश्य दीवार उठ रही है उसके आसपास
उब और बेचैनी के इस अदृश्य घेरे में वह अकेली है
एकदम अकेली
वेटर इस दीवार के बाहर खड़ा है

(रेस्त्राँ में इन्तज़ार – ८८)[३०]

आकर्षण कृष्ण के समान है जो किसी को भी अपनी ओर खींच लेता है । क्या प्रेमाकर्षण में भी न्यूटन के उस गुरुत्वाकर्षण का नियम लागू होता है ? क्या यह नियम विश्व के सारे प्रेमी जानते हो, यह ज़रूरी है ? नहीं, बात गलत है । क्योंकि ऐसे ही किसी अनजाने आकर्षण से आप मेरी इस लिखावट को पढ़ रहे है । अगर ऐसा नहीं होता तो

लड़की
प्रेम करने लगती
अपने पड़ोसी लड़के से
गुरुत्वाकर्षण का नियम
जाने बगैर.... !

(सेब – १६६)[३१]

जवानी के बाजार में जवानी लूट ही जाती है । क्योंकि प्रेम किया नहीं जाता, हो जाता है । कभी भी कहीं भी । ढ़लती शाम को, आधी रात को, चिलचिलाती धूप में, बरसती बरसात में, ठण्ड़ भरे मौसम में या फिर घर की छत से गिरते हुए ! वैसे भी मौसम कई हैं पतझड़ सावन, बसन्त, बहार और पाँचवाँ मौसम प्यार का । यह तब आता है जब–जब लड़की भागती है, घर

से घर की ज़ंजीरों से । भागने का दिलधड़क मौसम **आलोक धन्वा** के शब्दों में कहे तो –

वह कोई पहली लड़की नहीं है
जो भागी है
और न वह अन्तिम लड़की होगी
अभी और भी लड़के होंगे
और भी लड़कियाँ होंगी
जो भागेंगे मार्च के महिने में

(भागी हुई लड़कियाँ – ४३)

किसी भी परिस्थिति का सामना करने में असक्षम होना कायरता कहलाती है । किन्तु मैं प्यार में भागनेवाले को क्रान्तिकारी कहूँगा । किन्तु एक लड़की भागती है तो सोने में सुहागा है पर लड़की भागती है तो यह ज़रूरी नहीं कि कोई लड़का भी भागा होगा क्योंकि –

कई दूसरे जीवन प्रसंग हैं
जिनके साथ वह जा सकती है
कुछ भी कर सकती है
सिर्फ सिर्फ जन्म देना ही स्त्री होना नहीं है

(भागी हुई लड़कियाँ – ४३/४४)

जब लड़की भागती है तो समझ लेना चाहिए कि वह अपने व्यक्तित्व की तलाश में बेखौफ भटकती है । और वह कहीं भी हो सकती है, शायद किसी प्रणय देश में -

अब तो वह कहीं भी हो सकती है
उन आगामी देशों में भी
जहाँ प्रणय एक काम होगा पूरा का पूरा !
(भागी हुई लड़कियाँ – ४५)

सचमुच की भागती हुई लड़कियों से ज्यादा मन ही मन लड़कियाँ ज्यादा भागती हैं । अपने रतजगे और अपनी ड़ायरी में । सोचने की बात तो यह है कि क्या आपके लिए कोई लड़की भागी ? नारी के प्रति पुरुष का नेह दृष्टिकोण और नारी का विश्वास तभी सफल मानना चाहिए जब कोई लड़की यह कहे कि –

सिर्फ आज की रात रुक जाओ ।
तुम से नहीं कहा किसी स्त्री ने (भागी हुई लड़कियाँ – ४६)[३२]

विष्णु खरे का नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण बड़ा ही पाक–साफ रहा है । यौवन की दहलीज़ पर फिसली युवती को संभलने का मौका देते है । यही कारण है कि किसी वत्सला नारी की जो अपेक्षाकृत महँगे कालेज में पढ़नेवाली की आँखों की खतरनाक व्यस्त नज़र कवि पर पड़ने पर भी कवि का नज़रिया बहुत साफ रहता है । दृष्टि में परिवर्तन नहीं आता यही तो नारी के प्रति का दृष्टिकोण व व्यक्तित्व की स्थिरता के निशान है – जैसे कि

मैं जो कुछ उस पर हो रहा था
उसकी करुणा से हिल उठा और संभव है
मैं उठता और जिस तरह आदमी कभी–कभी
अपनी बहन पुत्री या प्रेयसी का हाथ मन्द्र लाड़ में पकड़ता है
और कुछ दूर तक खींचे–सा लिए जाता है
उस तरह उसे ले जाता (प्रारंभ –२६)[३३]

६.२.११ पतिता या समाजभ्रष्टा नारी :

नारी का जीवन अग्निपथ है जिसे वह फूलों बिछी राह समझकर मंज़िल तक पहुँचाने का प्रयत्न करती है । किन्तु समाज में ऐसी भी सन्नारियाँ दैदीप्यमान हैं जो समाज को अवनति की ओर ले जाती हैं । प्यार महोब्बत से जीवन की झोली को भरना चाहिए, फिजुल की बातों से नहीं । फूलों से झोली नहीं फटती किलें भरने से जीवन की झोली फट ही जायेगी । नारी यदि एक बार ठान ले तो किसी भी व्यक्ति और समाज को स्वर्ग बना सकती हैं । अन्यथा नरक बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ेगी । किन्तु समाजभ्रष्टा व पतिता नारियाँ स्वयं की दुश्मन बनी बैठी हैं । पाँव पर कुलहाड़ी मारना तो सुना था किन्तु कुलहाड़ी पर पाँव मारने का नया दौर चला है । ऐसी मानसिक अपाहिजता आज की नारियों की हैं, जिस की निर्मात्री स्वयं है । और समाज में ऐसी पतिता नारियाँ भी मौजूद है जो दूसरे दिन कौन सा काम मिलेगा यह नहीं सोचती बल्कि उसे पता ही है कि अपना काम सिर्फ रात को ही होनेवाला है जैसे कि **मंगलेश ड़बराल** कहते है

एक आदमी के पीछे
चुपचाप एक स्त्री चलती है
उसके पैर रखती हुई
रास्ते भर नहीं उठाती निगाह

(एक स्त्री – २१)[३४]

आज के, प्रजातान्त्रिक समाज में नारी सफलता की सिढ़ियाँ ज़ल्द से जल्द तय करने के लिए तत्पर रहती है । सफलता के अधःपतन का ऐसा भूत सवार हुआ है, कि न जाने कब उतरेगा । जिस के लिए अपनी चारित्रिक गरिमा तक का ख्याल नहीं करती । अपने हुश्न–ए–जलवों से कुछ भी प्राप्त

करने को तत्पर रहती है । ऐसी खोखलेपन से भरी दुनिया में ऐसे लोच चेहरे प्रत्येक व्यक्ति के आस–पास के समाज में दिखाई देते हैं । पतिता नारी के प्रति अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए **धूमिल जी** कहते है

कि जिस उम्र में
मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है
उसी उम्र की मेरी पड़ोस की महिला
के चेहरे पर
मेरी प्रेमिका के चेहरे–सा
लोच है

(अकाल दर्शन – १७)

आज के फैशनेबल असभ्य फिर भी सुधरे हुए समाज की विकृतियों को पोषने के लिए मजबूर जरायामपेशा औरते हैं । जो तबीबी खोज की आधुनिक छत्री से रक्षा कार्य करती है । जिसे समाज में पनपने और पतिता बनने के लिए समाज द्वारा ही मज़बूर कर दिया गया है । नफरत की इंट पर खड़ा समाज यानी कि पतिता नारी –

जरायामपेशा औरतों की सावधानी और संकटकालीन क्रूरता
मेरी रक्षा कर रही है
गर्भ–गदगद औरतों में अजवाइन का सत्त और मिस्सी
बाँट रहा हूँ

(शान्ति पाठ – २४)

नारी अपने नैतिकता के मूल्य का ह्रास किए हुए है । यही कारण है कि नारी अपने भविष्य की सफलता के लिए कुछ भी कर सकती हैं । आज

की आधुनिक नारी के लिए पति सिर्फ भविष्य के रंगीन सपने सजाने का हस्तगत हथियार है । सांवेगिक आकांक्षाओं की बेवक्त की अनुपूर्ति का लायसैन्स हैं । वह –

सोहर की पंक्तियों का रस
(चमड़े की निर्जनता को गीला करने के लिए)
नये सिरे से सोखने लगती हैं
जाँधों में बढ़ती हुई लालच से
भविष्य के रंगीन सपनों को
जोखने लगती हैं

(राजकमल चौधरी के लिए – ३०)

तो आधुनिक रमणियों पर करारा फटकार करते हुए कहते है कि आज की नारियों के लिए पातिव्रत्य और संयम जैसी चीज़ क्या है यह पता ही नहीं । पति की मृत्यु के बाद चर्मदण्ड़ रस कैसे भी प्राप्त हो ही जाता है । क्योंकि

उसका मर जाना पतियों के लिए
अपनी पत्नियों के पतिव्रता होने की
गारण्टी है

(राजकमल चौधरी के लिए – ३०)[३५]

६.२.१२ दलित–पीड़ित नारी :

इन्सानों की एक तरह से मानसिकता रहती है, कि वह दूसरों को अपने से नीचा या दबा हुआ देखना पसंद करता है । हिन्दुस्तानी मानस सदियों से ऐसी मानसिकता का गुलाम रहा हैा पहले राजा–रजवाड़ों, सल्तनत–सुलतानों की गुलामी की और फिर अंग्रेजों की गुलामी की लेकिन खद्दरधारी छछुन्दर

राजनैयिकों की गुलामी सहना भी किस्मत में खुदा गया था । इतनी लम्बी समयावधि की गुलामी के बाद पता नहीं चलता कि स्वतन्त्रता कौन से खेत की चिड़िया का नाम है । यह भी प्रश्न उठता है कि स्वतन्त्रता नामक भावात्मक चीज़ है भी ? ऐसे में नारी की स्थिति बड़ी दयनीय है वह दलित भी थीं और पीड़ित भी । नारी को इन्सान की कोटि में गिना ही नहीं जाता था । नारी तो लौंड़िया (दासी) ही मानी जाती थीं । जिसका कार्य सिर्फ सेवा करना ही था । सेवा किसी भी बेहद व प्रकार की हो सकती है । नारी का कोई वजूद ही नहीं माना जाता था । उसकी ऐसी दलित–पीड़ित स्थिति की अभिव्यक्ति कहीं नहीं होती थी । यदि होती भी थी, तो वह सिर्फ और सिर्फ साहित्य में ही । अन्य कहीं नहीं ।

पीछड़े इलाकों के गाँवों में आज भी नारियों की स्थिति बड़ी ही दयनीय हैं । भारत विज्ञान–तकनिकी के क्षेत्र में काफी क्रान्ति कर चुका है किन्तु गरीबी में खास कर नारियों की दयनीय स्थिति में भी आगे है । वाह ! क्या नारा है नारी तु नारायणी । नारी की इस स्थिति का वर्णन करते **मंगलेश ड़बराल** कहते है, कि

जंगल में औरते हैं
लकड़ियों के गठ्ठर के नीचे बेहोश
(पहाड़ पर लालटेन – ६४)[३६]

नारी और उसकी धार्मिकता परस्परावलंबित हैं । कलियुगीन पेदाइश पौराणिक धर्म का प्रश्रय इन देवियों के कारण ज़िन्दा है । किन्तु फिर भी वह धर्म, तुलसीपूजा उसे विपत्तियों से बचाने में असमर्थ हैं । वह धर्म किस काम का जिस की इबारतों में दूसरों की जूठन चाटना लिखा हो । महाजनों और

मालिकों से पीड़ित बिन्दा की ठीक वैसी ही स्थिति है जैसे कि मैंने उपर लिखा है । यथा **राजेश जोशी** ने बिलकुल सही हक़ीकत बया की है कि

अँधेरे में
अँधेरे में क्या है
महाजन है अंधेरे में
मालिक है खेत का
गिरती है जिसके लिए बिन्दा
रोज रात
अपने अपमान में

(पत्ता तुलसी का – ७२/७३)

६.२.१३ आकांक्षी नारी :

चाहत की मुट्ठी में आकांक्षा का मोती बंधा रहता है । अगर जीवन में चाहत ही नहीं है, तो जीवन रेगिस्तान बन जायेगा । आकांक्षाएँ मनुष्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण सम्बल है । जिस के सहारे जीवन की कठ़िन से कठ़िन परिस्थितियों का सामना किया जा सकता हैं । मनुष्य मंज़िल तक पहुँच सकता है । ऐसे में नारी जीवन तो आकांक्षाओं का पर्याय हैं । वैसे भी जीवन में उत्पन्न दुःखों का कारण भी आकांक्षाओं की बहुमात्राएँ हैं । यह तब उत्पन्न होती है, जब आकांक्षाओं की अनुपूर्ति नहीं होती । नारी जीवन छोटी–छोटी आकांक्षाओं के ढाँचे से बनी कहानी हैं ।

बचपन से युवास्था की और बढ़ते–बढ़ते लड़कियों की आकाँक्षाएँ बढ़ती जाती हैं । खयाली पुलाव पकाती है । सपनों की दुनिया में जीती हैं । सपनों की दुनिया भी अज़ीब है । एक आदिवासी लड़की, जिस की अपनी छोटी–छोटी इच्छाएँ है – हाट इमाली जाने की, काजर की बिन्दिया की, तोड़े की बिधिया

की । प्रत्येक युवती की भाँति इस आदिवासी लड़की की भी चाह है । जिसे **राजेश जोशी** ने बड़े ही सफल ढंग से व्यक्त करने का यत्न किया है । जैसे कि –

सौदा–सूत कुछ नहीं लेना
तनिक–सी इच्छा हैं – सुग्गे की
फुग्गा की ।
फुग्गा उड़ने वाला हो
सुग्गा खूब बातूनी हो ।
लड़की की इच्छा है
छोटी–सी

(एक आदिवासी लड़की की इच्छा – ३८)[३७]

६.३ निष्कर्ष

अतः निष्कर्षतः कहना चाहूँ तो कह सकता हूँ कि आठवें दशक के कवियों ने नारी के बहुआयामी तमाम रूपों का बड़ी ही निष्पक्षता के साथ वास्तविक चित्रण किया है । तमाम युग व दशक की भाँति माता रूप की भरपेट प्रशंसा की गई है । वह चाहे भगवत रावत की गंगाबाई हो या फिर झाबुआ की तपती दोपहर में मज़दूरी करनेवाली माँ हो या फिर राजेश जोशी की माँ बनते वक्त माँ को याद करती माँ ही क्यों न हो या तो अपने आनेवाले बच्चे के लिए मोज़े बुनती हुई माँ ही हो । माँ के तमाम रूपों के प्रति यह पूरी क़ायनात नतमस्तक है । पतिव्रता व परतन्त्र नारी समाज में सिर्फ सुबकने के लिए ही आज़ाद है क्योंकि ऐसी नारियाँ आज़ादी के पचास साल बाद भी अकेली रास्ता पार नहीं कर सकती । अपने परिवार से प्रेम करती गृहिणी रोज़ ठगी जाती है । जिसके पिछे कई कारण जिम्मेवार है ।

गृहिणी होना गुनाह नहीं है फिर भी नारी की पुकार कोई नहीं सुनता । परिणाम स्वरूप वह कितने सारे लोगों की सम्मोहित आँखों की शिकार बन जाती है । समाज में मौजूद ऐसी नारियाँ अपना दुखड़ा नहाते हुए रो लेती है । नारियों की ऐसी स्थिति के पिछे सम्भ्रान्त वर्ग ही जिम्मेवार है । ऐसी लाचार नारियों के लिए न पाप होता है न पुण्य अतः वह परिस्थितियों से अनुकूलन साधती है । गरीबी की शिकार बनी नारी के प्रति तमाम प्रकार की अपेक्षाएँ रखी जाती है खास कर चारित्र्य सम्पन्नता की । किन्तु आज की परिस्थिति ऐसी आन पड़ी है कि पुरुष नारी चरित्र का चिन्तन करता है स्वयं का नहीं । ऐसी दमन की स्थिति में नारी को वफा करनी होगी तो ही वफा करेगी वरन् उस पर नियंत्रण व्यर्थ है । जिसके एक रूप उसे प्रेम से जीत स्वेच्छाचारिणी बनने से रोका जा सकता है । किन्तु आज बोखलाई हुई मानसिकता की सोच गर्भपात की धर्मशाला बन गई है । नारी अपनी सुन्दरता का उपयोग कर आगे तो बढ़ जाती है किन्तु उसमें खुद का व्यक्तित्व नहीं होता आज के विज्ञापन युग में नारी अंगप्रदर्शन व अतिरंजनाओं का ज़खीरा बनकर रह गई है । आज प्रेम की परिभाषा में भी परिवर्तन आ गया है । आकांक्षाओं की अनुपूर्ति का सक्षम माध्यम ही प्रेम मान लिया जाता है । यही कारण है कि लड़कियाँ भागती है सचमुच में कम और खाबों में ज्यादा । लड़कियों का खाबों में भागना वास्तविक रूप में भागने से ज्यादा खतरनाक है । निष्कर्षतः नारी पतिता और भ्रष्टा बन दलित हो गई है । इस दशक में नारी, उसे पूर्वकाल में बंदिनी बनाकर रखी गई थी अतः मुक्त रूप से गगन विहार करने लगी है । किन्तु स्वतन्त्रता का अर्थघटन स्वच्छन्दता कर अपने पाँव पर, कुल्हाड़ी पर पाँव मारने लगी है, यह बुद्धिमानी नहीं मूर्खता है । और आज की नारी इस दिशा में चल नहीं रही बल्कि दौड़ रही है ।

संदर्भ सूची :

१	डॉ. सुदेश बत्रा, नारी अस्मिता हिन्दी उपन्यासों में (जयपुर : रचना प्रकाशन, १९९८), पृ. ९५
२	बच्चनसिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, १९९९) पृ. २६९–९७
३	बच्चनसिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास (नयी दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, २०००) पृ. ४४८/४९
४	बच्चनसिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास (इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन, १९९९) पृ. २९०
५	भगवत रावत, सच पूछो तो (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९६), पृ. २५/३७
६	राजेश जोशी, धूप घड़ी (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २००२) पृ. १३७
७	राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००) पृ. ४४
८	चन्द्रकान्त देवताले, पत्थर की बैंच (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९६), पृ. ३२/३३
९	लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है ! (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९१), पृ. ९२
१०	राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००) पृ. १०४
११	मंगलेश ड़बराल, घर का रास्ता, (दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, २००१), पृ. ५५
१२	राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००) पृ. १२

१३	धूमिल, संसद से सड़क तक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९८) पृ. ६४
१४	मंगलेश ड़बराल, घर का रास्ता, (दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, २००१), पृ. २६
१५	मंगलेश ड़बराल, पहाड़ पर लालटेन, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९७), पृ. १७ २६ २७
१६	चन्द्रकान्त देवताले, पत्थर की बैंच (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९६), पृ. १६, ३७
१७	विष्णु खरे, पिछला बाकी (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९८) पृ. ६५
१८	धूमिल, संसद से सड़क तक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९८) पृ. १३, ५०
१९	अशोक वाजपेयी, तत् पुरुष (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९८९) पृ. ४४
२०	मंगलेश ड़बराल, पहाड़ पर लालटेन, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९८७), पृ. ११, ३३
२१	धूमिल, संसद से सड़क तक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९८) पृ. १५
२२	मंगलेश ड़बराल, हम जो देखते है, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९७), पृ. ७६
२३	मंगलेश ड़बराल, घर का रास्ता, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, २००१), पृ. ३३, ६५
२४	मंगलेश ड़बराल, पहाड़ पर लालटेन, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९७), पृ. २१ ३३
२५	धूमिल, संसद से सड़क तक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९८) पृ. ०७, २५

२६	लीलाधर जगूड़ी, भय भी शक्ति देता है ! (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९४), पृ. ८९
२७	गिरधर राठी, निमित्त, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९५) पृ. ६५
२८	अशोक वाजपेयी, आविन्यो (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९६) पृ. ३०
२९	लीलाधर जगूड़ी, ईश्वर की अध्यक्षता में (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९९), पृ. २१, २९
३०	राजेश जोशी, दो पंक्तियों के बीच (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००) पृ. ८६, ८८
३१	राजेश जोशी, धूप घड़ी (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २००२) पृ. १६६
३२	आलोक धन्वा दुनिया रोज़ बनती है (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००), पृ. ४३ से ४६
३३	विष्णु खरे,पिछला बाकी (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९८) पृ. २९
३४	मंगलेश ड़बराल, पहाड़ पर लालटेन, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९७), पृ. २१
३५	धूमिल, संसद से सड़क तक (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, १९९८) पृ. ७, र४, ३०
३६	मंगलेश ड़बराल, पहाड़ पर लालटेन, (नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, १९९७), पृ. ६४
३७	राजेश जोशी, धूप घड़ी (नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, २०००) पृ. ७२, ७३, ३८

उपसंहार

उपसंहार

नारी को समझने की समझ की नहीं, प्रेम करने के लिए प्रेम की आवश्यकता है । सारी आपत्तिजनक परिस्थितियों का एक मात्र प्राचीन रसायन प्रेम है । इसी की कमी का कारण है कि वैदिक युग से लेकर आज के अलट्रामोर्ड़न युग तक की नारी स्थिति में अनेक उतार–चढ़ाव आये हैं । नारी कहीं पर उच्चासन आरूढ़ है, तो कहीं अंधेरी गलियों में भटकी हैं । प्रवर्तमान समय व वैदिक युगीन नारी की स्थिति बिलकुल समान है, यदि आज की नारी अपनी सोच से स्वतन्त्रता का अर्थघटन स्वच्छन्दता न करे तो आदर्श की हिस्सेदारी से सम्मानीय है । अन्यथा मध्ययुगीन पीड़ित नारी से भी बदतर हालत आज है वैसी ही रहेगी ।

वैदिक काल व स्मृति काल में नारी को एक रत्न कहा जाता था । मानवजाति की सभ्यता एवम् विकास का मूल स्रोत नारी ने इस समयावधि में काफी सम्मान पाया था । ऋग्वेद व यजुर्वेद में सारी बातें उल्लेखित हैं । जिस से स्पष्ट होता है कि नारी वेदाध्ययन करती थीं, पाठशाला में जाती थीं, और स्वयंवर से अपना विवाह करती थीं । पुनर्विवाह, विधवाविवाह भी होता था, जिसे नियोग की संज्ञा से अभिहित किया गया था । किन्तु अक्षतयोनि स्त्री और अक्षतवीर्य पुरुष का ही विवाह होता था । नियोग की प्रथा विवाह नहीं थीं । पुत्र प्राप्ति के लिए भी अनेक विधान है किन्तु पुत्री प्राप्ति पर भी आनंद व्यक्त किया जाता था । बालक–बालिका के बीच भेद रेखा नहीं थीं । पुत्र की भाँति पुत्री भी तमाम अधिकारों की अधिकारिणी थीं । बालविवाह नहीं था । इस प्रकार नारी भी तमाम अधिकारों की अधिकारिणी थीं । इस प्रकार

नारी वैदिक व स्मृतिकाल में समादरणिया व उन्नत स्थान की अधिकारिणी थीं । पर इसवीं शताब्दि तक आते–आते नारी अपना पूर्व गौरव, मर्यादा व गरिमा को खो चुकी थीं । ईसवीं शताब्दि के प्रारम्भ में विवाह की अवस्था कम होने लगी । ६०० ई. से विधवाविवाह की प्रथा समाप्त हो गई थीं ।

आगे का मध्ययुग सामंती वातावरण में फला–फुला तो नारी पुरुष की लोंड़ी (दासी) बनकर रह गई । नारी की सामाजिक स्थिति त्रिशंकु की भांति थीं । मध्यकालीन नारी संरक्षणीय बन गई । बाकी रह गया तो धर्माचार्यों ने सतीप्रथा व बालविवाह की कुरीतियाँ धर्म की दुहाई पर थोंपी । पतिपरायण नारी को आदर्श माना जाता था, चाहे पति कामी, क्रोधी, दुराचारी, कपटी ही क्यों न हो । नारी के पतिव्रता रूप को छोड़कर अन्य तमाम रूपों की भर्त्सना की गई हैं । परिणाम स्वरूप नारी का रहा–सहा गौरव भी नष्ट होने लगा । नारी के लिए तमाम परिस्थितियाँ प्रतिकूल थीं । घर का भेदी लंका ढोवे कहावत की तरह विदेशियों की तरह देशीय लोग भी नारी दमन में अपना सहयोग देने में जुटे थे । सूफियों तथा ज्ञानमार्गियों ने समाज में खासकर पुरुष सुधार के लिए नारियों की निंदा करना प्रारम्भ किया और कुमारी, विवाहिता तथा विधवा नारी के लिए आचार–संहिता देने लगे । पुत्र–प्रसून नारी की भरपेट प्रशंसा की जाती थीं । राजनैतिक परिस्थितियाँ भी नारी के लिए विपरीत थीं । पड़ोसी देश की कन्याओं की प्राप्ति हेतु युद्ध होते थे । दूसरे देश की राजकुमारी को हर लाना एक शान की बात मानी जाती थीं । राजपूत युग में नारी का आदर–सत्कार होता था । किन्तु समाज उतना समुन्नत न था । राजघराने की नारियाँ संगीत, ज्ञान–विज्ञान, घुड़सवारी आदि में अग्रस्थ थीं किन्तु सामान्य वर्ग की नारियाँ शिक्षा से वंचित थीं । इस युग में राजपूत लोग कन्या के उत्पन्न होते ही उसे मार ड़ालते थे और बालविवाह भी कराते थे । स्त्रियों

को शूद्र के समान ही माना जाता था और भारत में मुस्लिमशासन की स्थापना के साथ ही नारी की रही सही स्वतन्त्रता भी समाप्त हो गई । मुस्लिम स्त्रियों को तो नगर के बाहर सन्तों की समाधियों के दर्शन के लिए भी अनुमती लेनी पड़ती थीं । तिस पर गतानुगतिकता हिन्दुओं ने भी दर्शायी । साथ–साथ पर्दाप्रथा भी चलने लगी थीं । नारियों को पुरुष आश्रित रहना पड़ता था । शिक्षा का प्रमाण बिलकुल नहीं था । नारियों को मुसलमान बादशाहों के हरम में जाने को तैयार रहना पड़ता था । दो भेसों की लड़ाई में बेचारी नारी कुचली जाती थीं । विदेशी आक्रान्ताएँ यहाँ की नारियों को युद्ध में जीतकर विशेष उपलब्धि के तौर पर अपने बाप की ज़ागीर समझकर ले जाते थे । मुघल युग के दौरान स्त्रियाँ राजनीति में सहयोग देती थीं । जिसका सम्बन्ध सिर्फ राजघरानों से था, जिस में अकबर जहाँगीर और औरंगजेब के समय में सलीमा बेगम हमीदाबानु, जहाँनारा और रोशनआरा के नाम उल्लेखनीय है । इसके उपरांत चाँदबीबी, शिवाजी जननी जीजाभाई, उसकी पुत्रवधू ताराबाई, मांड़लिक साम्राज्य की दुर्गावती, मेवाड़ की कर्णावती, अहल्याबाई आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं । किन्तु निम्नमध्यम वर्गीय नारियों का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान न था । इस काल में भी पर्दाप्रथा व सतीप्रथा भी प्रचलित थीं ।

अपभ्रंश काल नारी पतन का काल था । इस काल के दो उद्देश्य थे युद्धविजयी होना व जमकर भोग भोगना । परिस्थिति यहाँ तक उलझी थी, कि नवविवाहिता की प्रथम रात्री सामन्तों के लिए आरक्षित थीं । नारी सिर्फ भोग्या के अलावा ओर कुछ न रह गई थीं । जैनधर्म में नारी को त्याज्य माना गया । जैनों का मानना था कि नारी के हृदय में विष और वाणी में अमृत व्याप्त हैं । उद्धार की बात की भी तो कहा कि पहले उसे सत्कर्मों द्वारा पुरुष योनि में जन्म ग्रहण करना पड़ेगा तब उद्धार होगा । बौद्धधर्म के समय स्त्री

विक्रय व वारांगनाओं की धूम थीं । नारियों को बुद्ध ने सम्मान दिया पर यह कहा कि नारी को इस संघ में दीक्षित कर लेने से हमारा संघ एक हजार वर्ष की बजाय पाँचसौ वर्ष ही चल पायेगा । सिद्धों ने अपनी साधना में ड़ोमिन, धोबिन, चमारिन आदि नारियों को समाविष्ट तो किया किन्तु स्त्रियों का उपभोग इस सम्प्रदाय का अनुष्ठान था । इनका मानना था कि सिद्धत्व भोग से ही प्राप्त होता है । नाथ पंथियों ने नारियों को श्रद्धा–भक्ति से देखने का प्रयत्न ज़रूर किया है । रासोकालीन नारियाँ बड़ी ही प्रभावक व विदुषी थीं । इस काल की रूपविचित्रा, राजमती, संयुक्ता आदि है । किन्तु फिर भी नारी की स्थिति तो ड़ाँवाड़ोल ही थीं । अपने पति को उपदेश भी देती थीं । नारी प्रेम सौन्दर्य की पर्याय ही मानी जाती थीं । इस काल की नारी को जोहर की ज्वाला और विरह की आग दोनों जेलनी पड़ी थीं । भक्ति काल में कबीर ने कामिनी, कुल्टा नारी की निंदा व पतिव्रता की प्रशंसा की । जायसी ने नारी को आत्मतत्त्व से जोड़कर अद्वितीय स्थान दिया किन्तु फिर भी नारी ईर्ष्याभाव से मुक्त न रह पायी । तुलसी ने नारी को एक आदर्श धरातल प्रदान कर उसके चरणकमलों में श्रद्धांजलि प्रदान की । सूरदास ने नारी के प्रिया व मातृत्व रूप को महत्त्व प्रदान किया ।

ब्रिटिशकाल नारी उत्थान का प्रथम पादान रहा क्योंकि इसी काल में नारी को मताधिकार व शासन में बैठने का अधिकार प्राप्त हुआ । सतीप्रथा को दूर किया गया तथा बहुविवाह व बालविवाह प्रथा बन्ध की गयी । विधवाविवाह व आन्तरजातीय विवाह को कानूनन घोषित किया गया । नारियों की विवाहावधि भी बढ़ाई गई । स्त्री शिक्षा पर बल दिया गया । नारियाँ विविध क्षेत्रों में नौकरी पेशों पर जाने लगी और भारतीय महिला मण्ड़ल, भारतीय महिला

राष्ट्रीय परिषद, अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, कस्तूरबा ट्रस्ट जैसे विविध नारी संगठनों का निर्माण हुआ ।

किन्तु भारतेन्दु काल तक नारियाँ दोहरी मार से पीड़ित थीं । एक तो समाज की अव्यवस्था से पहले ही व्यथित थीं । तो दूसरी और उनकी जाति के साथ पुरुष वर्ग का निठल्ला अत्याचार और भी कष्टकर था । येन केन प्रकारेण सतीप्रथा, विधवा विवाह, बालविवाह, दहेजप्रथा, वेश्यावृत्ति जैसी परिस्थितियाँ अपना प्रभाव जमाये थीं । ऐसे में भारतेन्दुयुगीन प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक आदि ने उसे वाणीप्रदान की और नारी दुर्दशा का मूल शिक्षानिषेध का विरोध किया । नारी शिक्षा पर बल दिया नारी के सम्बन्ध में द्विवेदीयुगीन साहित्यिक विचारधारा अनाथालय प्रतीत होती हैं । क्योंकि नारी के प्रति दयाभाव तो है पर यथोचित सम्मान नहीं है । नारी को आश्रय देने के साथ–साथ वह बंदिनी भी बना दी गई । इस प्रकार वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गई । द्विवेदीयुगीन कवियों ने पौराणिक पात्रों पर तत्कालीन परिस्थितियों का आरोपण कर नारी को तर्कशील, ममतामयी, कामुक आदि बताया है । लोकापवाद से मुक्त होकर उदारहृदया देवी बनने का अनुरोध किया है । रामचरित उपाध्याय, हरिऔंध, गुप्त जी आदि ने युगीन संदर्भों–आयामों, आधुनिक तत्त्वों से युगधर्म को पहचानने वाली, कर्तव्यपरायण सहृदया, प्रेमिका, भावुक, वीरांगना, रूपसी, क्षात्रधर्म से युक्त नारी को चित्रित कर एक सहायक ढाँचा देने का यथेष्ट प्रयत्न किया हैं ।

छायावाद के आगमन के साथ नारी की ओर देखने के नज़रिए में परिवर्तन आ गया । आदिकाल में जिस नारी को राजभवनों की शोभा, भक्तिकाल में कामिनी होने के कारण त्याज्य तथा रीतिकाल की भोग्या स्वरूप नारी इस काल के कवियों के लिए मंदिर की पूजा की तरह पवित्र है ।

छायावादियों ने यहाँ तक कहा कि नारी भोग्या नहीं है, एक शक्ति है । नारी की असली सुन्दरता हाड़–माँस में नहीं, उसकी आत्मा में है । छायावादी नारी न वासनातृप्ति का माध्यम थीं न द्विवेदीयुगीन देवीरूप चित्रितकर उपदेश की माला ग्रहण करनेवाली । छायावादी कवियों ने नारी को सखी, माँ, सहचरी और प्राण के रूप में देखा हैं । अतः नारी में दिव्यता, चेतना, ममता और विश्वास के गुणों का समावेश हो गया । किसी अन्य के नहीं किन्तु अपने ही गुणों से गौरवान्वित होकर नारी छायावादी काव्य में प्रकट हुई है । छायावादी विधवानारी इष्टदेव के मंदिर की पूजा–सी पवित्र है । छायावादी नारी विद्रोह की चेतना और प्रगति की आकांक्षा से भरी हुई है ।

नारी अंगों के लिए प्रकृति के उपमानों का चयन कर नारी और प्रकृति में एकरूपता का सम्बन्ध स्थापित किया । प्रसाद जी ने नारी के सौन्दर्य को ममतामयी, स्नेहमयी मानकर श्रद्धा के रूप में स्थापित किया । आदि पुरुष मनु पर उपकार करने पर भी उसे कष्ट दिये किन्तु घायल होने पर श्रद्धा ही उसे वेदनारहित करती है । नारी का ऐसा रूप हमारे सामने कभी नहीं आयेगा । पंत जी ने नारी को देवी, माँ, सहचरी, प्राणादि नामों से सम्बोधित कर उसे सम्मान दिया । निराला ने नारी को प्रेयसी, पत्नी, माँ, विधवा और शोषिता के रूप में चित्रित किया है । महादेवी ने नारी को ''नीरभरी दुःख की बदली' कहकर श्रद्धासुमन अर्पित किये । किन्तु निष्कर्षतः नारी काल्पनिक विशेष रही किन्तु वास्तविक धरातल पर प्रतिष्ठित न हो सकी । छायावादोत्तर राष्ट्रीय भावधारा के कवियों ने नारीजीवन को उजागरित करने का यथेष्ट प्रयत्न किया । समाजसेविका और राष्ट्रसेविका के विविध रूपों को चित्रित किया है । भारतीय संस्कारों से रहित नारी की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखा । इस काल में पाश्चात्य शिक्षापद्धति, आन्तरराष्ट्रीय सम्पर्क, सामाजिक व धार्मिक जागृति

का अभ्युदय के कारण अनेक संकीर्णताएँ टूट गई और समाज में नारी के प्रति दृष्टिकोण उदार बना । इस समयावधि के कवियों ने नारी की आत्मा में पैठकर वास्तविक रूप को प्रस्तुत करने का यत्न किया है । स्पष्टवादिता कर्तव्यपरायणता की ऊँचाई प्रदान की हैं ।

प्रगतिवादी विचारधारा के कवियों ने मार्क्सवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण धर्म, समाज और ईश्वर के नाम पर होते स्त्रियों के शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाना इन कवियों ने अपना कर्तव्य समझा । प्रयोगवादियों के लिए नारी किसानों और मज़दूरों की तरह शोषित थीं । अतः यहाँ उसकी पीड़ा पर थोड़ा मरहम लगाया गया था । उसे गुलामी भरे वातावरण से मुक्त कराने व शोषण के वातावरण से बाहर निकालने का भी प्रयत्न किया गया है । दमघोटू स्थिति को उजागरित किया गया । अनेकों ने वेश्याओं तक को शोषण से बचाने की दृष्टि से सोचा । नारी की इस स्थिति के लिए बुर्जुआ समाज ही दोषित था । जिन के लिए नारी को पाना, पानी के गिलास को घूँट पर पी जाने के बराबर था ।

प्रयोगवादी कवियों ने नारी को एक बार फिर से एक पादान नीचे उतारा । फलस्वरूप यौन–कुण्ठाओं की अभिव्यक्ति की आड़ में एक बार फिर वासनात्मक, माँसल रूप चित्रित हुए । और नारी को इस सृष्टि का एक अंग मानकर जी भरकर छेड़खानी करने का विनम्र प्रयत्न किया । अतः नारी न तो रूपवैभव या कल्पना बनी न पूज्या । सिर्फ उसके स्थूल रूप व माँसल मदमाते यौवन लालित्य को ही महत्त्व प्रदान किया । जिस से नारी न तो द्विवेदीयुगीन महिमामंड़ित देवी रही ना ही छायावादी कवियों की कोमल भावनाओं से युक्त स्वर्गीय प्रेमिका, वह सिर्फ स्त्री–पुरुष के गोपनीय व्यवहारों का प्रत्यक्ष रूप बन गई ।

नयी कविता तक आते–आते रूमानी कविता में नारी के जो उष्णचित्र अंकित होते थे वह कम हुए । नारी को नये नज़रिए से देखने का प्रयत्न किया गया । उसे एक नयी भावभूमि देने का प्रयत्न हुआ । प्राचीन पात्रों के माध्यम से नारी को नयी चेतना प्रदान की गयी । धर्मवीर भारती ने 'अंधायुग' की गांधारी जैसे पात्र के माध्यम से नारी सुलभ भावुकता, आहत मातृत्व, धर्म, नीति, मर्यादा और मानवता का स्थापन किया । नग्न सत्य देखने की बजाय आँखों पर पट्टी बाँधने वाली नारी को वास्तविकता के प्रति जागरूक बनने का बोध प्रदान किया । साथ ही 'कनुप्रिया' द्वारा आधुनिक नारी की पीड़ा को चित्रित किया । डॉ. विनय ने मेनका के ज़रिए विद्रोहिणी नारी को समाज के शोषक इन्द्रों के सामने खड़ा कर दिया और आज के युवा विश्वामित्रों को शताब्दियों के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए आवाहन करते है । स्त्री को स्त्री बनकर रहने के लिए बोध दिया है । नरेश मेहता ने शबरी के माध्यम से आधुनिक युगीन दलित–पीड़ित निम्नवर्गीय शूद्र नारियों को अपने अधिकारों के लिए यत्नशील रहने का बोध दिया ।

नवगीतों में नारियों के अपने निजी जीवन की, हृदय की कसक, आकांक्षाओं, विरह की वेदनाओं को प्रस्तुत कर अपने मन को हलका किया है । कुछ गीतकारों ने नारी पर मरमिटने, फिदा हो जाने तो किसी की नायिका के शरीर के क्षण महेकते दिखते है । कोई अपनी प्रेयसी के साथ तटस्थ रहता है, कोई प्रेयसी को याद करता है, कोई सखाभाव रखता है । कुल मिलाकर गीतकारों ने प्रिय को नारी को अपना समझने की कोशिश की हैं ।

साठ के बाद किस्म–किस्म की कविताओं की बाढ़ आयी । जिस में अकवितावादियों ने नारी की अवनति सब से अधिक की । नारी और पुरुष के

सम्बन्धों की व्याख्या अलग–अलग महाशयों ने अपने–अपने ढंग से की । और नारी फिर से रूमानियत का शिकार बन गई । परिणाम स्वरूप इन कवियों ने प्रेमिका और वेश्या में कोई फर्क नहीं समझा । औरत को समय बरबाद करने की जिंस कहा और प्रेमिका के शरीर को गन्ने के खेत में तोड़ने की तमन्ना प्रस्तुत की है । 'अकविता' के कवियों में नारी बहुत गहरे गड़ गई थीं । 'प्यार' शब्द घीस गया था । नारी की ऐसी अवदशा कराने में कुछ महिला कवयत्रियाँ भी मौजूद थीं । नारी के नाम पर जीवन व काव्य में शोषण नहीं होना चाहिए किन्तु नये कवियों को यही बात जचती थीं । साठ के बाद की कविताओं में कवियों ने नारी को खुलेआम नंगा कर बलात्कार गुज़ारने का विनम्र प्रयास किया है । मैं इस दशक को नारी अवदशा का दशक ही कहूँगा ।

आठवें दशक के कवियों ने नारियों के विविध रूपों का उत्खनन किया है । इस दशक तक नारी स्वातन्त्रयता की हवा में पढ़–लिखकर नौकरी–पैशा करने लगी थीं । काम–काज पर जाने लगी थीं । किन्तु यह परिस्थिति सार्वत्रिक नहीं थीं । इस दशक के कवियों ने मातारूप के प्रति प्रत्येक युगीन व दशक के कवियों की भाँति श्रद्धासुमन अर्पित किये हैं । भगवत रावत की विधवा गंगाबाई विपरीत परिस्थितियों को जेलती हुई अपने बच्चे का पालन करती हो, या तपती दुपहरी में अपनी मिट्टी के मानव के लिए मज़दूरी करती हो । वहीं ऐसी माताएँ भी हैं, जो गर्भपात करवाती है बच्चे का नहीं बच्ची का । यह गर्भपात मानवता का गर्भपात है । माँ तो माँ होती है राजेश जोशी की 'माँ की याद' की माँ जब माँ बनने वाली है तो माँ–माँ की याद करती है । नारी जीवन की सब से बड़ी तमन्ना माता बनना है वह अपने आनेवाले बच्चे के लिए क्या कुछ नहीं करती ?

गृहस्थ नारी आज के ज़माने में हररोज़ ठगी जाती हैं । किन्तु आज के शिक्षित युग में समन्वय की बात चल रही है तो पुरुष नारी की मदद करना चाहे तो भी नारी की दुनिया को वह नहीं समझ पायेगा । वैसे नारी पुरुष के कार्य में मदद करने में सफल हो जाती है, पुरुष असफल रहता है । ऐसी सिधी सादी घरेलू गरीब नारी को देखकर हर किसी की आँखों में कुत्ते भोंकने लगते हैं । जो तमाम दशक की मानसिकता रही है ।

प्यास और प्यास की टकराहट का ही दूसरा नाम नारी हैं । ऐसी नारी की बेबसी–लाचारी का फायदा उठाने के लिए कुछ लोग तत्पर रहते हैं । नारी को आज की चील–कौओं सी परिस्थिति में सावधान रहना पड़ेगा अन्यथा अगले दिन अपनी ओर आती मृत्यु तक को पहचान न पायेगी । लाचार नारी अपने जीवन में कई सारे समझौते करती हैं । ऐसे समझौते उसके जीवन के दुःस्वप्न बन जाते है, जिसे वह कभी नहीं भूल पाती । नारी की एसी सहनशीलता के कारण ही हरकोई उसे अपने पाँव की जूती समझता है । ऐसी नारियाँ अपने जीवन के दुःख को हथेली पर लेकर नहीं घूमती वह बेआब पत्थर और पत्तियाँ की तरह रो लेती है । कभी–कभी दिल से मजबूर बनकर पीले खत की तलाश में लग जाती है । अशिक्षित नारी की ऐसी आर्थिक दर्दनाक स्थिति है कि आवश्यकताओं के कारण एक साड़ी के लिए रातभर सहशयन के लिए राजी हो जाना पड़ता है । आज के अभिभावक भी अंधे हो चूके हैं । बूढ़े रात को खाना खाने के बाद अंधे हो जाने का नाटक करते हैं और जवान लड़कियाँ बूढ़ों की मज़बूरी के लिए अपनी जवानी लूटा देती हैं । ऐसी नारियों के लिए पाप–पुण्य ज़िन्दगी की अंधियारी गलियों में खो जाने के बराबर है । नारी की विपन्नावस्था शत्रु से भी खतरनाक है क्योंकि गरीबी के कारण कोई भी घृणित कार्य करने के लिए उद्यत हो जाती है । और बहुत कुछ सहना

पड़ता है । वह समयापन का उपकरण बन बच्चे पैदा करने की मशीन बनकर रह जाती है । पुरुष के लिए तो वसन्त बुनना ही सफल माना जायेगा । चारित्र्यवान नारी कभी शिकवा शिकायत या कृत्रिमता का प्रयोग नहीं करती क्यों कि चारित्र्य ही उसकी पूजा है, गरिमा है, आदर्श है ।

आज अत्याधुनिक युगीन नारी की आकांक्षाएँ हैसियत से ज्यादा बढ़ती जा रही है । जिसकी अनुपूर्ति हेतु चिड़िया की तरह फड़फड़ाती रहती है । अंततोगत्वा समाज की नदी में पत्थर बन जाती है । क्योंकि स्वातन्त्र्य को स्वच्छन्दता–स्वेच्छाचरण मान लेना अपने आपको धोखा देने के बराबर है । ऐसी नवयौवना आनेवाले बूढ़ापे से बेखबर होकर अपने शीलधन को इन्द्र के पलंग पर तोड़ देती है । नूरेनख़रों के निख़ार के लिए खुद का दुरुपयोग कर शोख पूरे किए जा सकते हैं किन्तु कुल्हाड़ी पर पाँव मारना बुद्धिमानी नहीं, मूर्खता है । यह सोच उस वक्त भेंस का चारा बन जाती है ।

आजकल नारी आन्तरिक सौन्दर्य को निखारने की बजाय बाह्य सौन्दर्य की ओर उन्मुख हुई हैं । ऐसी सुन्दरियों को अपने शबाब का नशा चढ़ा रहता है । जो सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में नंगी के बराबर होकर आंगिक प्रदर्शन करने में गौरवानुभव करती है । ऐसी नारियाँ नारी जाति का कोढ़ बन गई हैं । जो आन्तरराष्ट्रीय सौन्दर्यानुसंधान की प्रवृत्ति का हिस्सा है ।

आज के विज्ञापन के गुलाम युग में विज्ञापन व विज्ञापन सुन्दरियों का चोली–दामन का सम्बन्ध है । किसी भी विज्ञापन में विज्ञापन की वस्तु की खूबसूरती कम और नारी की कम कपड़ों की खूबसूरती ज्यादा दिखाई जाती हैं । आज ऐसी विज्ञापन सुन्दरियाँ कठपुतलियाँ बनकर रह गई हैं । क्योंकि असली नारियाँ गायब है । परिणामस्वरूप ये नारियाँ अंगप्रदर्शन व अतिरंजनाओं का बहुत बड़ा ज़खीरा बनकर रह गई हैं ।

प्राचीन युग हो या अर्वाचीन प्रेमिका नारी की किस्मत में इन्तज़ार और कश्मकश के कटघरे से ही गुज़रना खुदा गया है । आज स्त्री स्वातन्त्र्य की होड़ व शहरी अफड़ा–तफड़ी के बीच मिलन–मुलाकात का स्थान रेस्त्राँ ने ले लिया है । जहाँ पर मिलन–मुलाकात उपरांत जीवनसंगी के चयन का हलफ़नामा लिखा जाता है । अंततः लड़की के भागने के दिलधड़क मौसम का उदय भी यहीं से होता है ।

समाज में ऐसी पतिता, समाजभ्रष्टा नारियों की मौजूदगी के पीछे भी नारी ही कारणगत है । ऐसी नारियाँ स्वयं की दुश्मन बन बैठी है । जिनका काम ही 'काम' है । जिन नारियों से मानवता की ऊँचाई पचास कोस दूर है वे अपने हुश्न के जलवों से सफलता की ऊँचाई पा लेती हैं । ऐसी प्रेमिका के चेहरे से लोच ढ़लती उम्र के चेहरे हमारे आसपास के परिवेश में ही नज़र आ जायेंगे ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों में शूद्र का अर्थघटन पहले श्रेष्ठ हुआ करता था जिसका विपरीतार्थघटन कर नारी को भी उसी कोटि में रख दिया । आज दलित–पीड़ित नारियों के जंगल हैं । जिस पर महाजन व मालिक जैसे बब्बर शेर (भेडिए) कुशासन चलाते हैं । नारी अपने जीवन से आकांक्षाएँ मिटा दे तो उसका जीवनभवन दुःखभवन से स्वर्गभवन बन जायेगा ।

परिशिष्ट